॥ श्रीः ॥

व्याख्यान-दिवाकरः

पूर्वार्द्धम्

तस्यैव प्रथमांशः

कालूरामेण निर्मितः

सोऽयम्

पं० कामताप्रसाद दीक्षितेन कर्णपुराख्ये नगरे
मर्चेंट्राख्यमुद्रणागारे मुद्रापयित्वा
प्रकाशंनीतः

प्रथम बार १००० | सं० १९८४ | मूल्य १)

Printer—Lala Ram Narayan, Merchant Press,
Cawnpore

भूमिका

सनातनधर्म के गूढ़ भावों को जानने के लिये, तथा सनातनधर्म के व्याख्यानदाता तैयार करने के लिये, हमने यह ग्रंथ लिखा है। विलक्षण बुद्धि कोई सज्जन यह न समझ बैठे कि हमारे धर्म के खण्डन करने के लिये यह ग्रंथ है। इस संदेह को दूर करने के लिये हमने इस ग्रंथ में किसी भी धर्मनेता या धर्म पर हमला नहीं किया, जहां पर ऐसा काम भी पड़ा तो वहां पर शुद्ध भाव से मधुर लेख द्वारा शास्त्रीय विचार किया गया है। हमारी दृष्टि नहीं रही, इस कारण इस ग्रंथ में जो प्रेस की अशुद्धियां रह गई हों या हमारे प्रमाद से जो त्रुटियां आ गई हों सज्जन महानुभाव उनका संशोधन कर लें। भूलना या भ्रम में पड़ना यह मनुष्य के लिये असंभव नहीं है। ऐसे स्थलों को देख कर दुर्जन त्रुटियां खोजा करते हैं और सज्जन सुधार किया करते हैं।

गच्छतः पतनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समा दधति सज्जनाः॥

धर्मेप्सुः

कालूरामः।

विज्ञप्ति

दो प्रकार के मनुष्य हमारे इस ग्रंथ के अधिकारी हैं—प्रथम वे जो सनातनधर्म के भावों को जानना चाहते हैं, (२) वे जो इस ग्रंथ का अवलम्ब लेकर व्याख्यानदाता बनना चाहते हैं। जो लोग धर्म जानना चाहते हैं उनसे तो हमको कुछ कहना नहीं, किन्तु जो व्याख्यानदाता बनना चाहते हैं यहां पर उन्हीं से दो दो बातें करेंगे।

(१) कई एक सज्जन व्याख्यानदाताओं की संगति पाकर और घोर परिश्रम करके व्याख्यानदाता बन जाते हैं किन्तु उनमें जो विद्या का अभाव होता है उस अभाव के कारण वे शब्दों का अशुद्ध उच्चारण किया करते हैं। विद्वान् श्रोताओं पर उनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता, वरन् विद्वान् श्रोताओं के चित्त में यह समा जाता है कि वक्ता अज्ञ है। यह त्रुटि बहुत बड़ी त्रुटि है, जो जन्म भर तक व्याख्यानदाता को खटका करती है। इस कारण व्याख्यान देने के लिये वे ही पुरुष तैयार हों जो सुविज्ञ हैं, चाहे संस्कृत के विद्वान् हों या अंग्रेजी के, उर्दू के हों या हिन्दी के, किन्तु हों सुबोध। सुबोध मनुष्य के मुख से निकले हुये अक्षर मधुर और चित्ताकर्षक होते हैं, उन्हीं का प्रभाव पड़ता है और वे ही संसार में कुछ काम करके दिखला

सकते हैं। जो मनुष्य शब्दों का शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकता वह व्याख्यानदाता बनने का साहस न करे।

(२) बहुत से विद्वान् अपने मन में यह समझा करते हैं कि हम विद्वान् हैं, हमारे सन्मुख व्याख्यानदाता क्या कर सकते हैं। किन्तु ऐसे अभिमानी विद्वान् जब व्याख्यान देने के स्थान पर पहुंचते हैं और बोलते हैं तब यातो वे प्रकरणबद्ध बोल ही नहीं सकते और यदि बोलें भी तो भाषण की पद्धति न जानने के कारण श्रोताओं पर उनका कुछ प्रभाव नहीं होता। बैठे हुये श्रोता मनहीमन में दुःखित होते हुये यह इच्छा किया करते हैं कि इसका बोलना कब बन्द हो। इस दोष से वक्ता को यह शिक्षा लेनी चाहिये कि विद्वान् होने पर भी मनुष्य तब तक नहीं बोल सकता जब तक वह भाषण की प्रक्रिया का विद्वान् न हो जाय। पांडित्य और बात है बोलना कोई दूसरी बात है, सभी पंडित वक्ता नहीं बन सकते, पंडितों में कोई २ सज्जन ही वक्ता बनते है। एक कवि लिखता है कि—

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पंडितः।
वक्ता शतसहस्रेषु दाता भवति वा न वा॥

सैकड़ों मनुष्यों में कोई एक वीर होता है और हजारों मनुष्यों में कोई एक पंडित बनता है तथा लक्षों मनुष्यों में कोई एक वक्ता होता है और लक्षों में भी कोई एक दाता होता है होना इसमें हमको संदेह है।

सिद्ध हो गया कि सभी पंडित वक्ता नहीं होते। वक्ता बनने वाले सज्जन प्रथम इस ग्रंथ को याद करें, फिर जंगलों में अकेले जाकर या अपने कमरे में अकेले खड़े होकर बोलने का अभ्यास करें। जब उनको यह प्रतीत होने लगे कि अब हम अच्छा बोलते हैं तब सभा सोसाइटियों में बोलने के लिये अग्रसर हों।

(३) इस ग्रन्थ में कहीं पर तो मधुर शब्द हैं और कहीं कहीं कुछ कटु हैं, ये कटुशब्द लिखाना को देखा नहीं है। वक्ता को समय देख कर काम करना पड़ता है, किसी स्थान में कटु शब्दों से सफल मनोरथ होता है और कहीं मधुरता से, वक्ता जैसा समय समझे उसके अनुसार शब्दों का व्यवहार करे।

(४) व्याख्यान में शब्दों का उतार चढ़ाव होता है। आरंभ में वक्ता धीमी चाल से चलता है किन्तु इस चाल के चलते २ जब असली स्थान पर आता है तब वक्ता को अक्षरों के उच्चारण में जोर देना पड़ता है, यह जोर ही प्रभावोत्पादक बन जाता है। जो ऐसा नहीं करते वे व्याख्यानदाता नहीं बनते और उनका प्रभाव पूर्ण प्रभाव नहीं हो सकता। अतएव जब कभी अच्छा व्याख्यानदाता मिले उसके उतार चढ़ाव पर मन को दौड़ाना चाहिये।

(५) संस्कृत साहित्य या हिंदी साहित्य सभी साहित्यों में रसों की संख्या नौ बतलाई है और उनके नाम शृङ्गार, वीर, करुणा, हास्य, अद्भुत, भयानक, रौद्र, वीभत्स, शान्त, हैं।

श्रोतृवृन्द में नौ रसों के जानने वाले मनुष्य कम होते हैं, किन्तु वीर, हास्य, करुणा इन तीन रसों का प्रभाव अज्ञजनों पर भी पड़ता है। प्रत्येक व्याख्यानदाता को अपने मन में यह ध्यान रखना चाहिये कि मैं जो बोल रहा हूं उस बोलने में जो रसों का उद्घाटन होता है उन रसों का प्रभाव जनता के ऊपर पड़ता है या नहीं, यदि नहीं, तो अपने व्याख्यान को धीमी चाल से चलाना चाहिये।

(६) प्रत्येक व्याख्यानदाता जब व्याख्यान आरंभ करे तो मंगलाचरण में ऐसे श्लोक पढ़े कि जिनके सुनने से श्रोताओं का चित्त वक्ता की तरफ आकर्षित हो जावे, यदि ऐसा न हो तो श्लोक के बाद ऐसा कोई दोहा या शेर पढे कि जिसके बोलने से श्रोताओं का चित्त खिंच जावे। वक्ता जिस विषय को लेकर बोलने खड़ा हुआ है समस्त व्याख्यान उसी विषय पर हो, दूसरे विषय में कभी न धँसे। जो विषयान्तर में धँसते हैं उनका व्याख्यान शुद्ध व्याख्यान नहीं रहता। कई व्याख्यान मिल कर व्याख्यानों की खिचड़ी बन जाता है, जो विषय संपादन में त्रुटि कर देता है। इस त्रुटि को हटाने के लिये अपने अभीष्ट विषय से अन्य विषय की बात न छेड़ना यही अच्छा है।

(७) इन व्याख्यानों में किसी किसी स्थल पर हमारे बनाये हुये श्लोक भी हैं। हमने जो श्लोक बनाये हैं, वो स्थलों

में बनाये हैं। पहिला स्थल यह है कि किसी तर्क को हमने श्लोक में बांध दिया है, जैसे कि—

अग्निर्यथैकः परिदृश्यतेऽत्र
मुङ्गेरदानापुरवंगदेशे।
पेशावरे झेलम इन्द्रप्रस्थे
तथैव विष्णुश्च शरीरधारी॥

(द्वितीय) यह तर्क का श्लोक है, किसी २ स्थान में हमको पांच चार श्लोक लेने पड़ते थे उनके स्थान में सब बातों को लेकर हमने एक श्लोक बना दिया, जैसे कि—

नित्यं तुले धर्मपथेन गोत्रां,
धर्मं पपुर्नमृतया क्षितीशाः।
अकालमृत्युर्न च रोगभीति,
रकृष्टपच्या पृथिवी तदानीम्॥

जिन वक्ताओं को ये श्लोक अच्छे न लगें वे महाभारत, रामायण, पुराण, काव्यों से इनसे अच्छे श्लोक ले लें।

(८) हमने व्याख्यानदाताओं के लिये परीक्षा का आरंभ कर दिया है। यह परीक्षा प्रत्येक वर्ष के जून मास में हुआ करेगी। परीक्षा देने वाला प्रथम वर्ष में 'सुवक्ता' और द्वितीय वर्ष में 'महोपदेशक' तृतीय में 'व्याख्यान वाच-

स्पति' की परीक्षा दे सकेगा। ग्रंथ को पूर्ण रूप से याद कर उसके पश्चात् बोलने की पद्धति ऐसी सीखनी चाहिये कि जिससे मनुष्यों पर पूर्ण प्रभाव पड़े, तब परीक्षा के लिये उद्यत होना ठीक है। हम केवल 'सार्टीफिकेट' देना नहीं चाहते वरन् श्रेष्ठ व्याख्यानदाता तैयार करना चाहते हैं, इस कारण परीक्षा कठिन ली जायगी।

धर्मप्सुः

कालूरामः।

श्रीगणेशाय नमः
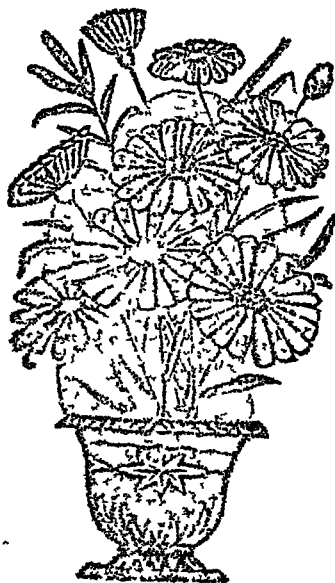
व्याख्यान-दिवाकर

क्वचिन्मत्स्यः कूर्मः क्वचिदपि वराहो नरहरिः
क्वचित्खर्वो रामो दशरथसुतो नन्दतनयः।
क्वचिद्बुद्धः कल्कि विहरसि कुभारापहतये,
स्वतन्त्रोऽजो नित्यो विभुरपि तवाक्रीडनमिदम्॥

धर्म।

ये मानवा विगतरागपरावरज्ञा
नारायणं सुरगुरुं सततं स्मरन्ति।
ध्यानेन तेन हृतकिल्विषचेतनास्ते
मातुः पयोधररसं न पुनः पिवन्ति॥१॥

जननी जनै तो भक्तजन, या दाता या शूर।
नातर जननी बांझ रह, क्यों खोवै है नूर॥२॥

स ज़माने में भूमण्डल की जातियां उन्नति के शिखर पर पहुंच चुकी हैं, जबकि जर्मन की कला-कौशल ने संसार में आश्चर्यजनक मशीनों को तैयार कर दिया है, जबकि अमेरिका की उन्नति को देख कर संसार दंग रह जाता है उस समय में कुछ भारतीय हिन्दू सुधारक भी

बनावटी उन्नति के गीत गाने लगे हैं। इनका कथन है कि जब तक धर्म को न पीस डाला जावेगा तब तक भारतवर्ष उन्नति ही नहीं कर सकता, इनका कथन है कि धर्म तरक्की में रोड़े अटकाता है। इनका कथन है कि धर्म ही विविधि जातियों में संघर्ष पैदा करके जातियों को लड़ा मारता है इस कारण सब से प्रथम धर्म को मार डालो और फिर उन्नति पर कमर बांधो।

क्या मजे की बात है, जो धर्म संसार में प्राणी मात्र का हितैषी और संसार का उन्नतिकारक है वही धर्म आज सुधारकों को अपना शत्रु समझ पड़ता है। आज इसी विषय पर विचार किया जावेगा कि वास्तव में धर्म उन्नतिकारक है या उन्नतिनाशक। भारतवर्ष के एक प्रवीण दार्शनिक जिनका नाम महर्षि कणाद हैं अपने वैशेषिक दर्शन के आरम्भ में लिखते हैं कि—

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।

जिससे संसार की उन्नति और मोक्ष की प्राप्ति हो उसका नाम धर्म है। जिस दार्शनिक कणाद के आज भी योरूपीय दार्शनिक गीत गा रहे हैं वह कणाद लिखता है कि धर्म से संसार की उन्नति और मोक्ष प्राप्ति होती है किन्तु इसके विरुद्ध सर्वथा दर्शनज्ञान शून्य आजकल के सुधारक कहते हैं कि धर्म उन्नति का बाधक है, इन दो में से हम किसकी बात को सत्य मानें, इसका निर्णय पाठकों पर छोड़ते हैं। सामान्य रीति से

हम यह पूछते हैं कि एक मनुष्य इस वस्ती में ग्रेजुवेट है और दूसरा अनपढ़, ज्ञान से सम्बन्ध रखने वाली किसकी बात सत्य होगी। यह सभी कह देंगे कि अनपढ़ की अपेक्षा ग्रेजुवेट का कथन माननीय है। बस अब समझ लीजिये-महर्षि कणाद दर्शनवेत्ता हैं उसने संसार के आगे एक अनूठा दर्शन रक्खा है और ये लोग दर्शनों की तरफ से चोपटानन्द हैं फिर हम कैसे मान लें कि धर्म उन्नति का घातक है।

धर्म तो संसारप्रिय वस्तु है, आज भी हम किसी मनुष्य से कह दें कि तुम बड़े धार्मिक हो—इन अक्षरों को सुनते ही वह फूल कर कुप्पा हो जावेगा और कह उठेगा कि आपके चरणों की कृपा से। यदि हम यह कह दें कि तुम बड़े अधर्मी हो—इसके सुनते ही त्योरी चढ़ जावेगी, लाल लाल आंखें हो जावेंगी, कोई आश्चर्य नहीं है यह कह उठावे कि आप और आपके बाप तथा आपके दादा ऐसे ही होंगे।

प्राचीनकाल के नास्तिकों ने ईश्वर, जीव, पुनर्जन्म का खूब खण्डन किया किन्तु धर्म के आगे उन्हों ने भी शिर झुका दिया। जिस समय धर्म पर आपत्ति आती है वह वैकुंठ में रहने वाला, एक वैकुंठ क्या चाहे वह वैकुंठ में रहता हो और चाहे गोलोक में, चाहे सातवें आसमान पर हो, चाहे सर्वव्यापक हो किन्तु धर्म की रक्षा के लिये उसको फौरन कूद कर निराकार से साकार बनना पड़ता है। इस घटना से कौन कह सकता है कि ईश्वर को धर्म प्यारा नहीं।

संसार में आज तक जितनी शान्ति और उन्नति दिखलाई देती है यह धार्मिक पुरुषों के आचरण का फल है। जो लोग धर्म की व्युत्पत्ति और धर्म शब्द का अर्थ नहीं जानते उन लोगों का कथन है कि धर्म तरक्की में रोड़े अटकाता है। जिन लोगों ने 'धर्म' इन अढ़ाई अक्षर के शब्द 'धर्म' के अर्थ को समझा है उन लोगों का कथन यह है कि धर्म के विना उन्नति तो कोई क्या करेगा अस्तित्व ही नहीं रख सकता। हमको आवश्यकता पड़ी है कि इस बात के पुष्ट करने के लिये हम धर्म और धर्म के लक्षण को श्रोताओं के कान में डाल दें।

धर्म का लक्षण।

'धर्म' यह शब्द इंगलिश भाषा का नहीं और न परशियन ही का है। धर्म शब्द किसी भी भाषा में पाया नहीं जाता, इस शब्द के पाये जाने का सौभाग्य यदि किसी भाषा को है तो वह केवल संस्कृत को ही है। इसकी व्युत्पत्ति "धरतीति धर्मः, ध्रियतेऽसौ धर्मः" जिसका अर्थ यह है कि जो धारण करे उसका नाम धर्म है। खुलासा इसका यह है कि जिसके नाश होने से वस्तु का नाश हो जावे उसको धर्म कहते हैं। दूसरा अर्थ इसका यह है कि जिसको जड़, चेतन्य, स्थावर, जंगम आदि संसार धारण करें उसका नाम धर्म है। इसी अर्थ को महर्षि वेदव्यासजी ने इस प्रकार लिखा है :—

धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यत्स्याद्धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः॥

इसमें धारणा शक्ति है, प्रजा इसको धारण करती है, धारणा को लिये हुये होने से इसका नाम धर्म है।

धर्म का अनुवाद अन्य किसी भाषा में हो नहीं सकता और यदि कोई करे तो फिर उस अनुवाद में धर्म शब्द का व्यापक अर्थ नहीं आता। कई एक मनुष्य धर्म का अर्थ रिलीजन और मजहब करते है किन्तु ये दोनों ही अर्थ धर्म के अर्थ को प्रकाशित नहीं करते। रिलीजन ओर धर्म में बड़ा अन्तर है (१) रिलीजन किसी मनुष्य का चलाया हुआ होता है और धर्म प्रकृति सिद्ध है। (२) रिलीजन मनुष्यों में ही होता है, धर्म मनुष्य, पशु, पक्षी, जड़, चैतन्य सब में रहता है। (३) रिलीजन के न रहने पर कोई क्षति नहीं किन्तु धर्म के न रहने पर धर्मी का नाश हो जाता है। उदाहरण के लिये अग्नि को देखिये। अग्नि में दो धर्म हैं उष्णता और प्रकाश, जब तक ये दोनों धर्म अग्नि में हैं तब तक अग्नि की सत्ता है यदि ये दोनों धर्म अग्नि में से निकल जावें तो फिर अग्नि—अग्नि नहीं रहता, राख बन जाता है। मनुष्य में दो प्रकार के धर्म होते हैं कुछ शारीरिक धर्म और कुछ मनुष्यता के धर्म। यदि मनुष्य में से मनुष्यत्व धर्म नाश हो जावे तो फिर वह मनुष्य नहीं रहता बिना सींग पूछ का खासा पशु बन जाता है। इसको भर्तृहरिजी लिखते हैं—

आहारनिद्राभयमैथुनं च
सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

आहार, शयन, भीति, मैथुन ये शारीरिक धर्म मनुष्यों के और पशुओं के तुल्य हैं क्योंकि ये धर्म पंचेन्द्रिय विशिष्ट शरीर के हैं, उनके भी शरीर हैं और इनके भी शरीर हैं इस कारण दोनों के ये धर्म हैं। मनुष्यों और पशुओं में अंतर है तो केवल इतना है कि मनुष्य में कुछ मनुष्यत्व धर्म रहता है जिस मनुष्य में वह नहीं है उसका मनुष्यत्व क्षय हो जाता है और वह ऐसा भिन्न प्रकार का पशु बन जाता है।

जैसे मनुष्यधर्म के निकल जाने से मनुष्यत्व का नाश हो जाता है इसी प्रकार चलना, फिरना, खाना, सोना आदि शरीर के धर्मों के मिटने से शरीर का नाश होता है। तभी तो मनुजी ने लिखा है कि—

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।

मारा हुआ धर्म मनुष्य को मार डालता है और रक्षित धर्म मनुष्य की रक्षा करता है। सिद्ध हो गया कि धर्मी की सत्ता तभी तक है जब तक कि उसमें उसका धर्म है। यह बात विरोजन में नहीं होती।

संसार में जितने सुख और जितनी उन्नतियां होती हैं वे सब धर्म से मिलती हैं। संसार के सभी आस्तिकों ने इस बात

को माना है कि यह जीव संसार के शरीर को छोड़ कर अन्त में यहां से चल देता है। यह यहां से चलता हुआ अपने कुछ कर्मों को साथ में ले जाता है।

आज हमारे भाइयों को साइंस और उन्नति के भूतों ने ऐसा जकड़ कर बांधा है कि वे धर्म का नाम सुनते ही घबरा जाते हैं किन्तु एक दिन ऐसा भी आवेगा कि जिस रोज यह साइंस और उन्नति दूर से खड़ी खड़ी तमाशा देखेंगी। जब इस मुसाफिर की तैयारी का बिस्तर बँध जावेगा उस दिन साइंस की तरक्की, संस्कृत और फारसी, रुपया और पैसा, लड़के, बच्चे, भाई, बाप ये तनक भी सहायता न दे सकेंगे और यह प्राणी निराश होकर गला फाड़ फाड़ कर रोता चिल्लाता जन्मभूमि त्याग देगा। यह समय बड़ा दारुण समय है, इसका नाम लेने ही शरीर के रोमांच खड़े हो जाते हैं। इतना दारुण होने पर भी यह एक दिन हमारे आगे आवेगा।

इसका आरंभ ही बड़ा भयंकर है। जिस टाइम में यह अवसर आवेगा उस समय हम घर के चौक के मैदान में होंगे और आस पास हमारे पुत्रादि आंसुओं की धारा बहाते नजर आवेंगे। इस कठोर समय में बड़े बड़े नास्तिक आस्तिक बन अपने चित्त से कह उठते हैं कि—

रे चित्त चिन्तय चिरं चरणौ मुरारेः
पारं गमिष्यसि यतो भवसागरस्य।

पुत्राः कलत्रमितरे नहि ते सहायाः
सर्वं विलोकय सखे मृगतृष्णकाभम् ॥

जिस समय मनुष्य शोकसागर में डूब जाता है, जब कि शरीरपीड़ा का असह्य दुःख आगे आ जाता है, जब कि मारे कफ के मुख से आवाज़ तक नहीं निकलती, जब कि घर के लोग उम्र भर की कमाई का हिसाब मांगते हैं क्या कोई विचारशील मनुष्य यह कह सकता है कि वह समय सुख का है। ऐसे समय में यदि मुसाफिर यह कह दे कि हमको पांच सो रुपया सेठ गिरधारीलाल से लेने है यह सुनते ही घर के लोग पड़ोसियों को बुला लेते हैं और पड़ोसियों के रूबरू फिर मजबूर करते हैं कि दादाजी अब फिर कहो क्या कहते हो? इस समय बेचारे बुड्ढे को इतना तंग किया जाता है कि उस दुःखित समय में भी बिना दुबारा कहलाये नहीं छोड़ते। जब वह कह देता है तब ये पड़ोसियों को गवाह बनाते हैं उनसे कहते हैं कि आज सेठ गिरधारीलाल लाहौर गये हैं और दादाजी का समय आ गया है यदि गिरधारीलाल इन्कार करे तो तुम लोगों को गवाह बनने का कष्ट उठाना पड़ेगा।

यह बात तो रही लेने की। अब जरा देने की भी कथा सुनिये। कहीं दादाजी यह कह दें कि हमको दो सौ रुपये सेठ मोहनलाल के देने हैं तो इन शब्दों को सुनना नहीं चाहते। यदि ऐसे समय में कोई पड़ोसी सुनता हो और वह घर वालों को बुला कर कहे कि सुनिये दादा क्या कहते हैं तब घरवालों

का उत्तर होगा कि तीन रोज़ से सन्निपात आ गया है, ऐसे ही बकते हैं। विचारिये तो सही कि ये लल्ला के भक्त और दद्दा के दुश्मन हमारी क्या सहायता कर सकते हैं।

सब के बैठे बैठे जब इस मुसाफिर का कूच हो जाता है तब जो कोई भी सुनता है वह 'जल्दी करो' की ही आवाज उठाता है। इस समय में कोई हमारा मित्र आवे और वह यह प्रश्न उठा दे कि कहिये दादाजी का क्या हाल है? इसके उत्तर में यदि यह कह दिया जावे कि बस मामला खतम है इतना सुनने ही हमारे परममित्र भी शीघ्रता के ही राग को अलापेंगे। हा शोक! जिस घर को हमने अपना खून पसीना एक करके घोर परिश्रम से तैयार किया है, जिसके लिए हमने धर्म से नाक सिकोड़ी, जिसके लिए हमने बड़ी बड़ी चालाकियां और धोखेबाजियाँ कीं, जिसके लिए अपने देश के मनुष्यों के सुख का खून किया, हा! आज उस घरमें एक घंटा ठहरने के लिये हमको स्थान नहीं मिलता! जब तक हम में चैतन्यता थी तब तक हम घर के स्वामी थे किन्तु अब मुसाफिर बन कर भी नहीं ठहर सकते! इस समय हमारी अजब दशा होती है—

मातु पिता युवती सुत बांधव,
　　लागत है सब को अति प्यारो।
लोग कुटुम्ब खरो हित राखत,
　　होय नहीं हमसों कभी न्यारो॥

नेह सनेह तहां तक जानहु,
बोलत है मुख शब्द उचारो।
सुन्दर चेतन शक्ति गई तब,
वेग कहें घर मांझ निकारो ॥

जो मनुष्य अपने स्वभाव से सारे संसार को प्रसन्न करता था, जो चार मनुष्यों में बैठ कर अपनी जबान को बन्द नहीं कर सकता था आज वही मनुष्य चुपचाप धरा है। हा शोक !!

राग कीन्यो रंग कीन्यो तरुणी प्रसंग कीन्यो,
अग कीन्यो चीकनो सुगंध लाय चोली में।
नेह कीन्यो गेह कीन्यो सुखद सनेह कीन्यो,
वासर विताय दीन्यो नाहक ठठोली में ॥
कहै कवि वेणी हरि भजन न कीन्यो मूढ़,
खेल सो दिखाय चल्यो दिना चार टोली में।
डोलत न बोलत खोलत न पलक हाय,
लाठ से धरे हैं आज काठ की खटोली में ॥

हिन्दु लोगों के यहां यह दस्तूर है कि वे दो लकड़ी लंबी रखकर और उनके ऊपर छोटी छोटी लकड़ी बांध इसी सवारी पर इस हज़रत अशरफुलमख़लूक़ात को सवार करवाते हैं। जो मनुष्य संसार की उत्तमोत्तम सवारियों पर चढ़ता है और यहां तक कहैं कि जो एक रोज दूल्हा बन कर शिविकारोहण करता है और अढ़ाई दिन के लिये संसार का नकली बादशाह

गिना जाता है एक दिन उसको भी चार भाइयों के कंधे पर चढ़ना पड़ता है। ऐ मनुष्य ! तू किस किस सवारी पर चढ़ा ज़रा इसका भी तो पता लगे—

गर्भ चढे पुनि रूप चढ़े,
पलना पै चढ़े चढे गोद घना के।
हाथी चढ़े पुनि घोड़ा चढ़े,
सुखपाल चढ़े चढ़े जोम घना के॥
वैरी औ मित्त के चित्त चढ़े,
कवि ब्रह्म भनै दिन बीते पना के।
ईश कृपालु को ध्यायो नहीं,
अब कांधे चढ़े चले चार जना के॥

यह दशा साधारण मनुष्यों की ही नहीं होती किन्तु संसार के शहनशाह भी इसी दशा में पहुंच जाते हैं। किम्व-दन्ति है कि मरते समय बादशाह सिकन्दर ने अपने राज-मंत्रियों को बुलाया और उनसे कहा कि मेरे मरने पर तुम दो काम करना—एक तो यह कि मेरी माता के पास जिनके पुत्र मर गये हों और जिनका कोई रक्षक न हो ऐसी सौ स्त्रियों को नौकर रख देना, दूसरे यह कि मेरा जनाज़ा (मृतक शरीर) शहर से निकाला जावे इसके पीछे तोपखाना, रिसाला और पल्टन इनकी बहुत बड़ी भारी भीड़ हो तथा इनके साथ साथ हमारे ख़ज़ाने के रत्न जवाहिरात मोहर और रुपयों का भरपूर ख़ज़ाना

हो, एवं हमारे दोनों हाथ जनाज़े से बाहर हों और वे दोनों हाथ सबको देख पड़ते हों। इतना कह कर बादशाह मर गया। उसकी आज्ञा का पालन किया गया। सिकन्दर की इस रवानगी को सामने रख कर एक कवि बोल उठा कि—

मुहैया गर्चे सब सामान मुल्की और माली थे।
सिकन्दर जब चला दुनिया से दोनों हाथ खाली थे॥

इसी चाल से ले जाते हुये इस मनुष्य को लकड़ियों की चिता पर रख देते हैं। जिस मनुष्य को गद्दे की रूई के बिनौले का कष्ट होता था और इस दुःख के मारे वह चिल्ला उठता था आज वही मनुष्य बड़े बड़े लक्कड़ों पर पड़ा हुआ चू तक नहीं करता।

पेट में पौढ़ के पौढ़ मही,
जननी संग पौढ के बाल कहाये।
पौढ़न लागे तिया संग में,
अब सारी युवा तुम पौढ़ गंवाये॥
क्षीर समुद्र के पौढ़नहार,
तिन्हें कर ध्यान कभूं नहिं लाये।
पौढ़न पौढ़त पौढ़ गये,
चिता पर पौढ़न के दिन आये॥

जिस समय चिता में आग दे देते हैं, सब मनुष्य अपने घर की ओर आते हैं, आज संसार का नाच रंग विद्या वृद्धि

कोई भी चीज़ साथ नहीं जाती, सब पदार्थ यहां ही रह जाते हैं। गरुड़पुराण में लिखा है कि—

> धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे,
> नारी गृहद्वारि जनाः श्मसाने।
> देहश्चितायां परलोकमार्गे,
> धर्मानुगो गच्छति जीव एकः॥

आज वह दिन है कि हमारे कमाये हुये समस्त रुपये पैसे ज़मीन में ही गड़े हैं, हमारे उत्तमोत्तम वाहन बैल घोड़े हाथी सब अपने अपने स्थान पर बंधे हैं, हमारी अर्द्धाङ्गिनी धर्म-पत्नी दरवाजे पर ही हाय हाय मचा रही है, हमारे इष्ट मित्र पिता पुत्र श्मसान तक ही हमारे साथ आये हैं, और की तो क्या कहैं जिस शरीर को हम इत्र तेल और फुलेल से तर रखते थे आज वह शरीर भी इस प्राणी के साथ नहीं है। जिस समय यह अकेला जीव निराश होकर दुःखसागर में डूबता है उस समय धर्म इसके सामने आकर आवाज़ देता है कि खबरदार! घबराना मत, मैं आ गया। दारुण समय में असहाय के सहायक बननेवाले परममित्र धर्म को तिलांजलि देना कितनी बुद्धिमत्ता है। औरंगजेब जब मरने लगा तब वह हीरे जवाहिरात की ढेरी करवा कर रोता हुआ मर गया। इसका अभिप्राय यह था कि आज ये मेरा कुछ भी साथ नहीं देते। इसका विचार श्रोता अपने मन में कर लें।

बड़े बड़े विद्वान् और बड़े बड़े तर्कीबाज इस संसार को छोड़ कर अकेले ही चले गये. किसी ने भी उनका साथ नहीं दिया, यदि किसी ने साथ दिया है तो उस धर्म ने ही दिया है कि जिसको देख कर आज आप हिचकते हैं।

हिन्दुओं का साहित्य पता देता है कि रावण से अधिक उन्नति करनेवाला भूमण्डल में कोई नहीं हुआ काल ने उसको भी धूर में मिला दिया। मनुष्य के मरने के पश्चात् यदि कोई चीज़ साथ गई है तो वह धर्म ही गया है।

इह खलु विषमः पुराकृतानां
भवति हि जन्तुषु कर्मणां विपाकः।
शिवशिरसि शिरांसि यानि रेजुः
शिव शिव तानि लुठन्ति गृध्रपादैः ॥

इस संसार में पूर्वकालकृत कर्मों का फल सभी के आगे आता है। जिस रावण के शिर एक दिन शंकर के शिर पर चढ कर शोभा देते थे, अंतिम दिन रावण के उन्हीं शिरों को गीध नोंच नोंच कर खाते हैं।

सिद्ध हो गया कि इस असार संसार से जब प्राणी का कूच होता है तब इसका कोई रक्षक नहीं रहता, यह प्राणी जब निराधार निरावलम्ब हो कर घबरा उठता है तब धर्म ही सहायक होता है। मनुजी लिखते हैं—

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति॥४।२४१

भाई लोग मृतक शरीर को लकड़ी और पत्थर की भांति फैंक कर पीठ दिखा कर अपने घर को चले जाते हैं उस समय में केवल धर्म साथ जाता है।

आपत्ति में सहायता देनेवाले धर्म को धार्मिक लोगों ने मनुष्यजीवन का सार माना है मगर योरुप की चकाचौंध में पड़े हुये सुधारक यही समझे बैठे हैं कि ईश्वर है ही नहीं, जीव कोई चीज ही नहीं, फिर धर्म से कौन मतलब। इस सन्निपात में पड़े हुए सुधारकों से हमारी प्रार्थना है कि वे वेद और दर्शन देखें। योरुप की कोई विद्या ऐसी नहीं है जो वेदों के आगे ईश्वरसत्ता का निषेध करे। जब ईश्वरसत्ता और जीव, तथा पुनर्जन्म किसी प्रमाण और दलील से कट ही नहीं सकते फिर ईश्वर नहीं है इस चंडूखाने की गप्प को कौन विचारशील सत्य मानेगा।

हम दिखला चुके हैं कि जीवात्मा को जन्म जन्मान्तर तक सुख और शान्ति देनेवाला यदि कोई पदार्थ है तो वह धर्म है। अब यह दिखलावेंगे कि धर्म के विना संसार में शान्ति, प्रीति और गृहस्थ का आनन्द तथा उन्नति हो ही नहीं सकती। जो लोग धर्म के विना संसार की उन्नति होती है ऐसा मान बैठते है वे विचारशील नहीं हैं किन्तु लोभ और मोह

की शराब पीकर नशे में पागल हो गये हैं। ऐसे ही मनुष्यों के लिये भर्तृहरिः लिखते हैं कि—

पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतो जगत्।

मोहमयी प्रमाद मदिरा को पीकर यह संसार पागल हो गया।

संस्कृत साहित्य से पता लगता है कि—

न वै राज्यं न राजाऽऽसीन्न दण्डो न च दाण्डिकः।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्तिस्म परस्परम् ॥

सृष्टि के आरंभ में कोई राज्य नहीं था, और न कोई राजा था, न कोई कानून था, न कोई मेजिस्ट्रेट था। उस समय प्रजा अपनी रक्षा परस्पर में धर्म से करती थी अर्थात् जब एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के साथ में कोई व्यवहार करता था तब वह यह विचार लेता था कि यह व्यवहार जो मैं इस पुरुष के साथ करता हूं धार्मिक है या अधार्मिक। यदि व्यवहार धर्मानुकूल होता था तो सहर्ष किया जाता था यदि व्यवहार धर्मविरुद्ध होता था तो उसको छोड़ दिया जाता था। बहुत दिनों तक इसी प्रकार शासन हुआ। जब प्रजा मे स्वार्थ आया तो धर्मानुसार प्रजा को चलाने के लिये राजा नियत हुआ। वह भी प्रजा की रक्षा और शान्ति धर्म के ही अवलम्बन से कर सकता है। सिद्ध हो गया कि जिस प्रकार संसार की रक्षा और संसार में शान्ति धर्म रख सकता है उस प्रकार सहस्रों

जेल खोल भूपति शान्ति और रक्षा नहीं रख सकता। ज्ञात होता है कि प्रकृति की मनमोहनी छटा पर लट्टू होकर बेहोश हो जाने वाले सुधारकों ने धर्म के इस महत्व को कभी भुला भी नहीं। धर्म के अवलंबन से तुम अदालतें उठा सकते हो, धर्म के अवलंबन से तुम पुलिस को विदा कर सकते हो, धर्म के आचरण से तुम संसार के प्रत्येक प्राणी में गाढ़ प्रीति की भागीरथी बहा सकते हो, धर्ममार्ग पर चल कर ही तुम दरिद्री गृह को इन्द्र के भवन से भी सुखदायी बना सकते हो। इन सब बातों के प्रत्यक्ष उदाहरण हिन्दूचरित्र और धर्माज्ञाओं को मिला कर हम श्रोताओं के आगे रक्खेंगे। हमें आशा है कि आज इस परोपकारी विषय को श्रोता बड़े ध्यान से सुनेंगे।

धर्म-ग्रन्थों में जो धर्म वर्णन किया गया था वही भारतीयों का आचरण था। पश्चिमीय शिक्षा के तूफान से जब धर्म विदा हुआ उसके विदा होते ही भारतवर्ष में लूट खसोट, स्वार्थ, व्यभिचार ने अपना अड्डा जमाया। बस भारतवर्ष का पतन होगया। नाम मात्र शेष रहे। धर्म को पैरों के नीचे कुचल कर क्या सुधारक संसार से हिन्दू जाति को गायब कर देने का ठेका ले बैठे हैं। धर्म के न रहने से प्रत्येक देश तथा प्रत्येक मनुष्य स्वार्थ में अन्धा होकर संसार को वह हानि पहुंचावेगा जिससे संसार में मनुष्य-समुदाय का रहना ही कठिन हो जायगा।

हम यह दिखला चूके है कि पलटन, रिसाला, किर्च, भाला,

बन्दूक, तलवार, मशीनगन, हवाई जहाज, क्रूजर आदि को दियासलाई दिखला कर यदि तुम संसार में शान्ति प्रेम द्वारा शासन करना चाहते हो तो तुम चारो तरफ से अपने मन को खेंच कर धर्म के चरणों में जा पड़ो। एक पैसा खर्च न हो, एक भी मनुष्य की हत्या न हो, संसार में सर्वदा प्रीति और शांति बनी रहे, ऐसे शान्तिमय स्वराज्य के लिये तुम को धर्म का अवलम्बन उसी प्रकार करना होगा जिस प्रकार सृष्टि के आरंभ में मनुष्यों ने धर्म का सेवन किया था। आज बड़े २ प्रसिद्ध शासनों में जितनी खराबियां आ गई हैं इन समस्त खराबियों का कारण है धर्मत्याग। आज एक राजा अपने स्वार्थ में पड़ कर दूसरे राजा पर चढ़ बैठता है, उसके राज्य को छीन कर आप वहां का राजा बन जाता है, धर्म की दृष्टि से ऐसा करने वाले के लिये घोर पाप है। आज मुकद्मेबाजियों में कुछ का कुछ हो जाता है, रिशवतों का बाजार गर्म है, इतने पर भी अपराधरहित मनुष्य को दण्ड हो जाता है और अपराधी छूट जाता है। क्या यह शासन धर्मशासन का मुकाबला कर सकता है? नहीं कर सकता तो फिर सुधारक लोग क्यों कहते हैं कि धर्म तरक्की में रोड़े अटकाता है। मालूम होता है कि सुधारकों ने योरुप की चकाचौंध में अपनी अक्ल को शराब के बदले नीलाम कर दिया है।

अदालत।

इन सुधारकों के गुरुघंटाल बड़े दादा ने कुछ दिन हुये

यह आवाज उठाई थी कि अदालतों को तोड़ डालो। बस अब क्या था, अब तो 'बाबावचनं प्रमाणम्' का ध्यान रख सभी सुधारक शहर, कस्बे और ग्रामों में हल्ला मचाने लगे कि अदालतों को तोड़ दो। इन्होंने धर्म को तो तिलांजलि दे दी और अपने पापी पेट को आगे रख लिया, फिर चले अदालतें तोड़ने। भारतवर्ष में बहुत शोर गुल मचा किन्तु करोड़ों आदमियों के चिल्लाने पर एक भी अदालत नहीं टूटी। सच तो यह है कि स्वार्थी मनुष्य दुनियां में कुछ नहीं कर सकता। यदि ये लोग स्वार्थ का काला मुख कर देते और धर्म को आगे रखते तो एक अदालत की कौन कहे—भारतवर्ष की अदालतों का तो जिकर ही कौन करे—ये संसार की अदालतों को उखाड़ कर फेंक देते। जो बात हो चुकी उसको जाने दो। यदि ये लोग आज यह प्रण ठान लें कि हम संसार में एक भी अदालत न रहने देंगे तो वास्तव में संसार से अदालतों को तोड़ सकते हैं किन्तु इस कार्यसिद्धि के लिये धर्म के चरणों में मत्था घिसना होगा। श्रीमद्भागवत के सप्तम स्कंध के ११ अध्याय में जो तीस लक्षण वाला धर्म कहा है उसके प्रथम लक्षण 'सत्य' का पालन करना और कराना होगा। धर्म के बाकी २९ लक्षण धरे रहें एक प्रथम लक्षण सत्य ही ऐसा है जो संसार से अदालतों को उखाड़ कर फेंक सकता है। आज जितनी अदालतें चल रही हैं इनकी जड़ मिथ्या भाषण है। मुद्दई झूठा, मुद्दाअलेह झूठा, गवाह झूठे। जब समस्त

संसार ने ही झूठ बोलने पर कमर बांध ली और सत्य को दूर फेंक दिया फिर कौन पागल कहता है कि संसार से अदालतें उड़ जायेंगी।

संसार से अदालतें उड़ाने के लिये वेद ने उपदेश दिया था कि "सत्यं वद" सच बोलो। धार्मिक हिन्दुओं ने समझ लिया था कि परस्पर में प्रीति बढाने वाला, संसार में शान्ति देने वाला, अदालतो के पंजे से बचाने वाला, यदि कोई कल्पवृक्ष है तो वह सच बोलना है। धार्मिक हिन्दुओ ने कष्ट सह कर भी सत्यवाद को नहीं छोड़ा। महाराज दशरथ प्रथम दिवस आज्ञा दे चुके हैं कि कल रामचन्द्रजी को राजसिंहासन दिया जावेगा किन्तु रात्रि को कैकेई ने राजा से प्रार्थना की कि भगवन्! आपने युद्ध में जो हमको दो वरदान देने कहा था आज तक न दिये। दशरथ बोले कि न आपने मांगे और न हमने दिये, तुम मांगो हम देंगे। कैकेई ने कहा कि मैं मांगती हूं एक वरदान तो यह कि भरत को राज्य और दूसरा वरदान यह कि प्रभु रामचन्द्रजी को १४ वर्ष का बनोवास हो। इन वरदानों को सुन कर दशरथ सोचने लगे कि पहिले वर देने में कोई क्षति नहीं किन्तु दूसरे वरदान में बड़ी हानि है। प्रथम तो यह कि राजकुमार प्रभु रामजी आपत्ति में पड़ कर वनों में मारे २ फिरेंगे (२) यह कि जब रामचन्द्रजी वन को गमन करेंगे तो उनके साथ में लक्ष्मण और जनकनन्दिनी भी जावेगी, ये किसी के रोके न रुकेंगे (३) आपत्ति यह है कि रामचन्द्रजी के वन चले जाने से

मैं जीवित नहीं रह सकता अतः मेरा मृत्यु हो जावेगा (४) मेरे मरने पर रानियां विधवा हो जावेंगी और कुटुम्ब आपत्ति में पड़ जायगा (५) राजवल निर्वल हो जायगा उस समय दस्यु (चोर) वढ़ जावेंगे, उनके वढ़ने से धर्म मर्यादाओं का नाश होगा। इस कारण इस वरदान से तो धर्म और धार्मिक मनुष्यों की बड़ी क्षति होगी फिर इसका भी विचार किया कि मैंने अपने मुख से इससे यह कहा था कि जव तू वरदान मांगेगी तव ही दूंगा यदि मैं वरदान नहीं देता हूं तो प्रथम तो इस पाप से मरने के वाद मुझको नरक होगा दूसरे हमारे कुल में आज तक किसी ने भी झूठ नहीं वोला संसार में मुझको झूठ वोलने का कलंक लगेगा, रघुवंश का तो यह अटल नियम है—

रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्राण जाहिं पर वचन न जाई॥

वरदान देने और न देने इन दोनों ही अवस्थाओं में आपत्ति है, सोच विचार कर निश्चय किया कि—

रामं कामाग्रजमिव वनं प्रस्थितं वीक्ष्य शक्तो,
धर्तुं प्राणान्छिव शिव कथं तान्विहायाथ वाहम्।
निर्मुक्तः स्यां वचनमनृतं तत्पुनर्नान्यथा मे,
भूयाद्भूयस्तदनुवचनं हा वभाषे तथेति॥

यदि राम वन को चले गये तो मैं किसी प्रकार भी जीवित नहीं रह सकता और यदि राम को वन न भेजा तो मुझको

झूठ बोलने का कलंक लगेगा। इस प्रकार अनेक वार विचार करते हुये महाराज दशरथ अन्त में यह निश्चय करते हैं कि कुछ भी हो किन्तु मेरा वचन मिथ्या न हो, यह विचार कर कैकेई से कहा कि अच्छा। कैकेई ने आज्ञा पा सब प्रबंध कर दिया, प्रभु राम वन को चले गये। जिस समय सुमंत रामजी को वन में छोड़ कर लौटा और दशरथ से आकर कहा, उस समय महाराज दशरथ की जो दशा हुई उसको भी सुनने की कृपा करें।

श्रुत्वा सुमंत्रवचनेन सुतप्रयाणं,
शापस्य तस्य च विचिन्त्य विपाकवेलाम्।
हा राघवेति सकृदुच्चरितं नृपेण,
निश्वस्य दीर्घतरमुच्छ्वसितं न भूयः॥

सुमंत के वचन से राम का वन जाना सुन आज दशरथ उस शाप को याद करते हैं कि जो पुत्रशोक में शरीरत्याग की आज्ञा दे गया था। इसके पश्चात् दशरथ ने हा राघव! इतना कह कर एक ऐसी लंबी श्वास ली कि जो महाराज की अंतिम श्वास थी।

शरीर को त्याग देना स्वीकार, किन्तु मिथ्या भाषण न करना यह हिंदुओं के धर्म का एक नमूना है।

हम सत्य भाषण पर आपको कितनी कथा सुनावें, आप सुनते थक जायंगे और हम सुनाते थक जायंगे किन्तु हिन्दुओं के सत्यवाद की कथा पूरी न होगी। अस्तु, दो इतिहास हम

आपके आगे और रखते हैं। जिस समय राम रावण संग्राम हो रहा था, रावण की पीड़ा से दुखित होकर विभीषण राम की सेना में आ गया। प्रभु राम ने उसका सन्मान किया और यह कहा कि आइये लंकेश! इतना कह कर विभीषण को बिठलाया और हनुमान को आज्ञा दी कि तुम समुद्र का जल भर लाओ। समुद्र का जल आ जाने पर प्रभु रामजी ने उसमें अंगूठा डुबाया और लंकेश बनाने के लिये तिलक करने को उद्यत हुए। इस घटना को देख कर सुग्रीव सोच में पड़ गया और पुकार उठा—

नाथ विचार के काम करो,
    मम विनती सुनिये जगतारन।

प्रभु जल्दी मत करो हमारी विनती को सुन लो और फिर विचार कर काम करो। इसको सुन कर प्रभु रामजी ताड़ गये और बोल उठे कि—

तात सखा तुम नीक कही,
    पर मैं जो कही सो फिरै नहिं आनन॥

सुग्रीव! तुमने तो ठीक कहा है किन्तु मैंने जो इसको लंकेश कह दिया है, मेरे मुख से इसके लिये जो 'लंकेश' ये तीन अक्षर निकले हैं अब ये अक्षर मेरे मुख में नहीं घस सकते। मामला गोलमाल रहा, अभी श्रोता नहीं समझे होंगे। समझिये—सुग्रीव कहता है कि प्रभो! आप शीघ्रता न करें, आज विभीषण तुम्हारी शरण में आया है, तुम इसको लंकेश

बनाते हो, लंका का राजा तो यह हो जावेगा, ऐसा न हो एक दो दिन में रावण सीता को लेकर आप की शरण में आ जाय। लंकेश तो विभीषण हो गया, अब रावण क्या भिक्षुक बनेगा? प्रभु रामजी इसका उत्तर देते हैं कि हमने विभीषण को लंकेश कह दिया, लंकेश तो यह हो ही गया, रावण के लिये यह तजवीज हो सकती है कि—

सहबंधु भरत्थहि बोलि पठै,
करिहैं तपसा बसिहैं गिरिकानन।
जो दशकन्धर आन मिलै,
दई लंक विभीषण, अवध दशानन॥

यदि रावण हमारी शरण में आ जावेगा तो हम भरत को चिट्ठी लिख देंगे भरत अपने छोटे भाई सहित बनमें तप करेगा और रावण अवध का राजा हो जावेगा किन्तु लंका का तो राजा विभीषण ही रहेगा। यह है सत्यवाद का नमूना।

जगद्गुरु शंकराचार्य बौद्ध धर्म के गिराने के लिये जब उठे तब प्रयागराज में आये, त्रिवेणी के तट पर एक जलती हुई चिता पाई, लोगों से पूछा कि यह कौन मर गया है? लोगों ने उत्तर दिया कि यह मरा नहीं, जीता ही चिता लगा कर जल गया। शंकर ने पूछा कि इस का नाम क्या था? लोगों ने बतलाया कि इसका नाम 'कुमारिल भट्ट' था। शंकर ने प्रश्न किया कि, यह जीता ही चिता लगा कर क्यों जल गया? जनता ने उत्तर

दिया कि बौद्धों के साथ शास्त्रार्थ करते हुये एक बार इसके मुख से मिथ्या भाषण हो गया था, उसके प्रायश्चित्त में यह जीवित ही जल गया। शंकर ने कुमारिल भट्ट की चिता की भस्म को मस्तक पर लगाया और प्रार्थना की कि भगवन्! अब आपके कार्य की पूर्ति मैं करूंगा। हिन्दुओं की यह सत्य-परायणता है। इसको सुधारक चाहे वेवकूफी कहें और चाहे किसी और नाम से याद करें।

आज जब घर २ में सुधारक हो गये हैं तब सत्यभाषण की क्या दशा है—एक दृष्टि इस पर भी डालिये। आज अदालतों में नित्य ही सहस्रों भारतवासी गंगाजली उठाते हैं और हजारों कुरान उठा आते हैं, सैकड़ो निराकार की कसम खाते हैं, बाइबिल को चूमते हैं 'सच सच कहूंगा' अदालत के आगे यह भी कहते हैं किन्तु इतने पर भी सत्य का पता नहीं। किसी कवि ने एक दोहा बनाया था कि—

साँच बरोबर तप नहीं, झूठ बरोबर पाप।
जाके हिरदे सांच है, ताके हिरदे आप॥

कई एक सज्जन कहते हैं कि यह दोहा उस समय का है जब हिन्दुओं का साम्राज्य था आज तो इसके स्थान में एक दूसरा दोहा बन गया, वह यह है—

झूठ बरोबर तप नहीं, सांच बरोबर पाप।
जाके हिरदे झूठ है, ताके हिरदे आप॥

एक सज्जन एक दिन बाजार से घर आये और अपनी स्त्री के आगे एक अठन्नी फेंक कर बोले कि ले हलुआ पूरी छनने दे और हमारे लिये खाने को मत बनाना, हम तो कचहरी में ही माल उड़ावेंगे। स्त्री बोली मामला क्या है? उसने बतलाया कि शंभूनाथ और मोहकर्मसिंह की जो लड़ाई हुई थी उसमें शंभूनाथ ने मुझे गवाह बनाया है, उसी ने यह अठन्नी दी है और कह दिया है कि पौने दस बजे आ जाना, कचहरी में ही खाना खाना। इतना सुन कर स्त्री बोली कि महाराज! जिस दिन लड़ाई हुई आप तो यहां थे भी नहीं, आप तो काशी गये थे फिर तुम लड़ाई के विषय में क्या जानो? ये हज़रत बोले कि हम मौका देख आये और सब बातें सुन समझ आये। स्त्री बोली कि नकल नकल ही होती है असल असल ही होती है, जब तुमने देखा नहीं तो फिर समझने से क्या होगा। यह सुन कर इस हज़रत को क्रोध आगया और बोल उठा कि वाह तुमने भी खूब कहा, वकील तो तीन किये हैं वे क्या मुफ्त का ही रुपया हज़म कर लेंगे, बयान तो वैसे ही देने होंगे जैसा वकील बतलावेंगे। आज तरक्की के जमाने में यह सचाई का नमूना है।

यदि कोई मनुष्य किसी काम को जाता हो और उससे कोई मित्र पूछ बैठे कि कहां जाते हो तो फौरन कह देगा कि कहीं नहीं। इनसे तो योरूपियन ही अच्छे, यदि उनको नहीं बताना होता तो कहते हैं कि मैं प्राइवेट काम के लिये जाता हूं

किन्तु भारतवर्ष को तरक्की करके सातवें आसमान पर ले जाने वाले यही कहते हैं कि 'कहीं नहीं'। आज भारतवर्ष में झूठ बोलने की आदत पड़ गई है, विना प्रयोजन भी झूठ बोलते हैं। यहाँ पर १२ बजे रात्रि के समय व्याख्यान होता हो और व्याख्यान निरस हो तो कई एक श्रोताओं का सिगल डौन हो जाता है, यदि सिंगल डौन होकर के कोई श्रोता वृन्दावन के झूले में झूलने लगे और पास बैठा हुआ मनुष्य धक्का देकर कह दे कि क्या सो गये तो फौरन उत्तर देगा कि नहीं तो। सो गया है किन्तु स्वीकार नहीं करता, यदि यह कह दे कि हां नींद तो आ गई तो क्या इसको प्लेग खा जाय या इनफ्लुएंजा चाट जाय, सोने पर भी स्वीकार नहीं करता।

आज प्रत्येक भारतवासी पाश्चात्य शिक्षा के चक्कर में पड़के धर्म को तिलांजलि दे बैठा है। उसका फल यह हुआ है कि आज भारतवर्ष का एक एक मनुष्य एक वक्त भोजन खाकर अदालत में झूठी गवाही देने को तैयार है। अंग्रेजों की नकल करने वाले सुधारकों से हमारी प्रार्थना है कि वे अलहदा कमरे में बैठ कर इस बात का विचार करें कि अंग्रेजी संसर्ग से हमारी उन्नति हो रही है या हम मनुष्य से पशु बन रहे हैं। हमारे पूर्वजों का स्वीकार किया हुआ सत्य बोलना यह देश को तरक्की पर ले जाता है या इससे अवनति होती है। कौन कहता है कि सच बोलना देश का उत्थान नहीं करता। जब धर्म का पहिला अंग सत्य ही उन्नति पर ले जा रहा है फिर

यह कह देना कि धर्म तरक्की में रोड़े अटकाता है, मूर्खता सिद्ध करता है या नहीं। यदि तुम चाहते हो कि देश की उन्नति हो तब तो तुम को सत्य का अवलम्बन करना होगा नहीं तो भोले भाले मनुष्यों को जाल में फांस अपना स्वार्थ सिद्ध करो और देश की उन्नति उन्नति चिल्लाते रहो।

पुलिस।

पुलिस के पंजे से छूटने वाले लोगों को भी धर्म का ही सेवन करना पड़ता है। पुलिस मनुष्य के ऊपर अपना अधिकार तब ही जमाती है जब कि वह दूसरे की बहू बेटियों को बुरी निगाह से देखे या दूसरे का माल छीन कर हजम करे या किसी मनुष्य को घायल करदे। इन तीनो पापों के रोकने के लिये नीति में एक श्लोक लिखा है—

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पंडितः॥

दूसरे की स्त्रियों को अपनी माता और दूसरे के धन को बिना प्रयोजन का पत्थर, तथा दूसरे के शरीर को जो अपना शरीर समझता है वही पंडित है।

धर्मशास्त्र मे परस्त्री-गामी-पुरुष को पापी और अधर्मी के नाम से याद किया है इस कारण हिन्दुओं में यह परंपरा से चला आता है कि वे दूसरे की स्त्री को कभी भी कुदृष्टि से देखें। इस विषय में पुराण और इतिहास में सैकड़ों

आख्यायिकायें भरी हैं उनमें से दो आख्यायिकायें हम यहां लिखते हैं।

प्रभु रामचन्द्रजी जब जनक की पुष्प-वाटिका में घूम रहे थे उस समय उन्होंने जनकनन्दिनी को देखा, देख कर लक्ष्मण से बोले कि भाई इस कन्या का विवाह हमारे साथ होगा। लक्ष्मण ने पूछा कि आपने यह कैसे जाना ? प्रभु रामचन्द्रजी ने उत्तर दिया कि इसमें हमारा मन साक्षी है। उस समय प्रभु रामचन्द्रजी ने जो लक्ष्मण से कहा है उसको हिन्दी साहित्य के सम्राट 'गोस्वामी तुलसीदासजी इस प्रकार लिखते हैं--

रघुवंशिन कर सहज स्वभाऊ।
　　मन कुपंथ पग धरहिं न काऊ॥
मोहिं अतिशय प्रतीत जिय केरी।
　　जेहि सपनेहु परनारि न हेरी॥

रघुकुल में उत्पन्न हुये पुरुषों का यह सहज स्वभाव है कि उनका मन कभी भी कुपंथ पर नहीं जाता और मुझे तो अपने मन का पूर्ण विश्वास है कि मैंने स्वप्न में भी किसी दूसरे की स्त्री की तरफ नहीं देखा। यह है प्रभु रामचन्द्रजी की धार्मिक मर्यादा।

एक समय अर्जुन इन्द्र से कुछ विद्या सीखने के लिये गया, वहां पर अर्जुन के रुप लावण्य को देख कर उर्वशी इसके

ऊपर मोहित हो गई। एक दिन अर्द्ध रात्रि के समय उर्वशी अर्जुन के स्थान पर पहुंची। यह विद्यार्थी भीतर की सांकल लगा कर पढ़ रहा था। उर्वशी ने बाहर की सांकल खटखटाई। अर्जुन उठा, किवाड़ खोले, क्या देखता है कि एक रूपवती स्त्री दरवाजे पर खड़ी है उसको देख कर अर्जुन ने कहा कि—

का त्वं शुभे कस्य परिग्रहोऽसि,
किं वा मदभ्यागमकारणं ते।
आचक्ष्व मत्वा वशिनां कुरूणां,
मनः परस्त्रीविमुखप्रवृत्तिः॥

तुम कौन हो, किसकी स्त्री हो और यहां इस समय क्यों आई हो, यह सब हमसे बतलाओ किन्तु बतलाने से पहिले इतना तुमको याद रखना चाहिये कि पवित्र जो कुरुवंशी लोग हैं इनका मन कभी भी किसी दूसरे की स्त्री में नहीं जाता।

यह सुन कर उर्वशी ने अपने आने का कारण बतलाया और यह भी बतलाया कि मेरे तुल्य दूसरी स्त्री मर्त्यलोक तो क्या स्वर्ग में भी नहीं है। इसको सुन कर अर्जुन ने कहा कि मैं इसको सुना करता था कि मेरी जननी कुन्ती अत्यन्त रूपवती है। मुझको यह अभिमान था कि मैं एक रूपवती स्त्री का पुत्र हूं यदि तू कुन्ती से भी रूपवती है तो ईश्वर मेरा जन्म तेरे गर्भ से करता तो मैं अपने को और भी धन्य मानता। जिस आशा को रख कर तुम आई हो उस आशा को मैं पूर्ण नहीं कर सकता, उसके पूर्ण करने में हमारे कुल को कलंक लगेगा।

हम क्षत्रीकुल-पूत इन्द्र के अन्तेवासी।
कुल कलंक जिन देय मात हम भारतवासी ॥

इतना सुन कर उर्वशी चली गई। श्रोताओ! कुल की लज्जा और अपने आदर्श की पवित्रता रखने के लिये अर्जुन ने जो धार्मिकता दिखलाई है वह धार्मिकता अन्य जाति में किसी पुरुष के द्वारा दिखलाई जाना बहुत ही कठिन है। इस प्रकार से अपने पवित्र आदर्श को रक्षा करके भारतवासी बली और वीर बनते थे किन्तु आज विजातियों की संगति और शिक्षा से भारतवासियों ने अपने पवित्र आदर्श को छोड़ दिया, काम के पंजे में पड़ कर पशु बन गये, फल इसका यह हुआ कि भारतीय लीडरों के आदर्श को देख कर आज हाई स्कूल आदि पाठशालाओं के छात्र १५ वर्ष की आयु में धातुपुष्ट की गोलियां खरीदते हैं।

धार्मिक सज्जनों से मेरी यह प्रार्थना है कि यदि तुमको निर्बल हिन्दूजाति को वीर बनाना है और यदि तुमको हिन्दू-जाति की रक्षा करना है इतना ही नहीं जो आप हिन्दूजाति की संसार में सत्ता रखना चाहते हैं तो कृपा करके धर्म के एक अंग ब्रह्मचर्य का प्रचार कीजिये यदि इसका प्रचार न हुआ तो तुम्हारे ब्रह्मचर्य आश्रम और ब्रह्मचर्य के व्याख्यान यही दो शेष रहेंगे तथा हिन्दूजाति तो अपने स्वरूप को छोड़ कर और दूसरों के पंजे में पड़ हिन्दू नाम को भी मिटा देगी।

जिस समय पर-दारा को हम अपनी माता समझ लेंगे फिर पुलिस में यह ताकत ही नहीं है कि वह इस जुर्म में हमको गिरफ्तार करे। इस शान्तिकारक आपत्तिनाशक मातृभाव को उड़ाकर सुधारक लोग बोतलें चढ़ा कर व्यभिचारी बन गये हैं और अपने आदर्श से देश को व्यभिचारी बना रहे हैं। इन दो में कौन अच्छे, धार्मिक लोग अच्छे या बनावटी रिफार्मर। क्या दूसरों की औरत को माता समझना यह धर्म तरक्की में रोड़े अटकाता है, शोक है हमको उनकी बुद्धियों पर जो सुधारकों की बातों में पड़ कर अपनी अक्ल को बूटों से कुचल रहे हैं।

पातिव्रत।

जिस प्रकार धर्म ने यह बतलाया था कि पर-स्त्री माता है इसी प्रकार स्त्रियों के लिये पातिव्रत धर्म बतला कर पति से भिन्न पुरुषों को पिता भाई पुत्र बतला दिया है। मनुजी लिखते हैं कि यदि स्त्री अपना कल्याण चाहे तो एक-पत्नी-धर्म का पालन करे। एक-पत्नी धर्म का कहने वाला श्लोक यह है—

आसीता मरणात्क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी।
यो धर्म एकपत्नीनां काङ्क्षन्ती तमनुत्तमम् ॥

क्षमायाली होकर नियम में बंध मरणपर्यन्त निरन्तर ब्रह्मचर्य को धारण करके जो एक पति वाली स्त्री का सर्वोत्तम धर्म है उसका सेवन करे।

करोड़ों आपत्तियें आने पर भी भारतीय स्त्रियों ने इस धर्म को नहीं छोड़ा। याद करिये उस दिन को जिस दिन दुष्ट रावण अशोक-वाटिका में बैठी हुई जनकनंदिनी को यह समझाता है कि मैंने तुझ से कई वार कहा कि तू मेरी आज्ञा मानले, आज मैं तुझे फिर समझाता हूँ और एक मास का समय देता हूँ यदि तू एक मास के अन्दर मुझे पति नहीं बनालेगी तो मैं इस तलवार से तेरा शिर काट लूंगा, यह मेरा पक्का प्रण है।

रावण के इस प्रण को सुन कर सीताजी बोलीं कि दुष्ट रावण ! तेरा प्रण तो मैंने सुन लिया, तू मेरा भी प्रण सुन ले, मैं तुझे अपना प्रण सुनाती हूं, वह यह है—

श्याम सरोज दाम सम सुन्दर।
प्रभु भुज करि कर सम दशकंधर॥
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा।
सुनु शठ अस प्रमाण प्रण मोरा॥

रावण की शक्ति, द्रव्य, तेज, राजवल, राक्षसी माया आदि कोई भी सीता को धर्म से नहीं गिरा सकी, रावण को लाचार हो जाना पड़ा।

एक दिन रावण ने कुंभकर्ण को जगाया, आप बड़ी मुश्किल में जागे और जाग कर रावण को दो चार खरी खोटी सुनाईं। अन्त में कहा कि यह दुष्ट रावणा कभी भी पेट भर कर नहीं सोने देता, हमेशा कच्ची ही नींद में जगा दिया करता है।

रावण हाथ जोड़ कर बोला कि भैया काम ही ऐसा आ गया है, बिना आपके जगाये काम नहीं चलता। कुंभकर्ण बोले कि बतला कौन आफत आ गई? रावण ने कहा कि मैं एक स्त्री को ले आया हूँ, वह मेरा हुक्म नहीं मानती। कुंभकर्ण बोला कि उल्लू कहीं का, दे दे तीन चार लाख अशर्फियां, अपने आप वश में आ जावेगी। रावण ने कहा कि आप अशर्फियों की कहते हो वह लंका के राज्य को तो कुछ समझती ही नहीं। यह सुन कर अब कुंभकर्ण होश में आये और बोले कि रावण! तू कोई भारतवर्ष की स्त्री तो नहीं ले आया? रावण बोला कि भैया दशरथ के पुत्र प्रभु रामचन्द्र जी की धर्मपत्नी सीता को मैं भारतवर्ष से ही लाया हूं। कुंभकर्ण बोला तुमने गज़ब कर डाला, तू नहीं जानता कि भारतवर्ष की स्त्रियां सच्ची पतिव्रता हुआ करती हैं। खैर, तुमने जगाया है अब हम तुमको तो कुछ न कुछ उपाय बतलावेंगे ही। अच्छा तुम इतना जानते हो कि तुम दैत्य हो? रावण बोला हां जानता हूं। तुम यह भी जानते हो कि दैत्य अपनी माया से सब के स्वरूप धारण कर सकता है? रावण बोला कि हां यह तो मैं रोज़ करता हूं। कुंभकर्ण ने कहा तुम राम का स्वरूप धारण करके सीताजी के पास चले जाओ। रावण बोला कि भैया और कुछ यतन जानते हो तो बतलाओ, ये पापड़ तो हम बेल आये। कुंभकर्ण बोला कि हां—तुमने राम का स्वरूप धारण किया था? रावण ने कहा कि भैया जो किया तो था।

हमचो हिन्दू जनकशेदर आशकी परवाना नेस्त।
शोख तन बर शम्मा मुर्दा कार हर परवाना नेस्त॥

हाथ मलते हुये अलाउद्दीन ने कहा था कि पतंग दीपक पर जल कर मरता है मगर कब तब जब तक कि दीपक गुल नहीं होता। धन्य है इन हिन्दुओं की स्त्रियों को जो गुल हुये दीपक के ऊपर जल कर मर जाती हैं। यह है धार्मिक आदर्श।

अब सुधारकों के परिश्रम से संसार में व्यभिचार फैलना शुरू हुआ। दशबीस सुधारकों ने मिल कर पूना के प्रसिद्ध पुरुष डा० भण्डारकर ब्राह्मण की विधवा पुत्री का विधवा विवाह करा दिया। अभी इसी मास में उस विधवा की बिना बिवाही पुत्री ने अपना विवाह एक मुसलमान के साथ कर लिया जिसके ऊपर आज सुधारक तरक्की के गीत गाते हुए सातवें आसमान में पहुंचने से दो ही इंच नीचे रह गये हैं। विचार-शील विचार करें कि धार्मिक स्त्रियों का व्यवहार अच्छा था, सुधारकों के पंजे में पड़ी हुई स्त्रियों का। और हमारा यह पातिव्रत धर्म किस प्रकार तरक्की में रोड़े अटकाता है।

द्रव्यापहरण।

यजुर्वेद अध्याय ४० के पहिले मंत्र में लिखा है कि तुम किसी दूसरे का धन मत लो, दूसरे का धन चुराने वाले को मनु ने महापापी लिखा है। भारतवासी जिस समय इस धार्मिक नियम में पूर्ण रूप से बंधे हुये थे उस समय भारतवर्ष में चोरी

और डाका नहीं पड़ता था। पुराने जमाने के कई एक गवर्नर जनरलों ने लिखा है कि हमने भारतवर्ष में आकर अजब घटना देखी। चांदी सोने के वर्तन घरों में रक्खे रहते हैं और रात्रि में घरों में किवाड़ नहीं लगते। आज भी वद्रीनारायण के पहाड़ पर जहां योरूपीय शिक्षा का राज्य नहीं हुआ, चोरियां नहीं होतीं। इतने वड़े नैपाल राज्य में चोरी के मुकद्दमे नहीं आते। उन देशों में अभी तक हिन्दू धर्म के इस नियम का विश्वास ज्यों का त्यों है किन्तु भारतवर्ष में जिन २ हिस्सों में जितने २ कोट पतलूनधारी होटल वोतलवाज तैयार हो गये हैं अब उन देशों में हिन्दू धर्म के इस नियम को पैरों के नीचे कुचल डाला गया और प्रायः सभी लोग दूसरे का धन खाने के लिये मुख फाड़ कर किलकिला उठे। हम और की तो क्या कथा सुनावें, इन सुधारकों की ही न सुना दें। आज भारतवर्ष में सुधारकों की वृद्धि क्यों हो रही है? दूसरों का कमाया हुआ रुपया खाने को मिलता है, देश की उन्नति के लिये गरीब पवलिक से चंदे द्वारा रुपया आता है और वह रुपया सुधारकों के होटल वोतल और दालमण्डी के खर्च को पूरा करता है। हम और कहां तक रोवें वड़े दादा ने हुक्म दिया कि सवा करोड़ रुपया एकट्ठा करो, सवा करोड़ के वदले तीन करोड़ एकत्रित किया गया। पौने दो करोड़ का भोग तो तभी लग गया, रहा सवा करोड़, धीरे २ वह भी हजम। दूसरों का माल मुफ्त में मिलता देख भारतवासियों में इस प्रकार

सुधारक चढ़े जैसे कि श्रावण में मच्छर वढ़ा करते हैं। अब श्रोता बतलावें कि दूसरे का धन न लेना हमारा यह नियम अच्छा या दूसरों के ही धन पर कमर बांध लेना यह सुधारकों का स्वार्थी नियम अच्छा? जब हम दूसरों का माल अपहरण नहीं करेंगे तो पुलिस क्या हमको जबर्दस्ती पकड़ ले जावेगी? हमारे इस नियम को देखो। तुम कैसे कहते हो कि धर्म तरक्की में रोड़े अटकाता है।

सम-भाव।

वेदों में लिखा है कि समस्त प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखो। हिन्दू इस नियम के कायल रहे। हिन्दू साम्राज्य में युद्ध के अवसर को छोड़ कर किसी मनुष्य ने कभी भी किसी मनुष्य को नहीं मारा अतएव हिन्दुओं के इतिहास में फांसी का जिक्र नहीं है। हिन्दू राजा जब दूसरे देश का विजय करते थे तो कुछ नजर लेकर उसका देश उसको दे देते थे, वे समझते थे कि इसका राज्य लेने से इसका मरण हो जावेगा। मुसलमानों के साम्राज्य में यह नियम टूट गया। अंग्रेजी साम्राज्य में तो गजब ही हो गया। अगर आज शासन की बागडोर सुधारकों के काबू में आ जावे तब तो ये धार्मिकजनों को बिना फांसी दिये हरगिज न मानें। आज भारतवर्ष में जो मारा पीट बढ़ कर मनुष्यों की अकालमृत्यु होती है यह गौरांगीय शिक्षा का फल है। किसी को कष्ट न देना हमारा जो

यह धार्मिक नियम है, वतलाओ यह धार्मिक नियम तरक्की में कितने रोड़े अटकाता है ?

यदि हम दूसरे की औरतों को अपनी मातायें समझें और दूसरे के धन की इच्छा न करें तथा किसी के प्राण न लें तो क्या पुलिस हमको जबर्दस्ती पकड़ ले जावेगी ? यदि हम धार्मिक शिक्षा से पुलिस के अधिकार के तीनों दरवाजे बन्द करदें तो पुलिस अपने स्टेशन पर घर्राटे लगाने के सिवाय और क्या करेगी ? जब इसके पास कुछ काम ही न रहेगा तब दो चार महीने के बाद वृटिश गवर्नमेण्ट आपही कह उठावेगी कि इन मुफ्तखोरों को वर्खास्त करो। जो धर्म संसार से पुलिस और जेलखानों को विदा कर सकता है, मनुष्य को देवता बना सकता है, उस धर्म को यह कहना कि तरक्की में रोड़े अटकाता है, ऐसा कहनेवालों की वुद्धि कितनी तरक्की कर गई है यह सब आप लोग जानें।

शान्ति।

मित्रता।

संसार में जितने भी मनुष्य हैं उनके साथ में मित्रता रक्खो, यह वेद और धर्मशास्त्र की आज्ञा है। मगर बनावटी मित्रता नहीं, जैसी आजकल हिन्दू लीडरों में है। हिन्दू लीडरों की

मित्रता को देख कर हमको कौंसिल का चुनाव याद आ जाता है। कौंसिल के चुनाव के समय में आधे शिर पर टर्की टोपी और आधे शिर पर गांधी टोपी. एक तरफ कोट और दूसरी तरफ अचकन, एक पैर में पायजामा और एक पैर में धोती, एक पैर में बूट और एक में सलेमशाही। इस प्रकार का कार्टून मोतीलाल नेहरू का निकाल कर उस कार्टून के ऊपर लिखा गया कि 'पहिचानो ये कौन हैं, हिन्दू है या मुसलमान' एक तरफ लिखा पं० मोतीलाल और दूसरी तरफ लिखा मिस्टर मोती मियां। यह कार्टून जब बन कर आया एक वर्ष पहिले पं० मोतीलाल नेहरू के मित्र बनने का दावा करने वाले उस फोटू को खूब गौर से देखते थे और कहते थे कि अच्छी पोल-खोली। इसी प्रकार रुपयों की थैली का चबूतरा लगा कर उसके ऊपर घनश्यामदास बिड़ला को बिठलाया गया फिर पीछे से मालवीयजी डंडा लगा कर उसको ढकेल रहे हैं। उस कार्टून पर यह इबारत भी लिखी है—चल चल तुम्हें रुपये के जोर से मेम्बर बनायेंगे। इस कार्टून को देख कर जो दो वर्ष पहिले बाबू घनश्यामदासजी के और मालवीयजी के उत्कट प्रेमी मित्र गिने जाते थे वे कहते थे कि इसमें अच्छी पोल खोली। हिन्दुओं के यहां जो मैत्री का उपदेश है वह ऐसा नहीं है, उसमें तो विद्वानों ने दूध और पानी की उपमा दी है देखिये—

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिलाः,
क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन पयसा ह्यात्मा कृशानौ हुतः।

गन्तुं पावकमुन्मुनस्नद् भवद्दृष्ट्वा तु मित्रापदं,
युक्तं तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी ॥

जिस समय पानी दूध में जाकर मिला, दूध ने अपना गुण और अपना रूप पानी को दे दिया और जब दूध को भट्ठी पर चढ़ा उसके नीचे अग्नि जलाई, अग्नि के जलने से दूध पर आने वाली आपत्ति को देख पानी आप जलने लगा। जब दूध ने देखा कि हमारा मित्र पानी अग्नि से जल रहा है, दूध एक-दम उफना और अपने शरीर को जलाने के लिये अग्नि में कूदा, हलवाई ने फिर कढ़ाई में पानी छोड़ दिया, दूध अपने मित्र को पाकर अग्नि में कूदने से रुक गया।

मित्रता के विषय में मर्यादावतार प्रभु रामचन्द्रजी ने जो कुछ भी अपने श्रीमुख से वर्णन किया है उसको कविवर तुलसी-दास महाराज इस प्रकार लिखते हैं—

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी।
तिनहिं विलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरिसम रज करि जाना।
मित्र के दुख रज मेरु समाना॥
जिनके अस मति सहज न आई।
ते शठ हठ कत करत मिताई॥

मित्रता के विषय में हम एक आख्यायिका देते हैं, उसका आरंभ इस प्रकार है—

प्राचीन समय में एक सकल शास्त्रों का वेत्ता विद्वान् ब्राह्मण था किन्तु प्रारब्धवश उसके घर की दशा ऐसी थी कि जिस दिन भूल कर इसके घरमें चूहे आ जाते थे सैकड़ों गालियां देकर वापिस होते थे। इस ब्राह्मण की सात सात एकादशी (फाके) हो जाती थीं। एक दिन क्षुधा से पीड़ित हो ब्राह्मणी ने कहा कि तुम्हारे कोई सम्बन्धी (नाते रिश्तेदार) भी हैं ? ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि हमारे तो कोई भी सम्बन्धी नहीं है। फिर ब्राह्मणी ने प्रश्न किया कि यदि कोई सम्बन्धी नहीं तो न सही, कोई मित्र है या नहीं ? ब्राह्मण ने कहा कि हां मित्र तो हमारे हैं और उनका नाम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र है। ब्राह्मणी ने कहा कि आपके मित्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और आपकी यह दशा ! आप उनके पास जाइये। ब्राह्मण ने कई बार तो जाने से इनकार किया किन्तु बहुत कहने सुनने से ब्राह्मण जाने के लिये तैयार हो गया। चलते समय भगवान् के लिये भेट की आवश्यकता आई। ब्राह्मणी किसी पड़ोसी के यहां से तीन चार मुट्ठी टूटे हुये चावल ले आई और एक फटे कपड़े में बांध कर उस ब्राह्मण को दे दिये। इस भेट को लेकर के ब्राह्मण अपने घर से चला और चलते चलते द्वारिका पहुंचा। पहरेदार से कहा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से कह दो कि एक ब्राह्मण दरवाजे पर खड़ा है, (ज़माना ब्राह्मणों के सन्मान का था गोहरजान के सन्मान का नहीं था) पहरेदार फौरन मकान के अन्दर चला गया और भगवान् कृष्ण से कहा कि दरवाजे पर एक ब्राह्मण

खड़ा है। भगवान् ने पूछा कि किस रूप रंग का है? इतना पूछने पर पहरेदार बतलाने लगा—

शीश पगा न झगा तन में,
　　नहिं जाने को आय बसे केहि ग्रामा।
धोती फ़टी सी लटी दुपटी,
　　नहिं पांय उपानह और न सामा॥
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल देख,
　　रह्यो चकि सों वसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयालु को धाम,
　　बतावत आपन नाम सुदामा॥

इतना सुनते ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र फौरन उठकर बाहर आये और अपने मित्र को गले से लगाया, उन्हें अपने भवन में ले गये और चौकी पर बैठाया, परात नीचे रख के उसमें ब्राह्मण के पैर रख रुक्मिणी से कहा कि ब्राह्मण के पैर धोने के लिये जल लाओ। रुक्मिणी जल के लिये चली गई और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने ब्राह्मण के पैरों के नीचे के भाग में हाथ फेरे, हाथ फेरते ही भगवान् के चेहरे पर शोकाङ्कुर प्रकट होने लगा और फौरन बोल उठे कि—

काहे विहाल बिमायन ते,
　　पग कंटकजाल गढ़े पुनि जोये।
हाय सखा तुम पायो महा दुख,
　　आये इतै न कितै दिन खोये॥

देखि सुदामा की दीन दशा,
करुणा करके करुणानिधि रोये।
पानी परात को हाथ छुओ नहिं,
नैनन के जल से पग धोये॥

पश्चात्ताप करते हुये भगवान् कृष्ण ने ब्राह्मण के पैर धोये, अर्घ्यपाद दिया, भोजन कराया। रात्रि को बैठ कर अतीतकाल की वार्त्ता होने लगी। अन्त में श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा कि कहो हमारे लिये क्या प्रसाद लाये हो? वे चावल जो कृष्ण के लिये लाये थे, ब्राह्मण की कांख में दबे थे किन्तु भगवान् कृष्ण का वैभव देख कर चावल देने का ब्राह्मण को साहस न हुआ और उन चावलों को छिपाने के लिये पोटली भीतर को दबाई। भगवान् कृष्ण ताड़ गये कि कुछ है तो सही किन्तु ब्राह्मण संकोचवश देना नहीं चाहता। कृष्ण ने जो झटका दिया कि वह पोटली झट आगे आगई। कृष्ण ने पोटली उठाकर खोली उसमें चावल निकले। रुक्मिणी को संबोधन करके कहा कि देख रुक्मिणी! एसा उत्तम चावल है, ऐसे चावल हमने आज तक नहीं खाये। चावल तो उत्तम मिल गये किन्तु साथ ही साथ कुछ शोक भी सामने आ गया कि जिस दिन मैया यशोदा के हाथका दयामय दूध था उस दिन ये चावल न मिले और जब मित्र के हाथ के प्रेम भरे चावल मिले तब मैया के हाथ का दूध नहीं, नहीं तो बड़ी बढ़िया खीर बनती। इतना कह कर भगवान ने चावल चबाना आरंभ किया। पहिले एक मुट्ठी चावल लेकर

चबाये, फिर दूसरी मुट्ठी भरी उसको भी चबा गये, तीसरी मुट्ठी भरकर उठाई ही थी कि रुक्मिणी ने झट हाथ पकड़ लिया और बोल उठी कि—

हाथ गहे प्रभु को कमला कहै,
नाथ कहा तुमने चित धारी ।
तण्डुल खाय मुठी दोउ दीन,
कियो तुमने दोउ लोक विहारी ॥
खाय मुठी तीजी अब नाथ,
कहां निज वास की आस विचारी ।
रंकहि आप समान कियो,
तुम चाहत आपन होन भिखारी ॥

रुक्मिणी के इस कथन को सुन कर भगवान् को क्रोध आ गया, लाल २ नेत्र हो गये, दोनों ओंठ फरकने लगे और बोल उठे कि—

क्यों रस में विष वाम कियो,
तुम और न खान दियो इक फंका ।
ब्राह्मण लोक तृतीयक देत,
करी तुम क्यों अपने जिय शंका ॥
भामिनि मोहिं जिमाय भली विधि,
कौन रह्यो जग में नर रंका ।
लोग कहैं हरि-मित्र दुखी,
हमसे न सह्यो यह जात कलंका ॥

यह हिंदू धर्म की भिन्नता का नमूना है। इसमें दो बातें विचारणीय हैं—प्रथम तो यह कि सुधारकों की भिन्नता उत्तम है या प्राचीन धार्मिक भिन्नता अच्छी है? दूसरे यह विचार करना है कि क्या सच ही धार्मिक भिन्नता तरक्की में रोड़े अटकाती है? कोई भी विचारशील यह नहीं कह सकता कि धार्मिक भिन्नता तरक्की में रोड़े अटकाती है।

गुरु-भक्ति।

हमारे यहां धार्मिक दृष्टि से गुरु का जितना मान है इतना गुरु-सम्मान किसी भी जाति में नहीं है। वेद ने तो उपदेश में यह कह दिया है कि 'आचार्य देवोभव' आचार्य को देवता मानो। इसी भाव को लेकर संस्कृत साहित्य ने उपदेश दिया है कि—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुः साक्षान्महेश्वरः।
गुरुरेव पूर्णब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु, गुरु साक्षात् शिव तथा गुरु ही पूर्ण ब्रह्म हैं इस लिये श्रीगुरुजी को प्रणाम है। इसके उदाहरण बृहस्पति वसिष्ठ धौम्य हैं।

आज भारतवर्ष ने अपने धार्मिक नियम को छोड़ दिया अतएव गुरु-भक्ति सर्वथा नष्ट हो गई। जिस प्रकार से गुरु-भक्ति नष्ट हुई है उसी प्रकार शिष्य-हित भी जाता रहा। वर्तमान समय की गुरु-भक्ति के नमूने को हम आपके आगे

क्या रक्खें, रखते हुये लज्जा आती है, इतने पर भी दिग्दर्शन तो कराया ही जावेगा।

जब हम पढ़ा करते थे तो एक स्थान के हेड मास्टर अपने शिष्यों को एन्ट्रैंस का इम्तिहान दिलाने के लिये दिल्ली आये। उनका एक पुराना शिष्य हमारे मुहल्ले में रहता था। हमने उससे कहा कि आपके यहां के हेड मास्टर आये हैं चलिये मिल आवें। उसने उत्तर दिया कि हमको नहीं मिलना, आप मिल आइये। हमने कहा कि आप तो उनसे पढ़े हैं। उसने जवाब दिया क्या मुफ्त पढ़े हैं, फीस नहीं दी है।

हमने एक बार एक किस्सा सुना था, वह यह है कि एक हाई स्कूल जंगल में था। एक दिन एक शिकारी उसी तरफ शिकार खेलने गया। उसने एक भयंकर जानवर पर गोली चलाई, वह गोली खा कर भाग गया। शिकारी उसको देखता तलाशता हुआ हाई स्कूल की तरफ आया। इधर स्कूल का टाइम समाप्त हो चुका था, छुट्टी पाकर विद्यार्थी अपने अपने घरों को जा रहे थे। एक लड़का उधर को भी जाता था जिधर से वह शिकारी आ रहा था। उस शिकारी ने लड़के से पूछा कि क्या इधर को शिकार गया है? लड़के ने हेड मास्टर की तरफ अंगुली करके कहा कि वह खड़ा है, मार गोली। उस शिकारी ने कहा कि वह शिकार है या मास्टर? लड़के ने उत्तर दिया कि मास्टर होगा तो तुम्हारे लिये होगा हमको तो खूंख्वार जानवर दीखता है। कहिये कितना अंतर है?

ब्राह्मण-सन्मान ।

हमको संसार में जितना ज्ञान और विज्ञान मिलता है यह सब ब्राह्मणों की-ही कृपा है। सृष्टि के आरंभ में ब्राह्मणों ने अपने सुख पर लात मारी, संसार की तृष्णा का काला मुख करके वनों को निकल गये, फल खाये, भूखे मरे, किन्तु हमारे सुख के लिये समस्त सामग्री इकट्ठी कर गये। उनकी दी हुई सामग्री से आज हम ससार भर के मजहबों को नीचे गिरा सकते हैं, हम वीर बन सकते हैं, हम इस प्रकार के पवित्रात्मा हो सकते हैं कि संसार हमारे गुण गावे। हम संसार में शान्ति का स्वराज्य कर सकते हैं, हम और कहां तक कहैं उनकी दी हुई विद्या से हम सृष्टि कर्ता साक्षात् ब्रह्म बन सकते हैं। ब्राह्मणों के इस उपकार को देख कर विष्णु ने भी कह दिया था—

> विप्रप्रसादाद्धरणीधरोऽहं-
> विप्रप्रसादात्कमलावरोऽहम् ।
> विप्रप्रसादादजिताजितोऽहं-
> विप्रप्रसादान्मम राम नाम ॥

ब्राह्मणों के प्रसाद से मैंने पृथ्वी को धारण किया, ब्राह्मणों की प्रसन्नता से कमला को वरा, ब्राह्मणों की प्रसन्नता से नहीं जीतने योग्य जो थे उनको जीता और ब्राह्मणों की ही कृपा से हमारा नाम राम है।

सृष्टि के आरंभ में सब से प्रथम और उत्तमाङ्ग ईश्वर के मुख से उत्पन्न होने के कारण तथा अपना समस्त जीवन संसार के उपकार में बिताने से श्रुति और स्मृति में ब्राह्मणों का बड़ा सन्मान है। जब हिन्दू साम्राज्य था तब बड़े बड़े चक्रवर्ती राजा ब्राह्मण को आया देख सिंहासन से नीचे उतर बैठते थे और ब्राह्मण को सिंहासन पर बिठा उनके चरणों को अपने हाथ से धोते थे। यवन साम्राज्य के समय ब्राह्मणों ने जो हिन्दू-जाति का हित किया है इस हित को हिन्दू-जाति कभी भूल नहीं सकती। जब हमारी लायब्रेरियों के ग्रंथों से हिम्माम गर्म होने लगे तब ये ब्राह्मण ग्रंथों को कंठ करके तथा कुछ कुछ पुस्तकें लेकर जङ्गलों को भाग गये। इस कर्तव्य से जलते हुये साहित्यसमूह के कुछ अंश को बचा लिया। उनका हम सन्मान करें तो यह सन्मान कौन कहता है कि तरक्की में रोड़े अटकाता है। आजकल के सुधारक उपकारी ब्राह्मणों को पोप कहते हैं, देश के शत्रु बोलते हैं, भारत की नाव डुबानेवाले कह उठाते हैं। कारण इसका यह है कि ये भारतवर्ष को पेरिस बनाना चाहते हैं, इन सुधारकों का असर अज्ञ लोगों पर भी पड़ चला है।

ब्राह्मण-अपमान में हमको एक दिन की आंखों देखी बात याद आ गई। एक समय हम और विद्यावारिधि पं० ज्वाला-प्रसादजी मिश्र जाटों के एक ग्राम में व्याख्यान देने को गये। गर्मी का मौसम था। जब व्याख्यान देकर आये बाहर चार-

पादरियों पर लेटे। ग्यारह बजे के करीब जाट और ब्राह्मणों में कुछ बातचीत हो पड़ी। होते होते वह इतनी बढ़ी कि दोनों तरफ से लट्ठ उठे। एक जाट का लड़का लट्ठ लेकर एक ब्राह्मणकी तरफ को दौड़ा। इस दशाको देख कर एक जाट बोला कि बस रे बस– मारना नहीं, गुरू है। दूसरा जाट बोला कि गुरू है तो पैर पूजे हैं शिर थोड़े ही पूजा है, दे साले के शिर में लट्ठ। आखिर मार पीट शुरू हो गई। आज यह व्यवहार ब्राह्मणों के साथ है। विचारिये मन में कि धार्मिक व्यवहार जो ब्राह्मणों के साथ में किया जाता था वह हितकर था या सुधारकों का व्यवहार जो आजकल चल रहा है वह कल्याणकारक है। पादरियों का सन्मान ईसाइयों की तरक्की में रोड़े नहीं अटकाता, और मौलवियों का सन्मान मुसलमानों की तरक्की में रोड़े नहीं अटकाता, फिर ब्राह्मणों का सन्मान हिन्दूजाति की तरक्की में रोड़े कैसे अटकावेगा?

सुधारक हिन्दू-जाति का कल्याण नहीं करते किन्तु इस जाति को संसार से ही विदा करना चाहते हैं। इसी वर्ष डा० भण्डारकर की दौहित्री ब्राह्मणकन्या ने एक मुसलमान के साथ अपना विवाह कर लिया है। यह विवाह हिन्दुओं की नाक काट रहा है किन्तु पूना के आदर्श समाज सुधारक सर्वेंट आफ इंडिया सोसाइटी के वर्तमान प्रेसीडेंट मि० जी० के० देवधर और इस सोसाइटी का मुख्यपत्र ज्ञानप्रकाश इस विवाह को उचित लिखता हुआ इसके समर्थन में कई एक

कालम काले कर चुका है। डाक्टर गौड़ तो जो चुनाव के समय मालवीयजी के सार्टीफिकेट पर हिन्दू-जाति की रक्षा के नाम पर खड़े हुये थे और हिन्दू-जाति की रक्षा का पूर्ण प्रण कर चुके थे, आज फूले नहीं समाते। इस विवाह से होने वाली तरक्की के बगीचों का अनुभव कर रहे हैं, मि० जयकर इस विवाह को देश के लिये कल्याणकारी बतलाते हैं। इसी प्रकार और और सुधारक भी इस विवाह की प्रशंसा करते हुये कहते हैं कि अब भारतवर्ष अति शीघ्र तरक्की करेगा। ऐसे सुधारकों की हिन्दू-जाति को आवश्यकता नहीं है। भारत तो ऐसे सुधारकों को चाहता है जैसे प्रभु रामचन्द्रजी तथा लक्ष्मण और युधिष्ठिर थे जो स्वयं धर्मादर्श बन कर औरों को धार्मिक बनाते थे। भारत इस समय के सुधारकों से अपने को कतल होते देख आंसुओं की धारा बहाता हुआ कह रहा है—

होते जो रामचन्द्र राघव आज भारत में,
दुष्ट दुराचारी कहूं देखहू न परते।
होते जो धर्मी युधिष्ठिर से सत्यवादी,
लंपट लबारन को कारो मुंह करते॥
होते जो लक्ष्मण और भरतजी से भैयाबंधु,
वैर के करैया तो तलैया डूब मरते।
आरत है भारत पुकारत है बार बार,
धर्मवीर होते तो हमारी पीर हरते॥

सज्जनो ! यद्यपि आज मुसलमान प्रभृति विजातियों की करामात से हिन्दू-जाति पर अनेक संकट पड़े हुये हैं किन्तु उन समस्त संकटों से प्रबल संकट यह आ गया है कि अब सुधारक हिन्दू जाति को संसार में रहने देना ही नहीं चाहते ! इस समय धार्मिक लोगों का चुप रहना नाशकारक है अतएव सुधारकों का प्रबल विरोध करके इनके जाली किले को सदा के लिये गिरा देना चाहिये । इतना कह कर मैं इस विषय को समाप्त करता हूं ।

हरिः ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

* श्रीगणेशाय नमः *

[२]
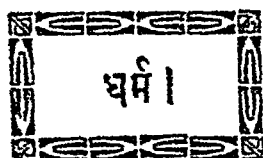
नौमीड्यतेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय,
गुञ्जावतंशपरिपिच्छलसन्मुखाय।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु,
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय॥ १

धर्म भक्ति हित जीव सब, मानव धरहिं शरीर।
इनसे जे वंचित रहैं, ते पशु पक्षी कीर॥ २

धर्म उन्नति में रोड़े अटकाता है, इस प्रश्न पर पूर्व व्याख्यान में विचार हो चुका है। इस व्याख्यान में दूसरे प्रश्न पर विचार किया जावेगा जो आजकल भारतवर्ष के प्रत्येक कोने में गर्ज रहा है। सुधारकों का कथन है कि मनुष्य मात्र के बनाये भोजन खाने में क्या दोष, खाने से और धर्म से क्या सम्बन्ध, खाना कुछ और बात है—धर्म दूसरी वस्तु है, खान पान से न धर्म का सम्बंध है और न इसके सेवन से मनुष्य धर्म से पतित ही होता है। कई एक सज्जनों का कथन है कि झूठ सच से और धर्म से क्या सम्बन्ध, मिथ्याभाषण दूसरी वस्तु है-

धर्म दूसरी चीज है। किसी किसी का कथन है कि दया से और धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं, दया दया चिल्ला कर लोगों ने देश का सत्यानाश कर दिया। कोई कोई यह कह उठाते हैं कि दान से धर्म का क्या सम्बन्ध, इसी प्रकार आज सुधारक धर्म के समस्त अंगों को धर्म से पृथक् कर देते हैं, नहीं मालूम इनकी दृष्टि में धर्म क्या वस्तु है। यही जान पड़ता है कि धर्म के किसी एक अंग को तो ये धर्म मानते हैं और शेष धर्माङ्ग इनकी दृष्टि में धर्म से भिन्न तथा बेकार हैं।

इस विषय पर हम एक दृष्टान्त आप के आगे रखते हैं—किसी समय एक गांव में एक हाथी आ गया। सब गांव के मनुष्य हाथी को देखने के लिये गये। इस ग्राम में एक अंधों का पोषणालय था, उसमें कई एक अंधे रहते थे, उन्होंने भी हाथी के देखने की इच्छा प्रकट की। कुछ मनुष्यों को दया आई उन्होंने एक एक अंधे को अपने कंधे पर चढ़ा लिया और हाथी दिखलाने ले चले। हाथी के पास पहुंच एक मनुष्य ने एक अंधे का हाथ हाथी के कान से लगा कर कहा कि देख यह हाथी है, दूसरे ने अपने ऊपर चढ़े हुए अंधे को पूंछ पकड़ा कर कहा कि देख यह हाथी है, तीसरे ने सूंड़, चौथे ने दांत, पांचवें ने पैर, और छठे ने मस्तक पर हाथ रख कर हाथी के देखने को कहा। इस प्रकार हाथी दिखला कर इन अंधों को इनके निवास स्थान पर पहुंचा दिया गया। रात्रि में जब इनके पास दो चार मनुष्य आखों वाले भी बैठे थे तब अंधों में हाथी का जिक्र

चला। एक अंधे ने पूछा कि क्यों साहब आप हाथी देख आये अब यह तो बतलाओ कि हाथी होता कैसा है ? जिस अंधे ने हाथी का कान छुआ था वह बोला कि हाथी ऐसा होता है मानो अनाज पिछोड़ने का सूप (छाज), दूसरा बोला कि तुमने हाथी देखा ही नहीं, हाथी तो ऐसा होता है जैसा मोटा डंडा, इसने पूंछ देखी थी। तीसरा सूंड़ देखनेवाला बोल उठा कि नहीं मालूम तुम लोग क्या देख आये-हाथी तो ऐसा होता है जैसा धान कूटने का मोटा मूसर। चौथे ने कहा कि तुमने हाथी देखा ही नहीं—हाथी ऐसा थोड़े ही होता है जैसा कि तुम बतलाते हो हाथी तो हमने देखा है हमसे सुनिये—हाथी ऐसा होता है मानो चिकनी चिकनी गदा (मोंगरी) है, इसने दांत देखे थे। पैर देखने वाला बोला कि तुम्हारी आंखें तो फूटी ही थीं मालूम होता है कि हाथ भी टूट गये थे, हमने खूब हाथ फेर कर देखा, हाथी होता है जैसा खम्भा हो। छठा बोला कि नहीं मालूम तुम क्या देख आये, हमने खूब हाथ फेर कर देखा, हाथी यथा था कंडों का बिटहा था। इस प्रकार एक दूसरे की बात को न मान कर प्रत्येक अंधा अपनी बात को सत्य करना चाहता था। जब विशेष विवाद होने लगा तब एक मनुष्य ने कहा कि इन सब अंगों को मिला लो हाथी हो गया। जिस प्रकार इन समस्त अङ्गों के मिलने से हाथी होता है उसी प्रकार धर्म के तीस अङ्गों के मिलने पर धर्म हो जाता है। धर्म के तीस अङ्ग ये हैं —

सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः ।
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम् ॥
सन्तोषः समदृक्सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः ।
नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम् ॥
अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः ।
तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव ॥
श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः ।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ॥
नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः ।
त्रिंशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति ॥

हे राजन् पाण्डुपुत्र ! सत्य, दया, तप (एकादशी व्रत आदि) शुद्धता, सहनशीलता, युक्तायुक्त का विचार, मन का निग्रह, बाहरी इन्द्रियों का दमन, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, दान, यथोचित मंत्र का जप, सरलता, संतोष, सब में समानदृष्टि रखनेवाले महात्माओं की सेवा करना, प्रवृत्तकर्म से धीरे धीरे निवृत्त होना, मनुष्यों को कर्म का फल उलटा मिलता है यह देखना, वृथा भाषण से बचना, आत्मविचार करना, अन्न आदि का सकल प्राणियों को यथोचित भाग देना, उन सकल प्राणियों में और विशेषतः मनुष्यों में आत्मबुद्धि और देवताबुद्धि रखना, महात्माओं के आश्रयभूत इन श्रीकृष्णजी का कीर्तन श्रवण, स्मरण, सेवा, पूजन, नमस्कार, दासभाव, सख्यभाव और निवेदन करना, यह तीस लक्षणों वाला सकल मनुष्यों

का उत्तम साधारण धर्म है जिसे ऋषियों ने उत्तम प्रकार से कहा है क्योंकि इसके द्वारा सर्वात्मा भगवान् प्रसन्न होते हैं।

धर्म के तीस अङ्गों में से इक्कीस अंग ऐसे हैं कि जिनके आचरण से संसार में शान्ति, सुख, प्रतिष्ठा द्वारा संसार की दिनोंदिन उन्नति, और स्वर्ग की प्राप्ति होती है—अंतिम नौ लक्षणों के आचरण से मोक्ष मिलती है—धर्म का प्रथमाङ्ग सत्य, तथा शम और दम, ब्रह्मचर्य इन चार अंगों का वर्णन प्रथम व्याख्यान में आ चुका है शेष अङ्गों का वर्णन और उनसे होने वाले लाभ हानि का विचार इस व्याख्यान में किया जावेगा।

दया।

धर्म का दूसरा अंग दया है। अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से जो मनुष्य पशु बन गये है वे दया को धर्म ही नहीं समझते, इसी कारण से आज भारतवर्ष में दीनों के ऊपर आपत्ति का पहाड़ आ पड़ा है (१) तो वे सर्वदा पेट की ज्वाला से पीड़ित रहते है, चौबीस घंटे में एक समय रूखा सूखा भोजन दीन को जिस दिन मिल जाता है उस दिन वह अपने को कृतकृत्य समझता है, इनके छोटे २ बच्चे दारुण पीड़ा भोग कर कुछ तो यमराज के ही यहां चले जाते हैं और कुछ जैसे कैसे बड़े होते हैं। दूध को ये कभी स्वप्न में भी नहीं जानते, फलों के नाम तक का ज्ञान नहीं, रुग्णावस्था में द्रव्याभाव से औषधि नहीं मिलती। इनके इस करुणामय जीवन को देखते ही मनुष्य के

रोयें खड़े हो जाते हैं, चित्त घबरा जाता है, आंखें पानी छोड़ने लगती हैं, इस दुःखमयी घटना के रहते हुये भी समस्त संसार इन्हीं के ऊपर अत्याचार करता है। जमींदार और ताल्लुकेदारों के जितने अत्याचार हैं सब इनके ऊपर, जंगली जानवर और प्लेग आदि भयंकर रोगों के धावे इनके ऊपर, मोटरादि गाड़ियां इन्हीं के प्राण लेती हैं, पुलिस के कानिष्टेबिल इनको धमकाने और गाली देने में तथा काम करवाने में ही अपनी वीरता समझते हैं, विदेशी लोग भारत में रोब जमाने के लिये इन्हीं को बूट से ठुकराया करते हैं, कई एक शिकारी शिकार पर गोली छोड़ते हैं शिकार बचजाता है गोली के शिकार यही बनते हैं। इनकी रक्षा का ध्यान न पंडितों को है न लीडरों को, न दानियों को है न सेठ साहूकारों को, न ताल्लुकेदारों को, न बृटिश गवर्नमेंट को। प्रत्येक पार्टी गवर्नमेंट से अपने लिये चिल्लाया करती है, परन्तु इन गरीबों के हित के लिये कभी कोई अपने मन में विचार तक नहीं करता! यदि ये लोग किसी से अपना दुःख सुनाई तो प्रथम तो सुननेवाले का साक्षात्कार होना इनके लिये उतना ही कठिन है जितना कि पापी के लिये ईश्वर का साक्षात्कार। यदि साक्षात्कार भी हो गया और इन्होंने कुछ प्रार्थना की तो उसके उत्तर में दो चार गालियां और 'क्यों बे क्या बकता है' प्रभृति शब्द मिलते हैं। सच पूछिये तो इनके आंसू पोंछनेवाला आज भूमण्डल में दिखलाई नहीं देता। जिस भारतवर्ष में मनुष्यों की यह दशा हो, उसकी

उन्नति के गीत गाना और उसके लिये स्वराज्य मांगना लज्जित कर देता है। दूसरे देशों का सिद्धान्त है कि निर्वलों का संसार में रहने का कोई काम नहीं है, इसके विरुद्ध हिन्दुओं का सिद्धान्त है कि निर्वलों को वलवान वनाओ। किन्तु आज हिन्दू भी आचार व्यवहार में विदेशियों से चार कदम आगे हैं अतएव हिन्दू भी अपनी सारी ऐंठ इन्हीं गरीवों को दिखलाते हैं। जिस देश में रन्तिदेव जैसे दीनपालक हुये हों उस देश के दीनों की यह दशा देख कर कुछ भी कहते नहीं वनता, केवल रोते ही वनता है। यह दशा क्यों हुई, इसके उत्तर में यही कहते वनता है कि धर्म के द्वितीय अङ्ग 'दया' को मनुष्यों ने संसार से उखाड़ कर फेंक दिया। इन गरीवों की रक्षा संसार में न कोई कर सकता है और न करा सकता है। यदि कोई कर सकता है तो वह दयालु पुरुष कर सकता है और यदि कोई करवा सकता है तो वह दया करवा सकती है। हिन्दुओ ! तुमने दया को छोड़ दिया, उसका फल यह निकला कि आज तुम्हारे भाई इस दशा पर पहुंच गये हैं। आज गरीवों पर दया नहीं; आज वलवानों पर दया है, धर्म समझ कर दया नहीं, डण्डे के जोर से दया है। यदि तुम संसार में दया का प्रचार नहीं करोगे तो इन दीन हीनों का कभी उत्थान नहीं होगा। दया के गौरव को तुम नहीं जानते, तुम्हारे पूर्व पुरुषाओं ने जाना है। ज़हर से जब संसार भस्म होने लगा महादेव को दया आई, उस विष को आप पी गये। देवताओं को जब

दैत्यों ने पीड़ित किया दधीचि को दया आई, शरीर छोड़ दिया और अस्थि देवताओ को दे दिये, कहा कि- वज्र बनवा कर वृत्रादि दैत्यों को मारो। आज आप के इस कठोरपन को देख कर स्वर्ग में गये हुये आप के पूर्वपुरुषा क्या कहते होंगे। दया के विषय में एक हृदयभेदक आख्यायिका हम आप के आगे रखते हैं, ज़रा सुनने का कष्ट उठावें।

महाभारत के अंत में दुर्योधन घायल पड़ा था, अश्वत्थामा आया पूछा क्या हाल है ? दुर्योधन ने कहा कि दुःख के मारे प्राण नहीं निकलते। वह दुःख यह है कि इस युद्ध में हम सौ भाई मर गये किन्तु पांच पाण्डवों में से एक भी न मरा, यदि एक भी मर जाता तो हमारे प्राण निकल जाते। अश्वत्थामा ने कहा कि कोई बड़ी बात नहीं, हम अभी जाते हैं और पांचो पाण्डवों के शिर काट कर लाते है। अश्वत्थामा रात्रि को युधिष्ठिर के शिविर में पहुंचा, वहां पर पांचो पाण्डवों के पांच पुत्र सोते थे, धोखे से उनके शिर काट लाया। शिर दुर्योधन को दे दिये। दुर्योधन ने पहिचानने पर अश्वत्थामा को कुछ कटु वाक्य कहे कि इन बच्चों को तूने नाहक मारा। अश्वत्थामा चला गया, दुर्योधन का प्राण निकल गया। प्रातःकाल द्रौपदी को पुत्रों के मरने का ज्ञान हुआ, द्रौपदी बड़ी दुःखित हुई—माता को पुत्रशोक से अधिक कोई दुःख है नहीं, रोने पीटने लगी। भगवान् कृष्ण और अर्जुन ने बहुत समझाया किन्तु द्रौपदी का ...सन्तोष नहीं हुआ। अर्जुन ने प्रतिज्ञा की कि तेरे पुत्रों के मारनेवाले

मरने से उतना ही कृपी को होगा। हे पति ! आप इसको मारते हैं यह साक्षात् द्रोणपुत्र है—द्रोणपुत्र क्या इसको वही द्रोण समझो कि जिससे आपने वीरगर्भध्वंसिनी बाणविद्या प्राप्त की है। द्रौपदी की इस दयामयी वाणी को सुन कर अर्जुन ने अश्वत्थामा के शरीरवध के विचार को बदल दिया।

यद्यपि अश्वत्थामा पुत्रघातक था किन्तु ब्राह्मण था, गुरु-पुत्र था, पशु की भांति रथ में बंधा था, लाचार था, कुछ कर नहीं सकता था अतएव दीन था। अश्वत्थामा की माता को अभी पतिका दुःख उठाना पड़ा है अब पुत्रशोक होगा। पति-व्रता, साध्वी गौतमी दीन अवस्था में है इस कारण द्रौपदी को दया आई। ऐ हिन्दुओ ! एक दिन तुमको पुत्रघातक पर भी दया आती थी किन्तु आज रात दिन विलाप करने वाले अपने दीन भाइयों पर भी दया नहीं आती, यह शोक नहीं तो और क्या है ! जब तक प्रत्येक मनुष्य के अंतःकरण में दया का संचार न होगा तब तक दुःख रूपी समुद्र में डूबे हुये दीनों का भी उद्धार न होगा। यदि आप निर्धन भारतवासियों के जीवन को स्वर्गीय जीवन बनाना चाहते हैं तो धर्म के द्वितीयाङ्ग दया का प्रचार कीजिये। दया के बिना और कोई भी अवलम्ब ऐसा नहीं है जो दीनों के दुःख को दूर कर सके। जो हम यह मान बैठें कि दया धर्म नहीं है तब तो निर्बल संसार में रह ही नहीं सकेंगे—दया को धर्माङ्ग न मानना यह मूर्खता है।

उपवास ।

——:※:——

जो वस्तु सहज में ही विना परिश्रम मिल जाती है, मनुष्य के चित्त में उसका किञ्चित् भी गौरव नहीं होता । इसके विरुद्ध जो वस्तु बहुत परिश्रम से उपलब्ध होती है· मनुष्य उसको बहुमूल्य समझ कर उसकी रक्षा करता है। यही दशा धर्म की है। जो लोग धर्म के ऊपर अपने तन मन धन को व्यय करते हुये धर्म की रक्षा करते हैं उनके अन्तःकरण में धर्म गौरव की वस्तु है और जो लोग धर्म के लिये कुछ भी भेंट नहीं देते उनकी दृष्टि में धर्म किञ्चित् भी काम की चीज नहीं है। लड़कपन से धर्म की सेवा करनेवाले शिवि, दधीचि, हरिश्चन्द्र ने अनेक कष्ट सहे किन्तु धर्म का पालन किया। जरासंध कंस आदि जिन मनुष्यों ने बालकपन से धर्म की सेवा नहीं की उन्हों ने फिर जन्म भर धर्म को कोई चीज ही नहीं समझा। सिद्ध हो गया कि जिस वस्तु पर अपना तन मन धन व्यय होता है मनुष्य उससे प्रेम करता है और जिस वस्तु के लिये मनुष्य का कुछ भी व्यय नहीं होता मनुष्य उसकी रक्षा में दीर्घसूत्री बन जाता है।

भारतवर्ष के प्राचीनकाल के ऋषियों ने धर्म में प्रेम बढ़ने के लिये अनेक विचार जनता के आगे रक्खे हैं उसी प्रकार भगवान् नारद भी धर्म बतलाते हुये सत्य और दया के पश्चात्

धर्म का तृतीयाङ्ग 'तप' बतलाते हैं। यहां तप का अर्थ है एकादशी व्रतादि अनेक उपवास। जो मनुष्य धर्म के इस तृतीय अंग का पालन करता रहता है उस मनुष्य के अन्तःकरण में आस्तिकता की लहरें हिलोरें मारा करती हैं और जो लोग इस अंग का पालन नहीं करते उनकी आस्तिकता में धब्बा लग जाता है। चक्रवर्ती राजा अम्बरीष और युधिष्ठिर इसके उदाहरण हैं। व्रत के प्रभाव से अम्बरीष इतना धार्मिक बन गया था कि निमंत्रण दिये हुये महर्षि दुर्वासा को जब तक भोजन न करा लिया महान् कष्ट भोगने पर भी—क्षुधा और प्यास के मारे शरीर जर्जरीभूत होने पर भी—अन्नजल ग्रहण नहीं किया। इसी प्रकार निरन्तर व्रतों का सेवन करनेवाले युधिष्ठिर प्रत्येक कार्य में धर्माधर्म का निर्णय विचारा करते थे। आज बचपन में पाई हुई शिक्षा सबसे प्रथम व्रत (उपवास) को ही उड़ाने की तैयारी होती है; इसके ऊपर कई प्रकार की हुज्जतें खड़ी करके मनुष्य के उपवासों की श्रद्धा सर्वथा उड़ाई जाती है। फल इसका यह निकलता है कि शिक्षित हिन्दू समुदाय अपने धर्म को अपने आप ढपोलसंख बतला रहे हैं। इधर मुसलमानों में धर्म की कट्टरता पाई जाती है। जब हम इसका कारण विचार करते हैं तो इस फल पर पहुंचते हैं कि रोजे (उपवास) के रखने से ही मुसलमानों के चित्त में धर्म की गौरवता है। सिद्ध हो गया कि मनुष्य को उपवास ही प्रबल आस्तिक बना सकते हैं। यदि आप चाहते हैं कि संसार धार्मिक बने तो इसके

लिये आपको संसार में उपवास की परिपाटी को फैलाना होगा। आजकल के सुधारक आस्तिकता का मटियामेट कर चुके हैं अब कहते हैं कि भूखा रहना भी कोई धर्म है, यह तो स्वार्थी पोपों ने अपने लाभ के लिये जाल बिछाया है।

आरोग्यता।

वर्तमान समय में व्याधि समुदाय. मनुष्य के ऊपर एकदम टूट पड़ा है—कहीं प्लेग, कहीं इन्फ्लूएञ्जा, कहीं सरसाम, कहीं निमोनियां, कहीं भगंदर, कही शरीर के फोड़े। आज अनेक व्याधियां मनुष्यों को सता रही हैं। आज ईश्वर और गवर्नमेण्ट की कृपा से दिनोंदिन डाक्टरों की वृद्धि हो रही है, साथ में ही जैसे २ डाक्टरों को वृद्धि हो रही है वैसे ही वैसे दिनोंदिन रोगों की भी वृद्धि हो रही है। गवर्नमेण्ट की आज्ञा से सफाई के भी महकमे खुलते जाते हैं तब भी रोगों की अधिकता नहीं मिटतो। चाहे लक्षों डाक्टर बढ़ जावें और सफाई के ऊपर सफाई होती रहे तो भी व्याधि-समुदाय बढ़ता ही रहेगा। शास्त्रकारों ने व्याधि को उड़ाने के लिये धर्म के चतुर्थाङ्ग शौच का उपदेश किया है। यहां पर कई एक सज्जन यह कह बैठेंगे कि संस्कृत ग्रन्थों ने जिसे शौच के नाम से लिखा है आजकल उसी को सफाई कहते हैं। जो लोग योरुप की शिक्षा से नरपशु बन गये हैं उनकी दृष्टि में शौच और सफाई एक ही बात है किन्तु वास्तविक में शौच और

सफाई में बड़ा भारी अन्तर है। जिन लोगों को फर्स्ट क्लास और सेकंड क्लास में यात्रा करने का अवसर मिलता है वे भली भांति जानते हैं कि इन दोनों क्लासों के पाखानों में कितनी सफाई रहती है, चिकनाहट के मारे पैर रपटता है। वहां पर गिरा हुआ आलपीन भी अलहदा ही चमकता है। जैसा साफ यह पाखाना रहता है ऐसे साफ किसी किसी के घर रहते होंगे, किन्तु है यह सफाई, शौच या शुद्धता नहीं है। गौ के गोबर का चौका लगा हुआ है और वहां पर मक्खी भिनभिना रही है, मक्खी भिनभिनाने पर भी वह शुद्ध है, वहां पर बैठ कर भोजन करने में शास्त्रविधि है, बड़ी सफाई होने पर भी पाखाने में भोजन खाने का निषेध है। दूसरे लोगों की सफाइयां देखने मात्र की हैं किन्तु हिन्दुओं की शुद्धता कुछ गौरव रखती है। जो लोग वैद्यक पढ़े है वे जानते हैं कि गौ के गोबर के चौके में कितने गुण हैं।

शास्त्रकारों ने शौच (पवित्रता) दो प्रकार की मानी है—एक आभ्यन्तर और दूसरी बाह्य। आभ्यन्तर शुद्धि में सर्वथा पवित्र, निरोग सात्विक अन्न खाने की हिन्दू शास्त्र में विधि है फिर भोजन की भी कुछ रीति है। यह नहीं है कि जब जो जहां जैसा पदार्थ जिस दशा में मिला वैसे ही खाने लगे। हिन्दू शास्त्र ने मनुष्यों के लिये प्रत्येक क्षण चकरी की भांति मुंह चलाने का निषेध किया है। भोजन का समय बतलाता हुआ हिन्दू शास्त्र लिखता है कि "याममध्ये न

भोक्तव्यं यामयुग्मं न लंघयेत्" भोजन खाने से तीन घंटे के अन्दर फिर अन्न भोजन न करे नहीं तो उसका रस विषैला बन जायगा और दूसरे पहर का उल्लंघन न करे अर्थात् भोजन करने से छः घंटे के अन्दर ही दूसरा भोजन करले। भोजन कितना करे इसका विवेचन करता हुआ। हिन्दू शास्त्र लिखता है कि—

द्वौ भागौ पूरयेदन्नैस्तोयमेकेन पूरयेत्।
मारुतस्य प्रचारार्थं चतुर्थमवशेषयेत् ॥

पेट के चार भाग समझ कर दो भाग अन्न से पूरित करे और एक भाग पानी से भरे, चतुर्थ भाग वायु के आने जाने के लिये शेष रक्खे। फिर भोजन करे तो चौके में करे, कपड़े उतार कर करे। हिन्दू शास्त्र ने भोजन करने में शिर का नंगा रहना और दिशा जाने के समय शिर ढाकना लिखा है जिसका वैद्यक से अधिक सम्बन्ध है। भोजन शूद्र के हाथ का बनाया न हो, शूद्र का अन्न न हो, चोरी आदि दोषों से रहित अन्न हो। मार्जार, कुत्ता, मनुष्यादि का उच्छिष्ट अन्न न हो, ऐसे अन्न का भोजन किया जावे यह आभ्यन्तर शौच है। प्रातःकाल उठना, शौच के पश्चात् दन्तधावन करना, ठण्डे जल में स्नान करना, शुद्ध पवित्र आसन पर बैठ कर संध्या, तर्पण, अग्निहोत्रादि करना, ठाकुरजी का पूजन करके तुलसी-मिश्रित चरणामृत पीना, अपवित्र मनुष्य और अपवित्र वस्तु का स्पर्श न करना, रजस्वलादि दोषरहित ऋतुमती

स्वकीया स्त्री से संसर्ग करना अन्य सबका त्याग कर देना, यह वाह्य शुद्धि है।

इस प्रकार की पवित्रता से मनुष्य दीर्घायु, पवित्र और पुष्ट हो सकता है। आज इन सब कार्यों की सफाई करके केवल वाह्य दिखावे की सफाई को मुख्य मान लिया है अतएव दिनोंदिन संसार की आरोग्यता विदा हो रही है। आरोग्यता वृद्धि के लिये यह आवश्यकीय है कि शास्त्रोक्त शौच का संसार में प्रचार करें। पवित्र परिश्रम से कमा कर और अपने हाथ से पवित्रता पूर्वक भोजन बना कर खाने में तीन लाभ हैं— (१) ऐसा करनेवाला मनुष्य कभी आलसी नहीं हो सकता, (२) इस से हिन्दुओं की आर्थिक दशा भी उन्नति पर पहुंचती रहती है। आज सुधारक लोग घर का भोजन छोड़ कर होटल भोजन पर टूट पड़े हैं जिससे हिन्दुओं की आर्थिक दशा दिनों दिन गिरती जाती है। आज भोजन पकाने का जितना लाभ है वह होटल के मैनेजर, खानसामा आदि ईसाई मुसलमानों को होता है, (३) आरोग्यता रहती है किन्तु होटलों में मांस शराब को उड़ानेवाले "यादृशं भक्षयेदन्नं बुद्धिर्भवति तादृशी" पवित्रापवित्र जिस प्रकार का अन्न मनुष्य खाता है उसकी बुद्धि वैसी ही हो जाती है। इस प्रकृतिसिद्ध नियम के अनुसार हिन्दू लीडरों की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है अतएव इनको खान पान में धर्म ही नहीं समझ पड़ता।

सहन-शीलता ।

आज भारतवासियों में दुर्भाव पैदा हो गये हैं इसी के कारण हिन्दूजाति के प्रत्येक मनुष्य के अन्तःकरण में द्वेष अपने फूलों को खिलाया करता है। आज यदि किसी हिन्दू से उसका एक भाई कटुवचन कह दे तो उस कटुवचन को सुनते ही सुननेवाला आपे से बाहर हो जाता है और कह उठता है कि तुमने हमको समझा क्या है ? तुम्हारे कैसे सैकड़ों घमंडियों को हमने पैरों के नीचे पीस डाला है, अब तुम भी तमाशा देख लेना, यदि तुम चैन से रोटी खा लो तो फिर तुम हमको मनुष्य ही न समझना। ऐसे ऐसे अनेक कटुवचन कह कर यह सिद्ध कर देना चाहता है कि संसार में यदि कोई सबसे बड़ी शक्ति है तो यही है। यह दुष्ट वर्ताव हिन्दुओं का केवल अपने भाइयों के साथ में होता है और भाई भी कैसे जो शक्तिहीन, अज्ञानी, भोले भाले हैं। जिस देश में अपने गरीब भाइयों के साथ यह वर्ताव किया जाता है वह देश यदि उन्नति के गीत गावे तो यह उसका पागलपन है। जो लोग अपने गरीब भाइयों के साथ इस प्रकार का वर्ताव करते हैं वे ही लोग पुलिस के आगे भयभीत होकर पेशाब करते नज़र आते हैं। यह-तो साधारण मनुष्यों की बात है। आगे और जो अपने को बड़ा समझते हैं तथा गरीब हिन्दुओं के साथ जो गालियों से पेश आते हैं वे आज सरकारी हुक्कामों के सामने 'जी हुजूर' किया करते हैं। आज सेठ साहूकार, रईस जमींदार, राजा बाबू,

लीडर प्लीडर सभी की यह दशा है। जो देश शक्तिशाली को देख कर बिल्ली बन जाता हो और गरीबों को देख कर शेर बन जाता हो उसमें कभी शान्ति प्रेम एकता हो सकती है? सज्जनो! यदि तुमको भारतवर्ष में इन गुणों की आवश्यकता है और यदि तुमको अपने भाइयों से प्रेम है तो कृपा कर धर्म के पंचमाङ्ग तितिक्षा का प्रचार कीजिये जब तक तितिक्षा का प्रचार न होगा प्रेम, एकता, शक्ति की वृद्धि को स्वप्न समझिये। आजकल के लीडर तितिक्षा को धर्म ही नहीं समझते। इनका कथन है कि सहन-शीलता ने ही देश का सत्यानाश कर दिया। शास्त्र ने माता पिता गुरु तथा दीन मनुष्यों के साथ में सहन-शीलता लिखा है लीडर लोग शास्त्र की ऐसी सहन-शीलता को शत्रुओं के साथ में सहन-शीलता मान बैठे हैं यह इनकी अनभिज्ञता है। यदि आज भारतवर्ष में सहन-शीलता होती तो अपने मान्यपुरुषों को ओल्ड फूल, गवांर, अर्धजंगली न कहा जाता। अंग्रेजी शिक्षित समुदाय अपने मान्य पुरुषाओं को ऊपर लिखी तीन डिगरियों की धड़ाधड़ वृष्टि कर रहा है।

अहिंसा।

कई एक लोगों की यह सम्मति है कि हिंसा शब्द का अर्थ मारना ही है निःसन्देह हिंसा शब्द का अर्थ मारना भी है और कष्ट पहुंचाना भी है। संसार में पशु पक्षी मनुष्य प्रभृति जीव ईश्वर ने रचे हैं, ये समस्त जीव ईश्वर को अत्यन्त प्यारे और उसके पुत्र हैं। हम ऐसा एक भी कारण नहीं

देखते कि जिससे परमात्मा को मनुष्य प्रिय हों और पशु पक्षी अप्रिय हों, किन्तु आज मनुष्य अपने मजे के लिये जीवों को मार मार कर खाने लगे हैं और जीव मार कर खाना इसको धार्मिक कहते हैं। कोई सबूत देता है कि ईश्वर ने हम को दो पैने दांत दिये हैं जो खास मांस खाने के लिये ही हैं, कोई कहता है कि हमारी धर्मपुस्तकों में तो इसकी आज्ञा ही लिखी है, कोई बतलाता है मांस बड़ा बलकारी है। इन सब के रहते हुये भी मैं पूछता हूं कि जिस ईश्वर के प्राण प्यारे बच्चों को तुम मार कर खाते हो वह तुम पर प्रसन्न होगा या अप्रसन्न। यहां पर सब की चाल बन्द हो जाती है। अन्य देशों की शिक्षा पाकर आज हिन्दू लोग भी मांस खाने पर टूट पड़े हैं। मैं इनसे यह पूछता हूं कि उसका भोजन करना सात्विक गुण को बढ़ाता है या तामस को। कहना पड़ेगा कि इसका भोजन तो तामसी है। क्या तामसी भोजन वाले का मन भी कभी पवित्र हो सकता है? क्या तामसी भोजन वालों से यह भी आशा रखते हो कि वे गरीबों पर दया करेंगे और संसार मे शान्ति को फैला सकेंगे? यह कभी हो ही नहीं सकता। यदि अहिंसा का एक उदाहरण भी आगे रख दिया जाय तो संसार को चकित हो जाना पड़ता है। देखिये, ऋषियों के आश्रमों का वर्णन करता हुआ संस्कृत साहित्य लिखता है कि—

व्याजृम्भमाणवदनस्य हरेः करेण,
कर्षन्ति केशरिसटाः कलभाः किलैके।

अन्ये च केशरिकिशोरकपीतमुक्तं,
दुग्धं मृगेन्द्रवनितास्तनजं पिबन्ति ॥

फाड़ रक्खा है मुख जिसने ऐसे बैठे हुये शेर के गले के बाल हाथियों के बच्चे पकड़ पकड़ कर खेंचते हैं किन्तु ऋषियों को अहिंसा के प्रभाव से शेर चूं नहीं करता, कई एक हस्ती के बच्चे शेरनी के बच्चों ने जो दूध पीकर छोड़ दिया है ऐसे शेरनी के स्तनों से दूध पान कर रहे हैं।

अहिंसा में कितना प्रभाव है, ऋषियों की अहिंसा के प्रभाव से आज सिंहों का स्वाभाविक वैर भी मिट गया और शेर को हाथी के बच्चे खेंचते हैं, शेर में जो क्रोध और द्वेष था वह सब जाता रहा। अहिंसा से वैर विदा हो जाता है, इसकी पुष्टि में योगदर्शन लिखता है कि—

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः । ३५

विभूतिपाद ।

अहिंसा में स्थिति ।(निश्चलता) होने पर उस योगी अहिंसक के समीप सब प्राणियों का वैर छूट जाता है ।

आज अज्ञानवश जो हिन्दुओं में परस्पर द्वेष चलता है इसका मूलोच्छेदन करने वाली यदि कोई वस्तु है तो अहिंसा है, किन्तु आज कई एक मनुष्य जो दोनों वक्त में दो सेर मांस से कम नहीं खाते वे स्वार्थवश अपने आप ही हिन्दुओं के लीडर बन परस्पर के वैर भगाने का व्याख्यान दे डालते हैं यह उनकी अनधिकार चेष्टा है ।

धर्मप्रेमी सज्जनो ! यदि वास्तव में तुम हिन्दू-जाति का द्वेष मिटाना चाहते हो तो अहिंसा का प्रचार करो, अहिंसा के प्रचार के विना कभी द्वेष मिट नहीं सकता। आजकल के सुधारकों की जीभ मांस के स्वाद पर लट्टू हो गई है, अतएव मांस से पेट भरने वाले अब यही मान वैठे हैं कि मांस खाने से और धर्म से क्या सम्बन्ध, धर्म तो कोई और ही वस्तु है।

दान।

भारतवर्ष के प्राचीन विद्वानों ने ही नहीं किन्तु वेद तक ने यह प्रणाली वतलाई थी कि तुम दान उनको दो जो वेद और शास्त्रों के विद्वान् हों और ऐसा हो होता आता था, भारतवर्ष के वड़े वड़े विद्वान् विना वेतन लिये ही अपने अपने स्थान पर पाठशालायें खोल कर भारतवर्ष के वच्चों को पढ़ा कर विद्वान् वनाते थे, पं० जी के गृहस्थ का पालन पोषण तथा छात्रों के भोजन वस्त्र का काम इसी दान से चलता था। इसी दान की कृपा से मंदिरों में वड़े २ विद्वान् पुजारी रह कर वेदोक्त विधि से ईश्वरपूजन करते थे, इसी दान की कृपा से छोटे २ ग्रामों में भी धुरंधर विद्वान् मिल जाते थे, इसी दान की कृपा से मां वाप का एक भी पैसा खर्च न होने पर भी लड़के विद्वान् हो जाते थे और कुछ मामूली विद्वान् नहीं होते थे किन्तु महेश ठक्कुर, रघुनन्दन, जगन्नाथ, राजाराम, वालशास्त्री, रामभिश्र, शिवकुमार, दामोदर जैसे अद्वितीय विद्वान् होते थे। किन्तु आज

योरुप के भक्तों ने पबलिक को बातें दे दे कर उस दान को अंग्रेजी स्कूलों की तरफ़ झुका दिया। अब भारतीय विद्वानों को कोई अवलम्ब नहीं रहा, न पढ़ाने में कोई सहायता देता है न पढ़ने में। इतना ही नहीं, आज जो लीडर कहलाते हैं वे संस्कृत वालों को बुरी दृष्टि से देखते है जिससे भारतवर्ष की संस्कृत विद्या दिनोंदिन कूंच करती जाती है और लीडर इसकी फिक्र में हैं कि यह विद्या किसी प्रकार अति शीघ्र संसार से उड़ जावे। हम धन्यवाद देते हैं गवर्नमेण्ट को कि जिसके द्वारा भारतवर्ष में कुछ संस्कृत कालेज खुले और उन कालेजों के ज़रिये से मृतक रूप में कुछ संस्कृत विद्या चल रही है। हम विशेष धन्यवाद देते है अग्रवाल वैश्यों को कि जिनकी दया से कुछ संस्कृत पाठशालायें खुल कर आचार्य तक के विद्यार्थी तैयार हो जाते हैं। हम धन्यवाद देते है रईस आस्तिक जमींदारों को कि जिनकी किसी २ स्थान में टूटी फूटी पाठ-शालाओं में या उच्चकक्षा की पाठशालाओं में संस्कृत पढ़ाई जाती हैं। किन्तु जो भारतवासी अंग्रेजी पढ़ गये हैं वे इन पाठशालाओं को देख कर दांत पीसते हैं, अवसर पड़ने पर संस्कृत फंड के रुपयों को अंग्रेजी फण्ड में लगा कर पाठशालायें तोड़ अंग्रेजी स्कूल बना देते हैं। आज मन्दिरों में लगा हुआ रुपया अपनी चालबाजी से छीन २ कर अंग्रेजी स्कूलों में लगा कर नये स्कूल खोले जाते हैं—जैसा कि इस समय कालपी में हो रहा है।

आज अंग्रेजी शिक्षकों के प्रभाव से दान-प्रणाली बिगड़

गई है। अब संस्कृत पाठशालाओं को दान नहीं मिलता, अब दान को अंग्रेजी स्कूलों के लिये या अन्य अन्य फण्डों के लिये लीडर ढो ले जाते हैं। लक्ष दो लक्ष रुपया मार खाना लीडर के लिये कोई बड़ी बात नहीं। सच पूछिये तो इसी रुपये के लोभ के कारण मनुष्य लीडर बनते हैं। जिनको हमारे इस लेख पर विश्वास न हो वे कृपा कर 'भारतधर्म राष्ट्रीय ग्रन्थमाला' देहली की छपाई हुई 'समस्त हिन्दू नेताओं को खुला चेलेंज' नाम की पुस्तक देख लें, उसमें लिखी हुई भारतवर्ष के प्रसिद्ध एक लीडर की लीला को देख कर लीडरों के आंतरिक भाव का फोटू आगे आ जाता है। कुछ भी हो इतना तो मानना ही पड़ेगा कि आज ब्राह्मणों को तथा संस्कृत विद्या को दान नहीं मिलता, अंग्रेजी स्कूल कालेजों को दान मिलता है जिससे संस्कृत विद्या ने भारत से बिस्तर बांध लिया है, प्रबल विद्वान् मिलने तो अभी बन्द हो गये हे किन्तु कोई दिन में सामान्य विद्वान् भी कहीं २ पर नजर आया करेंगे।

अंग्रेज़ी की दिनोंदिन उन्नति हो रही है, उन्नति होते २ अब अंग्रेज़ी इतनी उन्नति कर गई है कि बी. ए, एम. ए. वालों को नौकरी का मिलना कठिन हो गया है। हमारा ख्याल है कि १० वर्ष के अन्दर इंट्रेंसवालों को भी नौकरी नहीं मिलेगी और लीडरों का यह दावा है कि हम अंग्रेजी को इतनी उन्नति करेंगे कि जिससे ३ रुपये महीने का गांव का चौकीदार भी ग्रेजुवेट ही हो। इस विद्या की उन्नति भारतवर्ष

को फलेगी नहीं किन्तु अन्त में यह विद्या भारतवर्ष का नाश करेगी। वह भी कोई विद्या है कि जिसका लक्ष्य केवल नौकरी ही हो, नौकरी से अन्य कोई काम अंग्रेजी पढ़ा लिखा कर ही नहीं सकता। अंग्रेजी का विद्वान् नौकरी कर सकता है, डाक्टरी कर सकता है, वकालत कर सकता है, लीडर बन सकता है, इनसे भिन्न कोई काम ही नहीं कर सकता। ग्राम्य के लोगों के लिये हल जोतना आदि जितने काम हैं, वे अंग्रेजी पढ़ा नहीं कर सकता। शहर में हलवाई आदि की दुकान नहीं कर सकता। परिश्रम का काम अंग्रेजी के विद्वानों को सांप की भांति काटता है। जब इस विद्या की अधिक तरक्की होगी, घर २ में अंग्रेजी के विद्वान् होंगे, हम नहीं जानते फिर इनका गुजर कैसे होगा? जब निर्वाह नहीं होगा तो फिर "बुभुक्षितः किन्न करोति पापम्" भूखा मरता हुआ मनुष्य क्या पाप नहीं कर सकता। भूखे मरते हुये यही विद्वान् लोग अन्त में चोरी करेंगे, डाके डालेंगे और फिर अराजकता होगी, अतएव धार्मिक सज्जनों से हमारी नम्र प्रार्थना है कि दान की प्रणाली को अंग्रेजी में न व्यय करके विद्वानों को दें जिससे वे विना वेतन लिये छात्र का एक भी पैसा खर्च न होकर भारतवर्ष का एक एक मनुष्य संस्कृत का विद्वान् बने, दूसरे किसी भी ढंग से भारतवर्ष कम न रहे। शिल्प, कलें, कृषि, पदार्थ विज्ञान, सायंस, वैद्यक, दर्शन, वेद, वेदाङ्गों की शिक्षा पाठशालाओं के जरिये से होकर भारतवर्ष का बच्चा २ आस्तिक

और विद्वान् बने। संस्कृत विद्या के विना भारतवर्ष का कोई भी विद्वान् विद्वान् नहीं हो सकता, संस्कृत विद्या के विना हिन्दू धर्म नहीं बच सकता, अतएव धर्मप्रेमियों को संस्कृत का उत्थान करना चाहिये तथा अंग्रेजी विद्या का प्रचार उतना ही करना चाहिये कि जिससे भारतवर्ष का अनिष्ट न हो। हमारे सुधारक तो साफ ही साफ कहने लगे कि दान से धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं, ब्राह्मणों ने लोगों को लूटने के लिये दान को धर्म का अङ्ग बनाया है।

स्वाध्याय।

आजकल भारतवर्ष में यह शोर मचा है कि भूतल की समस्त जातियां विदुषी हो गईं किन्तु हिन्दू-जाति वर्तमान् समय में बिलकुल मूर्खा है। किसी जाति में ९७ फी सदी विद्वान्, तो किसी जाति में ९५ फी सदी विद्वान्, यदि कोई जाति हीन दशा में भी है तो उसमें भी ९२ फी सदी विद्वान् अवश्य हैं, किन्तु हिन्दू-जाति में ५ फी सदी विद्वान् और ९५ फी सदी अनपढ़े हैं। हिन्दू-जाति की इस दशा को आजकल के लीडर भारत गवर्नमेंट के आगे रखते हुये यह प्रार्थना करते हैं कि इस देश में अनिवार्य शिक्षा आरंभ कर दी जावे। इसको सुनकर गवर्नमेण्ट कहती है कि हमारे पास इतना रुपया नहीं है, गवर्नमेण्ट के इस कथन को सुन कर लीडर लोग कोई दिन के लिये चुप रह जाते हैं, कुछ दिन के बाद इस प्रश्न को फिर गवर्नमेंट के आगे रख देते हैं, गवर्नमेण्ट भी वही उत्तर दे देती है। इस

स्वाध्याय बतला दिया, जिसके छोड़ देने से आज हिन्दुओं में मूर्खता का राज्य हो गया है अतः पुनः इसका प्रचार करके भारतवर्ष को विद्वान् बनाना समस्त ही धार्मिक व्यक्तियों का काम है।

जिस समय भारतवर्ष में धर्म का पूर्ण प्रचार था, जिस समय धार्मिक व्यवस्था से मजबूरन स्वाध्याय करना पड़ता था, उस समय के जुलाहे भी इतने विद्वान् होते थे कि जिनकी बराबरी करने में आजकल के ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों में कोई कोई ही मिलेगा। राजा भोज के आगे एक जुलाहे ने एक श्लोक कहा है वह यह है—

काव्यं करोमि न हि चारुतरं करोमि
यत्नात्करोमि यदि चारुतरं करोमि।
सौवर्णमौलिमणिमंडितपादपीठ
हे साहसांक कवयामि वयामि यामि॥

मूर्ख जान कर मंत्री ने एक जुलाहे का घर छीन लिया। वह प्रार्थना करने के लिये भोज के दर्बार में पहुंचा और महाराज से पूछा कि मेरा घर क्यों छीना गया। राजा ने कहा कि क्या कुछ लिखे पढ़े हो जो तुम्हारा घर न छीना जावे? उस समय जुलाहे ने यह श्लोक कहा जो ऊपर लिखा है। जुलाहा कहता है कि राजन्! मैं कविता तो अवश्य करता हूं किन्तु मेरी कविता कालिदास आदि कवियों के तुल्य चारुतर नहीं होती यदि मैं सावधान होकर कविता करूं तो फिर

अति मनोहर भी कर देता हूं। सुवर्ण के मुकटों में जड़ी हुई मणियों से वन्दनीय चरणयुगल राजन्! आप साहस के चिन्ह हैं, आपने मेरी यह कविता देख ली, आप आज्ञा देवें तो मैं आज से कविता करूं, यदि मेरी कविता पसन्द न आई हो तो मैं अपना ताना बुनूं, यदि आप के नगर में रहने का अधिकारी नहीं हूं तो मैं अन्यत्र चला जाऊं।

जिन्होंने 'काव्यप्रकाश' पढ़ा है वे ही इस कविता के गौरव को जान सकते है। सामान्य मनुष्य का इतना विद्वान् होना हंसी खेल नहीं है यह धर्मपालन का फल था। यदि आज भी सच्चे धार्मिक वन जावें तो दश वर्ष में भारतवर्ष प्रबल विद्वान् होकर समस्त देशों का गुरु बन सकता है किन्तु लीडरों की दृष्टि में संस्कृत का स्वाध्याय ही पाप है। आप समझ गये होंगे कि ऊपर कहे हुये धर्म के जितने अंग हैं वे सब जाति धर्म का उत्थान करते हुये आचरण करने वाले को यश और स्वर्ग के दाता बनते है। इसी प्रकार आर्जव, सन्तोष, समदृक्सेवा, ग्राम्य धर्म से उपराम, मौन, आत्म विमर्शन भी संसार का उत्थान करते हैं किन्तु समय के अभाव से आज हम उनके आचरण का फल नहीं दिखा सकते जिसमें अंतिम नौलक्षण युक्त भक्ति का वर्णन है। जिस समय भारतवर्ष में हिन्दू धर्म का प्रचार था उस समय ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य की कथा तो कौन कहे शूद्रों ने भी भक्ति की भागीरथी में स्नान करके अपने आत्मा को मोक्ष पद पर पहुंचा दिया था।

इस विषय में आज हम श्रोताओं के आगे एक आख्यायिका रखते हैं। जिस समय प्रभु रामचन्द्रजी वनको जा रहे थे आगे प्रभु रामजी हैं और उनके पीछे भगवती जनकनन्दिनी, जनकनन्दिनी के पीछे वीर लक्ष्मण हैं, यहां जीव ब्रह्म का बड़ा अच्छा फोटू है। प्रभु रामजी ब्रह्म हैं, लक्ष्मण को जीव कह सकते हैं, बीच में भगवती जनकनन्दिनी को माया समझो। जीव और ब्रह्मके बीच से यदि माया हट जावे तो जीव को ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है किन्तु यहां पर वही दृश्य है जैसा कि शास्त्रों ने जीव ब्रह्म और बीच में माया का वर्णन किया है। चलने २ भगवती परमपावनी भागीरथी के तट पर पहुंचे। केवट से कहा कि हमको पार उतारो। यह सुन कर केवट बोला कि मेरे साथ चलो मैं आप लोगों को पार उतार दूं। नाव को पूर्व की तरफ छोड़ा और मलाह पश्चिम की तरफ को चला। रामजी ने कहा कि तुम नाव तो छोड़े जाते हो और आगे को बढ़ रहे हो हमको किस प्रकार पार उतारोगे, पार उतारने की परिपाटी तो यही है कि हम नाव पर बैठ जांय और तुम बल्ली अथवा पंखों से नाव को दूसरी तरफ लगा दो हम उधर उतर जावेंगे। इसको सुन कर मलाह बोला कि—

इह घाट ते थोरिक दूर अहै,
　　कटिलौं जल थाह दिखाइहौं जू।
परसे पगधूर तरै तरणी,
　　घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू॥

तुलसी अवलम्ब न और कछू,
तरिका केहि भांति जिलाइहों जू।
दरु मारिय मोहिं बिना पग धोये,
नाथ न नाव चढ़ाइहों जू ॥

इस घाट से थोड़े फासले पर कटि तक जल है वहां से आप लोगों को पार उतार दूंगा, नाव पर नहीं चढ़ाऊंगा, कहीं मेरी नाव के आपके चरणों की धूल लग गई तो मेरा तो रोजगार ही मिट जायगा फिर क्या मैं लड़कों को वेद पढाऊंगा? इसको सुन कर प्रभु रामचन्द्रजी बोले कि मामला क्या है, हमारी तो अभी समझ में ही नहीं बैठा। इसके उत्तर में मलाह ने कहा कि आप अपने मन में यह समझ रहे हैं कि यह शूद्र जाति में उत्पन्न हुआ मलाह हमारे महत्त्व को क्या जान सकता है किन्तु हम सुन चुके हैं कि—

शिलामयी गौतमधर्मपत्नी
देवाङ्गनाभूत्तवपादयोगात्।

पत्थर की अहिल्या आप के पादरज के स्पर्श से देवाङ्गना होकर स्वर्ग को चली गई, काष्ठ में और पत्थर में कुछ विशेष अन्तर तो होता ही नहीं, कहीं आपके चरणरज के स्पर्श से मेरी नौका देवाङ्गना होकर स्वर्ग को चली गई तो ऐसी दशा में मेरे बाल बच्चे भूखे मर जाँयगे। हम तो शूद्र हैं ब्राह्मण थोड़े ही हैं जो वेदपाठ से गुजर कर लेंगे, इस कारण हम आपको थोड़े २ जल से पार उतार देंगे, आप गङ्गा पार भी कर जांयगे और

हमारी नाव भी त्यों की त्यों बनी रहेगी। इसको सुन कर प्रभु रामजी बोले कि तुम्हारा कहना तो ठीक है किन्तु हमारे साथ में जनकनन्दिनी हैं ये बिना नाव के पार नहीं उतर सकतीं। मलाह ने कहा तो अच्छा हमको आप चरण धो लेने दें, जब आपके चरणों की धूलि साफ हो जावेगी तब हम आपको नाव पर बिठला कर पार उतार देंगे। प्रभु रामचन्द्रजी ने कहा कि अच्छा तुम चरण धो लो। केवट कठौते में गङ्गाजल भर कर चरण धोने को चला और अपने मन में यह विचार करता जाता था कि इनकी धूलि में यदि जड़ को देव बना देने की शक्ति है तो चार आने के कठौते से गम खाना ही ठीक है, नाव तो बच जावेगी। इस प्रकार विचार करता हुआ नाविक प्रभु रामचन्द्रजी के पास आ गया और कठौने के जल से प्रभु रामचन्द्रजी के चरणों को ऐसा धोया कि जिससे धूल बिलकुल साफ हो गई। उस कठौते के जल का पहिले आप आचमन किया, फिर अपने घर के कुटुम्बियों को आचमन कराया, इसके पश्चात् उस जल को आचमन के लिये पड़ोसियों को बांटने लगा। पड़ोसियों ने पूछा कि यह किसका चरणोदक है ? इसको सुन कर भक्ति में विह्वल केवट बोल उठा कि—

जोगी थके कह जैन थके,
ऋषि तापस थाक रहे फल खाते।
न्यासी थके जो उदासी थके,
सन्यासी थके बहु फेर फिराते॥

शेष प्रसाधक और उलायक,
थाक रहे मन में मुसकाते ।
सुन्दर मौन गहो सिध साधक,
कौन कहे उसकी मुख बातें ॥

केवट प्रभु रामचन्द्रजी को अनिर्वचनीय ब्रह्म कहता हुआ प्रभु के समीप आया और नौका पर सवार होने के लिये प्रार्थना की। जब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी जनकनन्दिनी और लक्ष्मण सहित नाव पर सवार हो गये तब मलाह ने नाव का रस्सा खोला और धीरे २ नाव को खेकर दूसरे किनारे ले गया। यहां पर नाव को रोक कर मलाह नाव से उतर पड़ा, प्रेम में गद्गद् होकर प्रभु रामचन्द्रजी को प्रणाम करने लगा। हिन्दी साहित्य के सम्राट् गोस्वामी तुलसीदासजी लिखते हैं कि—

केवट उतर दण्डवत कीन्हा ।
प्रभु सकुचे कुछ यहि नहिं दीन्हा ॥

जब केवट ने प्रणाम किया तो रामजी को संकोच हुआ कि इसको उतराई नहीं दी गई उसी को इच्छा से यह प्रणाम करता है, यह शोच कर रामचन्द्रजी ने भगवती जनकनन्दिनी की तरफ को देखा—

पियहिय की सिय जाननहारी ।
कनक मुंदरिया तुरत उतारी ॥

जब सीताजी ने अपनी अंगुली से अंगूठी उतार कर

मलाह के देने के लिये रामजी के हाथ में दी तब—

कहेउ कृपालु लेहु उतराई।
केवट चरण गहे अकुलाई॥

जब रघुकुल-कमल-दिवाकर मलाह को उतराई देने लगे तब मलाह घबरा कर रामजी के चरणों में गिर पड़ा। रामचन्द्रजी ने पूछा केवट अब तो हम तुम्हें उतराई देते हैं तुम हमारे चरणों में क्यों गिरते हो? मलाह बोल उठा कि भगवन्! हम समझते थे कि आप के आने से हमारा कुछ कल्याण होगा किन्तु आप तो हमारा अनिष्ट कर रहे हैं, आप की इस उतराई से तो हमको हमारी बिरादरी जाति से पृथक् कर देगी और हम पतित हो जावेंगे, छोटी छोटी जातियों में यह नियम होता है कि हमपेशेवाले का काम करने पर दूसरा हमपेशेवाला कुछ नहीं लेता।

नाई से न नाई लेत धोबी से न धोबी लेत,
देके उतराई मोको जात से न डारिये।

जब बिरादरी की पंचायत का यह नियम है कि नाई से नाई बाल बनवाई नहीं लेता, धोबी के कपड़े धोने पर धोबी कुछ नहीं लेता, मलाह को पार उतारने पर मलाह कुछ नहीं लेता, भला कहिये तो सही फिर मैं आपसे उतराई कैसे ले लूं। इस बात को सुन कर प्रभु रामचन्द्रजी हंस पड़े। इसका उल्लेख इस प्रकार है कि—

सुन केवट के वैन, प्रेम लपेटे अटपटे ।
विहंसे करुणाऐन, चितय जानकी लषण तन ॥

प्यारे भक्त के प्रेम में सने हुये कथन को सुनकर प्रभु रामजी जानकी और लक्ष्मण की तरफ देखते हुये हंस पड़े। हंसने के पश्चात् बोले कि तुम मलाह हो मलाह से उतराई भले ही न लेना किन्तु हमतो क्षत्रिय हैं, क्षत्रियों की उतराई लेने,पर तो पंच बिरादरी से पृथक् नहीं करते, इस कारण तुम हमसे उतराई ले लो, कोई तुम्हारी जाति का मलाह आ जावे उससे न लेना। इसको सुन कर मलाह बोला कि भगवन् ! जो आपको क्षत्रिय समझता हो उसको उतराई देना, हम तो आपको अपना बड़ा भाई समझते है—

अहं तु नद्याः परिपारकर्त्ता,
त्वं वै भवाब्धेः परिपारकर्त्ता ।
न नाविकानाविक एव कर्म,
सौख्यं लभेत्ताहि कथं तदेमि ॥

भगवन् ! मैं मनुष्यों को नदी के पार उतारता हूं अतएव मैं नदी का मलाह हूं, और आप संसाररूपी सागर से पार करनेवाले बड़े मलाह हैं, हैं तो दोनों ही मलाह, छोटे बड़े हुये तो,क्या हुआ। जब केवट केवट से उतराई नहीं लेता तो बतलाइये मैं आप से किस प्रकार उतराई ले लूं ? हां, मैंने सुना है कि आप का यह अवतार मर्यादा पुरुषोत्तम अवतार है, धर्म

मर्यादाओं के बांधने के लिये हुआ है, हमारी इच्छा है कि आप और हम मिल कर एक धर्ममर्यादा बांधें, वह यह कि—

त्वत्तो न गृह्णामि यथाहमद्य,
ग्राह्यं तथा वै भवता न तत्र।
इत्थं प्रकारेण मया त्वया च,
धर्मव्यवस्था परिपालनीया ॥

भगवन्! आज आप मेरे घाट पर आये हैं, मैं आप से एक कौड़ी भी उतराई नहीं लेता, जिस दिन मैं आपके घाट पर आऊं तब आप भी उतराई न लेना, कहीं उस अवसर पर यह अडंगा लगाने लगें कि तेरे तो पाप कर्म बहुत हैं अथवा अभी कर्मबन्धन क्षय नहीं हुआ, हम कैसे पार उतार दें। जैसे मुफ्त में मैंने आप को पार उतार दिया है, ऐसे ही मुफ्त में आप हमको पार उतार देना। यह मुफ्त की धर्मव्यवस्था आज हम पालते हैं, आप अपने घाट पर इसका पालन करना। इस अनोखे प्रेम को देख कर प्रभु के मुख से 'अच्छा' यही शब्द निकला। जिस भक्ति के अवलम्ब से कोटि कोटि पापी भव-बन्धन तोड़ कर मोक्ष को चले गये, आज वर्तमान समय के सुधारक उस भक्ति को शत्रु की दृष्टि से देखते हैं। इतना ही नहीं इस भक्ति को संसार से उड़ा देना चाहते हैं। इनकी इच्छा है कि देवमन्दिरों की पूजा बन्द कर दी जावे और इनकी आमदनी का रुपया अंग्रेजी स्कूलों में दे दिया जावे। वर्तमान समय में गुण्डे मुसलमानों ने मन्दिरों पर आक्रमण करके

सहस्रों जगह देवमूर्तियों को खण्डित किया किन्तु माननीय महात्मा मालवीयजी को छोड़ कर किसी लीडर के मुंह से हाय तक न निकली ! इतना ही नहीं, मूर्तियों के खण्डित होने पर ये हिन्दुओं के लीडर होकर भी चुप साध कर बैठ मन में प्रफुल्लित हो गये। ये जो लीडर बने हैं, ये धर्म रक्षा के लिये लीडर नहीं बने, किन्तु भारत की तरक्की के झूठे गीत गाकर स्वराज्य दिलाने की मिथ्या तारीखें मुकर्रर करके मुफ्त का माल उड़ाने के लिये लीडर पद पर सवार हुये हैं। इनसे आप हिन्दुओं का भला चाहते है? ये धर्म के किसी अंग को भी धर्म नहीं कहेंगे। इनकी दृष्टि में तो भारतीय वेष को संसार से उखाड़ कर कोट बूट हैट लगाना ही धर्म है, इनकी सम्मति में घर का भोजन छोड़ कर होटल में खाना ही धर्म का दूसरा अङ्ग है, इनकी इच्छा में कागज से मल साफ करना और खड़े होकर लघुशंका . धर्म का तृतीय अङ्ग है, भारतवर्ष के रुपये को समेट कर विलायत ले जाकर खर्च कर देना इनकी दृष्टि में यह धर्म का चौथा अङ्ग है, तरक्की के गीत गाकर हिन्दू धर्म को दुनियां से उखाड़ डालना ही धर्म का पंचमाङ्ग बतलाया जाता है, वर्णाश्रम को मिटा कर हिन्दुओं की एक जाति बनाना छठा अङ्ग, अन्तरजाति विवाह का प्रचार करना सप्तमाङ्ग, द्विजातियों में विधवा विवाह का प्रचार करना अष्टमाङ्ग, विधवाओं की दुर्दशा हो रही है इस प्रकार के गीत विधवाश्रम खोलना तथा उसमें लाई हुई गरीब लोगों

की बहू बेटियों को बेच खाना इसको ये धर्म का नवम अङ्ग मानते हैं। इस विषय के ऊपर भारतवर्ष के प्रसिद्ध आशुकवि चच्चा सूर की कविता को हम साधारण लोगों के ज्ञान के लिये यहां रख देना अच्छा समझते हैं—

वेद को न मानैं न मानैं पुराणन को,
　　जाति पांति मानैं नहिं डिमडिमी बजाते हैं।
पूजा को न मानैं धर्म कर्म हू न मानैं नेक,
　　इन्दु हिन्दु गौरव को मन से भगाते हैं॥
देखो करतूतैं ह्वै खड़े खड़े मूतैं हाय,
　　बिसकुट डबल रोटी बैठ चिमटी से खाते हैं।
श्वपच चमार मुसलमान औ ईसाइन के,
　　कर से बनाये असन हित से उड़ाते हैं॥ १

जाति जाय जल धार देश फुकै भार बीच,
　　इसकी न चिन्ता बैठ मौजें उड़ाते हैं।
ह्वै चौंचन्द छलछन्द कर फन्दा डार,
　　जनता से चन्दा लै जेबें भर लाते हैं॥
खाय के कबाब पी शराब रंडीबाजी कर,
　　पबलिक का द्रव्य पापकर्म में लगाते हैं।
श्वपच चमार विप्र जातिन को एक कर,
　　हाय हाय जाती की उन्नति बताते हैं॥२

विधवनके आश्रम खोल जिततित चर भेज,
दिव्य बहू बेटिन को हर हर कर लाते हैं।
नम्र वचन भाख भाख कुछ दिन राख राख,
चाख चाख स्वाद त्रियधर्म को नशाते हैं॥
पांच पांच सात सात सौ लै पंजाबिन से,
पाकट भर धन से खूब मौजें उड़ाते हैं।
दुष्ट दुराचारी पापधारी व्यभिचारी बनें,
इतने पर हाय ! हिन्दू लीडर कहाते हैं॥ २

यदि एक दो विचार को लेकर ये लोग धर्म को धर्म न कहते तो इसके समझाने का उपाय किया जाता, किन्तु जब इनमें चार चार विलक्षण घटनायें हो गईं अब ये कभी भी धर्म को धर्म नहीं कहेंगे, इसको हम एक श्लोक के उदाहरण से समझाते हैं—

वानरस्य सुरापानं मध्ये वृश्चिकदंशनम्।
तन्मध्ये भूतसंचारो यद्वा तद्वा भविष्यति॥

प्रथम तो बन्दर जो प्रकृति से ही चंचल है इतने पर भी उसको पिला दी गई मदिरा, अब चंचलता का कौन ठिकाना, इस उत्पन्न चंचलता में उस बन्दर को काट खाया बिच्छू ने, लीजिये अब तो गजब ही हो गया अब चंचलता और भी बढ़ गई, इतने पर भी सब्र नहीं, फिर बन्दर पर भूत चढ़ बैठा

अब क्या होगा इसको कोई विचारशील कह नहीं सकता जो कुछ हो जाय वही थोड़ा है।

इन सुधारकों ने प्रथम तो अंग्रेजी शिक्षा पाई जिसमें यह समझ गये कि हमारे पूर्वज अर्द्धजंगली मनुष्य थे, हमारे वेद गड़रियों के गीत हैं, हम इस देश के ही रहनेवाले नहीं हैं, उत्तरीय हिमालय से आये हैं, (२) इनका वेष है हैट बूट कोट अब ये हिन्दू भाषावेष से द्वेष न करेंगे तो क्या अंग्रेजी वेष से करेंगे, (३) होटलों में मांस मदिरा प्रभृति अभक्ष्य भोजन का खाना और दुराचार करना ऐसे मनुष्यों को धर्म क्यों अच्छा लगेगा (४) लीडर बन कर संसार को लूट गरीब लोगों के चन्दे को हड़प्प करना इस आमदनी के आगे भला धर्म क्यों अच्छा लगेगा ? धर्म के अङ्गों में दोष नहीं है, इन सुधारकों में दोष हैं अतः यह आवश्यकीय हो गया है कि धर्म रक्षा के लिये इन सुधारकों की पूरी पोल पबलिक के आगे रख कर इनसे घृणा कराई जावे और धर्म का प्रचार करके संसार का उत्थान किया जावे। समय मिलने पर फिर कभी कुछ सुनावेंगे आज इस व्याख्यान को यहीं समाप्त करते हैं। एक बार बोलिये प्रभु रामचन्द्रजी की जय।

कालूराम शास्त्री।

* श्रीगणेशाय नमः *

हे चन्द्रचूड़ मदनान्तक शूलपाणे,
स्थाणो गिरीश गिरिजेश महेश शम्भो ।
भूतेश भीतिभयनाशन मामनाथं,
संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष ॥ १

श्रीराघवं दशरथात्मजमप्रमेयं,
सीतापतिं रघुकुलान्वयरत्नदीपम् ।
आजानुबाहुमरविन्ददलायताक्षं,
रामं निशाचरविनाशकरं नमामि ॥ २

सुख समेत संसार में, जो चाहे निज वास ।
तो पूर्वज आदर्श को, राखै निशि दिन पास ॥

जकल भारतवर्ष में उन्नति ने इतना जोर पकड़ा है कि इसके तूफान से हिन्दू-जाति संसार से विदा होने के लिये बिस्तर बांध बैठी है। आज लीडरों का यही कहना है कि हिन्दू-धर्म और हिन्दू-जाति को मिटा कर तरक्की के मैदान में बढ़ जाओ। आज सुधारकों की यही आवाज है कि हिन्दू-जाति को मुसल-

मानों में मिला देने से ही तरक्की होगी। आज आर्यसमाजी भंगी, चमार, ब्राह्मण, क्षत्रिय, हिन्दू, मुसलमान सबको एक बना कर चन्द घंटे में तरक्की का समुद्र भारतवर्ष में बहाना चाहते हैं। यद्यपि हम प्रथम व्याख्यान में उत्तम रीति से दिखला चुके हैं कि धर्म तरक्की में रोड़े नहीं अटकाता, धर्म से संसार की उन्नति होती है, तो भी गृहस्थ धर्म पर जो लीडरों का आक्षेप है कि भारतवासियों के गृहस्थ दुःखदाई हैं, आज हम इसी के ऊपर कुछ कहेंगे कि भारतवासियों का गृहस्थ धर्म भी दिनोंदिन उन्नति ही करता है, उसमें ऐसा एक भी दोष नहीं है जो वह गढ़े में पटक कर मार डालता हो। अन्यजातियों का गृहस्थ आसुरी भाव को लिये है, किन्तु हिन्दुओं का गृहस्थ धर्म दैवी पवित्र शिक्षाओं से सुसज्जित है। हां, नास्तिक लोगों से हिन्दुओं के गृहस्थ धर्म का पालन कभी हो ही नहीं सकता। इस धर्म में इतनी पवित्रता और इतना परोपकार तथा इसके पालन में इतनी कठिनता है कि जिस कठिनता से घबरा उठना पड़ता है। गृहस्थ में बड़े २ झगड़े और बड़े २ जंजाल आगे आ जाते हैं जिनका सुलझाना बड़ा कठिन हो जाता है। गृहस्थ जंजाल है इस विषय में किसी कवि ने भगवान् शंकर और विष्णु के गृहस्थ पर अपनी उक्तियों से दो श्लोक बनाये—वे श्लोक बिना कथा के समझ में नहीं आ सकते अतएव उन श्लोकों के समझने के लिये हम कुछ उपोद्घात सुनाते हैं। एक दिन शंकर विष्णु से मिलने के लिये गये, आते हुये भगवान् रुद्र

को विष्णु ने देखा, विष्णु सिंहासन से उठे और शंकर को सत्कार पूर्वक अपने आसन पर बिठलाया, अर्घ्य के पश्चात् रुद्र से कुशल क्षेम पूछा, रुद्र ने उत्तर दिया कि भगवन्! आप अपनी कुशल क्षेम कहो, हमारा कुशल क्या पूछते हो आप जानते ही हो कि—

अत्तुं वाञ्छति शाम्भवो गणपते
रास्वुं क्षुधार्तः फणी,
तं च स्कन्दशिखी तथा गिरिसुता
सिंहोऽपि नागाननम्।
गौरी जन्हुसुतामसूयति कलां
दोषो ललाटानलो,
निर्विण्णः स पपौ कुटुम्बकलहा
दीशोऽपि हालाहलम्॥

हमारा जो गले का सर्प है वह हमारे छोटे पुत्र गणेश के वाहन चूहे को खाने दौड़ता है, और हमारे बड़े पुत्र का वाहन जो मयूर है वह हमारे गले के सर्प का भोग लगाना चाहता है, हमारी धर्मपत्नी पार्वती का जो वाहन सिंह है वह हाथी समझ कर हमारे छोटे पुत्र गणेश को समाप्त किये देता है, हमारे यहां गौरी और गङ्गा का नित्य ही कलह होता रहता है, हमारे मस्तक में जो अग्नि है वह चन्द्रमा को भस्म किये देता है, घर के इस कलह को देख कर हमने तो जहर पी लिया और ऐसी फूटी तकदीर निकली कि उस जहर से भी हम न मरे।

इसको सुन कर विष्णु ने कहा बस इतने ही गृहस्थ के कलह में आप घबरा गये? हमारा तो हाल देखो, हमारे घर में क्या क्या उपद्रव हो रहे हैं। शंकर ने कहा कि मालूम होता है आप कुछ हमसे भी बढ़ गये, थोड़ी सी अपनी भी कथा सुना दीजिये। इस प्रश्न के उत्तर में विष्णु बोले कि—

एकः पुत्रस्त्रिभुवनविजयी मन्मथो दुर्निवारः
एका भार्या प्रकृतिचपला चंचला साद्वितीया।
शेषः शय्या स्वगृहमुदधौ वाहनं पन्नगारिः
स्मारं स्मारं स्वगृहचरितं दारुभूतो मुरारिः ॥

हमारे एक ही पुत्र कामदेव है वह बड़ा दुष्ट है किसी की भी बात को नहीं मानता। संसार में देखा गया है कि जो पुत्र माता पिता के कहने को नहीं मानता वह पड़ोसियों के या अपने मित्रों के ही समझाने पर मान जाता है नहीं तो राज्य-शक्ति से डरता है किन्तु हमारा पुत्र किसी की भी बात नहीं सुनता, यह तो पुत्र की दशा है। और एक हमारे पत्नी है जिसका नाम लक्ष्मी है। वह स्वभाव से ही चंचल है, आज गिरिधारीलाल के है तो कल दूसरे के, चार दिन बाद तीसरे के, यह हमारी स्त्री की दशा है। फिर हमारा शयन शेष नाग पर होता है कहीं करवट बदलते में फन दब जाय तो ये हजरत फुंकार दिये बिना नहीं रहते, इनकी फुकार से आदमी ढेर हो जाता है, आज न मरे कल मरे। हमारा घर समुद्र के अंदर ही है जो रात दिन डूबा रहता है, कौन कहता है कि ऐसे घर

के आदमी जीवित रह सकते हैं। हमारी सवारी गरुड़ है, कहीं चलते में उसके पेट में खुजली उठ बैठे और वह चोंच से खुजाने लगे तब तो हम पके हुये आम की भांति टपक पड़ें। हमतो अपने गृहस्थ के इन विचित्र चरित्रों को अनुभव करते हुए सूख कर लकड़ी हो गये और अब उड़ीसा में चलते हैं, वहां जगन्नाथ बन कर बैठ जांयगे।

यद्यपि कवि का कथन अलंकार विशेष और हास्यरस का उदाहरण है तो भी गृहस्थ धर्म के निभाने की शिक्षा का दाता है। सुधारकों की दृष्टि में होटलों में मांस शराब खा लेना, दो एक औरतें रख लेना, औरत मरने के बाद विधवा विवाह कर लेना, कोट बूट हैट से सुसज्जित होकर विविध सवारियों पर चढ़ना, दो चार बच्चे पैदा करना, अपनी स्पीचों में धर्म का गला घोट कर मनुष्यों को पशु बनाना, इतना ही है। वास्तव में इस में किंचित् भी कठिनाई नहीं है, किन्तु हिन्दू-धर्म इस गृहस्थ को राक्षसी गृहस्थ बतला कर जो धार्मिक गृहस्थ का उपदेश करता है वह गृहस्थ बड़ा कठिन है (१) तो धार्मिक गृहस्थ के स्वीकार करने का धर्मशास्त्रों ने यह प्रयोजन बतालाया है कि भावी जीवन के सुख के लिये दान यज्ञ प्रभृति शुभ कर्मों का करना, (२) एक स्त्री के द्वारा ऋतुगामी हो कर जितेन्द्रिय बनना, (३) धार्मिक, योग्य, बलवान संतान का उत्पन्न करना, (४) आदर्श बन कर मातृ पितृ सेवा आदि आचरण द्वारा संसार को उपदेश करना, (५) गृहस्थ के सब मनुष्यों में प्रेम की

भागीरथी वहा कर उन सब को एक मन चला धर्म का पालन करवाना। वास्तव में ऐसे कठिन धर्मयुक्त गृहस्थ का निभाना वीर मनुष्यों का काम है। भारतवर्ष में जो पूर्वकाल में ओल्ड फेशन के हमारे पूर्वज रहे हैं, उनका आचरण सर्वथा वेदादि सच्छास्त्रानुकूल रहा है, वे धर्म के नमूने बने हैं, यदि इस प्रकार से गृहस्थ न बनाया गया तब तो यमराज के जेलखाने से भी बढ़िया दुःखदायी बन जावेगा ओर गृहस्थ में प्रत्येक मनुष्य अपने २ धर्म को छोड़ कर स्वतंत्रता के भूत का पकड़ा हुआ एक खासा राक्षस बनेगा, जो क्षण क्षण में संसार की हानि करेगा। आज धार्मिक, पवित्र, परस्पर में प्रेम रखने वाले गृहस्थधर्म को सुधारक कहते हैं कि यह धर्म तो तरक्की में रोड़े अटकाता है। बलिहारी है इन सुधारकों को और धन्य हैं इनकी बुद्धि को जो संसार के नाश को तरक्की और संसार के सुख को पोप लीला मानते हैं। वास्तव में बात यह है कि सुधारक लोग योरुप की सभ्यता में बह गये अब इनको हिन्दुओं का प्रत्येक नियम शत्रु दिखलाई देता है। हमारा धार्मिक गृहस्थ संसार का कल्याण करता है या संसार को हानि पहुंचाता है श्रोता लोग इसके ऊपर स्वतः विचार करेंगे। श्रोताओं के विचार के लिये हम हिन्दुओं के गृहस्थादर्श को आज श्रोताओं के आगे रखते हैं। श्रोताओं से हमारी नम्र प्रार्थना है कि प्रथम हमारे गृहस्थ धर्म को सुनें और फिर उसका फल निकालें, यदि फल बुरा निकले तो अच्छे फल वाला मार्ग तलाशें यदि फल अच्छा है तो इसका पालन करें।

आदर्श ।

पितृ-सेवा ।

आज सुधारकों की कृपा से भारतवर्ष में वह समय आ गया कि माता पिता की आज्ञा भंग करते एक सेकंड भी नहीं लगता । याद कीजिये उस दिन को जिस दिन प्रभु रामचन्द्रजी को सुनाया गया था कि प्रातःकाल आप का राजतिलक होगा और इस आज्ञा को सुन कर दशरथ की प्रजा फूली नहीं समाती थी, घर घर आनंद का राज्य हो गया था । किन्तु प्रातः काल कैकेई ने राम को बुला कर चौदह वर्ष के लिये वनवास की आज्ञा सुनाई । इसको सुन कर सारी प्रजा शोकसागर में डूब गई । गोस्वामी तुलसीदासजी ने प्रजा की दोनों दशाओं का वर्णन इस प्रकार किया है—

> सुनत राम अभिषेक सुहावा ।
> बाज गहागह अवध बधावा ॥
> जो जहं सुने धुने शिर सोई ।
> बड़ विषाद नहिं धीरज होई ॥

राजतिलक को सुन कर प्रजा के घर घर बाजे बजते थे, और वन जाने की आज्ञा को जो जिस स्थान में सुनता था वहाँ पर ही शिर धुनता था । यह दशा प्रजा की थी, रामचन्द्र जी की नहीं थी । श्रीरामचन्द्र की कुछ और ही दशा थी;

उन्होंने जब माता कैकेई से वन जाने की आज्ञा सुनी तब हंसते हुए बोले कि—

अति लघु बात लागि दुख पावा।
काहे न मोहिं कहि प्रथम जनावा॥
चारि पदारथ करतल ताके।
प्रिय पितु मातु प्राण सम जाके॥
सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी।
जो पितु मातु वचन अनुरागी॥

और कहां तक कहें—

पित्रा दत्तां रुदन् रामः प्राङ्महीं प्रत्यपद्यत।
पश्चाद्वनाय गच्छेति तदाज्ञां मुदितो ग्रहीत्॥

जब पिता ने राम को राजतिलक की आज्ञा सुनाई थी तब राम ने आंखों से आंसू गिराते हुये स्वीकार किया था और जिस समय वन की आज्ञा मिली उस समय हंसते हुये प्रभु रामजी ने उसे स्वीकार कर लिया।

अयोध्या से भगवान् राम वन को चले तब अयोध्यावासी भी साथ चले। पहिली रात्रि में अयोध्यानिवासियों का प्रभु राम के साथ शयन हुआ। प्रातःकाल अयोध्यावासी जब अयोध्या को चलने लगे तब उनको बड़ा दुःख हुआ, दुःख के मारे सभी रोने लग गये। रोते हुये अयोध्यावासियों ने यह कहा कि आप के लिए जो वनवास की आज्ञा हुई है, यह महाराज दशरथ ने

बड़ा अन्याय किया । इसको सुन प्रभु रामचन्द्रजी घबरा गये और बोल उठे कि—

असृष्ट यो यश्च भयेष्वरक्षी-
यः सर्वदास्मानपुषत्स्वपोषम् ।
महोपकारस्य किमस्ति तस्य,
तुच्छेन यानेन वनस्य मोक्षः ॥ १
विद्युत्प्रणाशं स वरं प्रनष्टो,
यद्वोर्ध्वशोषं तृणवद्विशुष्कः ।
अर्थे दुरापे किमुत प्रवासे,
न शासने वा स्थितयो गुरूणाम् ॥ २

जिस पिता ने हमको उत्पन्न किया और अग्नि सर्पादि से हमारी रक्षा की तथा सर्वदा ही हमारा पोषण किया, ऐसे महोपकारी पिता की आज्ञा मान कर यदि हम वन को चले जावें तो क्या हम पिता के ऋण से छूट गये ? यह तो केवल वन का जाना है, किन्तु पिता कोई ऐसे कार्य की भी आज्ञा दे कि जो संसार में अति कष्टसाध्य है यदि उसको पुत्र न करे तो ऐसे पुत्र का ऊपर से सूखे घास की भांति या बिजली चमक कर छिप जाने की रीति से अति शीघ्र मर जाना ही उत्तम है । जिस पुत्र ने पिता की आज्ञा न मानी नहीं मालूम वह संसार में क्या क्या अनर्थ कर डालेगा ।

श्रोता विचार लें, वेद ने जो धर्म बतलाया था कि 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव' उस वेदोक्त धर्म का पालन पूर्ण रूप

से प्रभु रामचन्द्रजी के जीवनचरित्र में पाया जाता है।

आज जब कि भारतवासी पाश्चात्य हवा के झोंकों से सुधारक बन गये हैं ऐसे समय में 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव' इस धार्मिक नियम की क्या दशा हो गई। आज की दशा का फोटू आपके आगे रखता हूं। हमारे एक मित्र दो तीन वर्ष के बाद मिले, उन्होंने पालागन किया, हमने आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद के अनन्तर हमने पूछा कि कहिये आप प्रसन्न हैं? उन्होंने कहा कि आपके चरणों की दया है। बाद में मैंने पूछा कि आपके पिताजी भी आनंद से हैं? उत्तर मिला कि उनकी तो अक्ल मारी गई। यह सुन कर हम घबराये और चित्त में आशंका हुई कि यह और किसी के विषय में कह रहे हैं। हमने फिर दोहराया कि आपके पिता की बाबत मैंने पूछा है, जवाब मिला कि मैं उन्हीं की बाबत कहता हूं। हमने कहा कि मामला क्या है? इतना सुनते ही उन्होंने गाथा का आरंभ किया कि हमारे पिता ने विचारा था कि हम अपने जीवनकाल में ही पुत्रों को भाग बांट दें। उन्होंने और तो सब ठीक कर दिया किन्तु मकान के बटवारे में गड़बड़ कर दी। पांच मकान थे, दो हमको दिये और तीन छोटे भाई को। इसके ऊपर मुकदमा चला। पच्चीस हजार रुपये हमारे खर्च हो गये और इससे भी अधिक रुपया पिता साहब के खर्च हुये, यह फितूर खड़ा कर दिया।

मिलाइये धर्म को, एक दिन वह थी कि जब पिता की

आज्ञा मान पुत्र वन को चले जाते थे, राजसिंहासन पर लात मार देते थे, किन्तु अब वह दिन आ गया है कि एक घर के ऊपर पिता से केस लड़ते हैं। कहिये तो दुनियां में धर्म कितना है ?

प्रभु रामचन्द्रजी को वन जाने के लिये यशस्वी दशरथ ने आज्ञा नहीं दी किन्तु कैकेई ने कहा कि महाराज बड़े दुखी हैं, आपको १४ वर्ष के लिये बनोवास को भेजना चाहते हैं। इसको सुन कर प्रभु राम ने उत्तर दिया कि यह तो ज़रा सी साधारण बात है, इसके लिये पिता को दुखी क्यों किया ? आप हम से प्रथम ही कह देतीं, इस तुच्छ सेवा को हम तत्काल स्वीकार कर लेते, ऐसा करने पर पिताजी को दुखी भी न होना पड़ता। इस प्रकार की बनोवास की आज्ञा को वही पालन कर सकता है जो 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव' वेद की इस आज्ञा को छोड़ कर संसार में जीना भी नहीं चाहता। यह है हिन्दुओं का मातृ आज्ञा पालन का आदर्श।

वर्तमान समय में जब कि धर्म पैरों के नीचे कुचला जाता है, उसकी भी एक कथा सुन लीजिये। यह कथा हमारे एक मित्र के छोटे भाई की है। हमारे इस मान्य मित्र ने कथा बांच २ कर अपने छोटे भाई को इंगलिश पढ़ाया। इसके बी ए पास होते ही इनके बड़े भाई चल बसे। उनके कोई बच्चा नहीं था, स्त्री का पहिले ही स्वर्गवास हो गया था। आप रेलवे में अच्छे ओहदे पर नौकर भी हो गये। प्रथम तो इन्होंने अपनी विवाहिता स्त्री को छोड़ दिया और गुप्तरूप से एक मुसलमान औरत

से अपना सम्बंध जोड़ लिया। औरत को जब खाने का कष्ट होने लगा तब उसके भाई लिवा ले गये। अब इनकी वृद्धा माता भूखों मरने लगी। एक हज़रत ने माता से सवाल दिवा दिया कि मेरा लड़का १५०) पाता है, मुझको खाने को नहीं देता, खाने को दिलाया जावे। इस देवता ने अपने बयान में रुपये बचाने के लिये माता को फायशा (व्यभिचारिणी) बतलाया और इस बात का प्रमाण दे चले कि पांच मनुष्यों से हमारी माता का संबंध रहा है। बीच में पंचायत पड़ी, पंचों ने कहा कि तुम पांच रुपया माहवारी माता को दो। आपने जवाब दिया कि हम इतना रुपया नहीं दे सकते। आखिर तीन रुपये माहवारी देना स्वीकार किया। ६ महीने देकर फिर इन्कार कर दिया कि, हम खर्च से दुखी हैं, अब नहीं दे सकते। यह दशा देख कर आठ पंचो ने आठ आठ आने माहवारी देना आरंभ कर दिया। बुढ़िया का गुजारा होता रहा। गत वर्ष कार्तिक में वृद्धा का स्वर्गवास हो गया। इन्होंने जो यवन औरत से संबंध जोड़ा था, उसके सन् १९ में एक लड़की हुई, जब इसकी जाति बिरादरी ने इसका अपमान किया तब आप सुधारक बन गये। यद्यपि बचा कर खेलते रहे, कोई काम ऐसा नहीं किया जिससे सजा में जाना पड़े, किन्तु कट्टर असहयोगी बन गये। अब आप हिन्दुओं के एक छोटे से लीडर हैं। भंगी चमार, ईसाई मुसलमानों के हाथों का तो आप खाना खाते हैं, शराब और व्यभिचार बिना आपकी रात्रि नहीं कटती, मेरी समझ में नीच

जाति में एक भी जाति नहीं वची होगी जिस की कन्याओं से इन्होंने अपना स्पर्श न किया हो ! आजकल यह बेचारे भारत की उन्नति के सोच में मरे जाते हैं।

श्रोताओ ! हमने प्रथम आप के आगे धार्मिक पुरुषों की माता-पिता सेवा का, उनकी आज्ञा पालन करने का उदाहरण रक्खा, फिर हमने सुधारकों के मातृ-पितृ सेवन के दो उदाहरण दिये अब आप अपनी छाती पर हाथ रख कर बतलाइये कि इन दो में माता पिता के साथ किसका व्यवहार अच्छा है ? मैं आप से यह भी पूछता हूं कि धार्मिक हिन्दू के धर्माचरण से गृह आनंददायक होता है या सुधारकों के नीचाचरण से ? और इतने पर भी सुधारक कह डालने हैं कि धर्म तरक्की में रोड़े अटकाता है ! इन उदाहरणों से आप समझ गये होंगे कि धर्म के आचरण से मनुष्य देवता बनता है और सुधारकों की संगति से मनुष्य शैतान बन जाता है।

भ्रातृ-प्रेम ।

जिस समय राम वन को चले उस समय लक्ष्मण आगे आये और अभिवादन करके कहने लगे कि अकेले न जाइये मैं भी चलता हूं । राम ने उत्तर दिया कि नहीं। लक्ष्मण ने कहा कि भला क्यों ? रामजी ने कहा कि मुझे तो पिता की आज्ञा है इस कारण वन को जाता हूं, तुम क्यों जाते हो ? तुम्हें तो किसी की आज्ञा नहीं हुई। लक्ष्मण ने उत्तर दिया कि आप को पिता जी की आज्ञा है तो मुझे बड़े भाई रामजी की आज्ञा है।

रामजी ने कहा कि हमने तुमसे कब कहा ? लक्ष्मण बोले कि ब्रह्म स्वरूप धारण करके आपने अथर्ववेद को प्रकट करते हुये क्या यह नहीं कहा था कि—

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यञ्च सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥

भाई कोई भी बात ऐसी न करे कि जिसके करने से भाई को कष्ट उठाना पड़े, आप वन को चले जावें और मैं यहां पर सुख भोगूं, क्या यही मेरा धर्म है ?

जिस समय लक्ष्मण शक्ति से होश में आया तो रीछ और वानरों ने पूछा कि भगवन् शक्ति लगने पर आपको कितना कष्ट हुआ ? इसको सुन कर शेषावतार लक्ष्मण ने कहा कि—

ईषन्मात्रमहं वेद्मि स्पर्शं यो वेत्ति राघवः ।
वेदना राघवेन्द्रस्य केवलं व्रणिनो वयम् ॥

वीरो ! जब शक्ति लगी, लगते समय जरा सा कष्ट हुआ, फिर मैं वेहोश हो गया, इस कारण शक्ति लगने के पूर्ण दुःख को मैंने अनुभव नहीं किया । शक्ति लगने से कितना दुःख होता है इसको तो प्रभु रामचन्द्रजी जानते हैं । मेरे शरीर में शक्ति-से घाव हुआ है किन्तु शक्ति का पूर्ण दुःख प्रभु रामचन्द्रजी ने सहा है । यह है भ्रातृ-प्रेम की धार्मिक मर्यादा ।

एक दिन पाण्डव पांचो भाई वन को गये । उस वन में प्यास लग आई । नकुल को भेजा कि जाओ जल ले आओ । नकुल जल लेने के लिये तड़ाग पर गया । हाथ धोकर जल भरना

ही चाहता था इतने में आवाज आई कि नकुल पहले हमारे चार प्रश्नों का उत्तर दे और फिर जल भर, यदि विना उत्तर दिये तुम जल भरोगे तो तुम्हारा शरीरपात हो जावेगा। नकुल ने कहा क्या बकते हो। इतना कह कर जल भरना चाहा कि नकुल बेहोश होकर गिर पड़ा। फिर सहदेव आया, वह भी गिर गया। भीम आया, वह भी बेहोश हो गया। अर्जुन आया, उसका भी शरीरपात हो गया। युधिष्ठिर घबराये कि यह होता क्या है? जो जाता है वही लौट कर नहीं आता। अन्ततोगत्वा युधिष्ठिर तड़ाग पर आये, चारो भाइयों को मरा पाया, हाथ धोने के लिये तड़ाग में से जल लेना चाहा, इतने में एक आवाज आई कि—

को मोदते किमाश्चर्य कः पंथा का च वार्तिकाः।
वद मे चतुरः प्रश्नान्पूरयित्वा जलं पिब॥

दुनियां में कौन आनन्दित है, संसार में आश्चर्य क्या है, जाने के लिये रास्ता कौन है और संसार में वात क्या है? पहिले मेरे इन चार प्रश्नों का उत्तर दें और फिर जल पीवें नहीं तो इन चार पुरुषों की भांति तुम भी धराशायी हो जाओगे। राजा युधिष्ठिर को प्यास कहां थी, जिसके चार भाई मर जायं उसको कहीं भूख प्यास रहती है? धैर्यवान् युधिष्ठिर इस शब्दसंघात को सुन कर बोला कि लीजिये आप अपने प्रश्नों के उत्तर सुनिये—

पंचमेऽहनि षष्ठे वा शाकं पचति स्वे गृहे।
अनृणी च प्रवासी च स वारिचर मोदते॥

पांचवें दिन या छठे दिन जो मनुष्य अपने घर में केवल शाक पका कर खाता है किन्तु कर्जदार नहीं है और अपने घर पर रहता है, संसार में वही सुखी है।

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यमसादनम्।
शेषा जीवितुमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥

प्रत्येक दिवस असंख्यप्राणी यमराज के मंदिर में पहुंचते हैं, किन्तु जीवित प्राणी यही समझते हैं कि हम कभी मरेंगे ही नहीं, यही आश्चर्य है।

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना,
नैको मुनिर्यस्य मतं प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां,
महाजनो येन गतः स पंथा॥

तर्क तो स्थायी नहीं और श्रुति भिन्न २ मार्ग को वर्णन करती है एक भी मुनि ऐसा नहीं कि जिसका मत (राय) कसौटी पर पूरा उतर जाय, मानो धर्म के तत्व को सुवर्ण के कलश में भर कर पर्वत की किसी खोह में गाड़ दिया तो वह अब कैसे मिल सकता है, इस कारण महापुरुष चारुचरित्र सज्जन जिस रास्ते से गये हों वही रास्ता है।

अस्मिन्महामोहमये कटाहे,
सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन।

मासर्तुदर्वीपरिघट्टनेन,
भूतानि कालः पचतीति वार्ता ॥

इस महामोहमय कराहे में जिसमें सूर्य अग्नि है, दिन रात ईंधन है, मास ऋतु चमचा है, इसके चलाने से काल जो है प्राणियों को पकाता है, संसार में यदि कोई एक बात है तो यह है।

अपने चारो प्रश्नों के उत्तरों को सुन कर वह यक्ष युधिष्ठिर के सन्मुख आया और युधिष्ठिर से कहा कि तुम्हारे चार भाई मर गये हैं, इनमें से आप जिसको कहें उसको हम जिला दें। इस कथन पर युधिष्ठिर ने कहा कि इस सहदेव को जिला दो। यह सुन कर यक्ष बोला कि उत्तर देने में तो आप बड़े ही प्रवीण हैं, किन्तु भ्रातृ जिलाने पर आपका विचार सारशून्य है, आपको महाभारत का संग्राम करना पड़ेगा, उस संग्राम में पूर्ण सहायता अर्जुन से मिल सकती है, बल में तो बहुत अधिक है किन्तु शस्त्रास्त्र का पंडित न होने पर भी भीम कुछ सहायता दे सकता है, इस कारण या तो अर्जुन को जिलाने की बावत कहें या भीम को, आप सहदेव को जिलाना चाहते हैं, इसको सहायता से भीष्म, द्रोण का पतन नहीं हो सकता अतएव अर्जुन के जाने के लिये कहो। युधिष्ठिर ने कहा कि आप अर्जुन भीम दोनों को छोड़िये और सहदेव को जिलाइये। इतना कह कर युधिष्ठिर बोला।—

युधिष्ठिरं मामवलोक्य कुन्ती,
शोकं हि सुन्वोरपि सा जहाति ।

एकोपि पुत्रो न च भूतले स्या-
न्माद्री कथं प्राणधरास्तु स्वर्गे ॥

मेरे जीने रहने पर मेरी माता कुन्ती अर्जुन और भीम के शोक को कोई दिन में भूल सकती है उसको इतना अवलम्ब है कि दो पुत्र मर गये तो मर गये किन्तु मेरा एक पुत्र युधिष्ठिर तो जीवित है। जिसका एक भी पुत्र भूतल पर नहीं रहा ऐसी स्वर्ग में गई हुई जो हमारी माता माद्री है कहीं वह दुःखित हो करके स्वर्गीय शरीर को न छोड़ दे इस कारण एक लड़का कुन्ती का जियेगा तो दूसरा माद्री का जियेगा। इस प्रकार गहरे धार्मिक विचार को सुन कर यक्ष गद्गद् हो गया और प्रफुल्लित मन से बोला कि—

श्रुत्वा यशस्ते विमलं पृथिव्यां,
माया मयेयं रचिता क्षितीश।
श्रुतो यथा त्वं भुवि मानवानां,
धर्मः स्वयं कौरववंशकेतुः ॥ १

धन्या त्वदीया जननी नितान्तं,
धन्यः पिता यस्य सुतस्त्वमेव।
आपत्तिकाले न जहासि धर्मं,
जीवन्तु चत्वार इमे सुवीराः ॥ २

राजन्! आपके पवित्र यश को सुन कर परीक्षा करने के लिये मैंने यह माया रची थी। जैसे आप धार्मिक पुरुष सुने

गये थे वैसे ही पाये, आप साधारण पुरुष नहीं हैं, कौरववंश को चमकती हुई आप पताका हैं, पताका क्या है हमतो आप को यही समझते हैं कि आप स्वतः धर्म हैं। वार वार धन्य है उस माता को जिसने आपको उत्पन्न किया और धन्य है उस पिता को जिसके आप पुत्र हैं। घोर आपत्ति में भी आप धर्म-पथ से एक तिल भर नहीं हटे। जाइये आपके ये चारो भाई जी गये। यक्ष के इतना कहते ही चारो भाई उठ बैठे। यह है धार्मिक लोगों का भ्रातृ-प्रेम।

अब कुछ सुधारकों का भी भ्रातृ-प्रेम सुन लीजिये। गत शीतकाल में जब कौंसिल का चुनाव हुआ था, तब सुधारकों के भ्रातृ-प्रेम से पृथ्वी हल उठी थी। अपने स्वार्थ के लिये अपने विरोधी दूसरे भाइयों को नालायक, हिन्दू-जाति का दुश्मन, गवर्नमेण्ट का गुलाम, मुसलमानों का हितैषी, खाऊ मीत, स्वार्थी प्रभृति सैकड़ों टाइटिल दिये गये थे। मामूली बात कौन कहे गणेशशंकर विद्यार्थी और चुन्नीलाल तथा बिड़ला और श्रीप्रकाश इन जुट्टों में वह कौन दोष बाकी रहा है जो जबरन नहीं लगाया गया। मोतीलाल नेहरू को सैकड़ों कलंक लगाये गये और सोच विचार कर उनके अधः-पतन की युक्तियां सोची गईं। ला० लाजपतराय को भी पंजाबी गीदड़, कमजोर, स्वार्थी आदि सैकड़ों उपाधियां दी गईं। इस समय निर्लज्जता देवी ने वह नग्न नाच दिखलाया कि जिस नाच को देख कर संसार दंग रह गया। अब श्रोता बतलावें

कि धार्मिक लोगों में भ्रातृ-प्रेम है या स्वार्थी सुधारकों में ? धार्मिक भ्रातृ-प्रेम से गृहस्थ उन्नति करता है या सुधारक लोगों के आचरण से ? इनको शर्म नहीं आती, ये अब भी कहते हैं कि हम देश की उन्नति करते हैं और धर्म उन्नति में रोड़े अटकाता है। धर्म उन्नति में रोड़े नहीं अटकाता, किन्तु ये हिन्दू लीडर यदि धर्म की शरण आजावें तो धर्म इनके तुच्छ विचारों का नाश करके इनको पवित्र मनुष्य बना सकता है। आज सुधारकों की कृपा से हिन्दू-जाति के घर घर में फूट हो गई है। आर्यसमाज, जातिपांति तोड़कमंडल, अब्राह्मणसभा, कांग्रेस, विधवा विवाह सोसाइटी, अछूतोद्धार, शुद्धिसभा इतने विभागों में जो हिन्दू-जाति विभक्त हो गई है यह केवल सुधारकों की भिन्न भिन्न प्रथा का फल है। श्रोता सोचें कि ये हिन्दू जाति की उन्नति करेंगे या इसको संसार से मिटावेंगे।

मातृ-शिक्षा।

लक्ष्मण भाई रामचन्द्र के साथ वन जाने के लिये माता सुमित्रा से आज्ञा लेने गये। महल में पहुंच माता से अपना अभिप्राय प्रकट किया। लक्ष्मण के विचार को सुन सुमित्रा का चित्त आनन्द के समुद्र मे गोते लगाने लगा। हर्ष से प्रफुल्लित सुमित्रा बोल उठी कि—

तुम्हरेहि भाग राम बन जाहीं।
दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥

इतना कह कर सुमित्रा ने लक्ष्मण को बन में करने योग्य राम सीता के साथ व्यवहार का भी उपदेश किया।

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्॥

बेटा लक्ष्मण! रामचन्द्रजी को तुम दशरथ, सीता को सुमित्रा और भयंकर बन को अयोध्या समझ रामचन्द्र के साथ बन को चले जाओ इसमें कुछ भी विचार न करो।

सुमित्रा के पुत्र-व्यवहार की प्रशंसा हम अपने मुख से कर नहीं सकते लक्ष्मण और शत्रुघ्न के साथ इनका जितना प्रेम था उस प्रेम से कहीं अधिक इनका प्रेम राम के साथ था। अपत्ति समय में भी इस देवी ने किसी प्रकार की त्रुटि नहीं दिखलाई। लक्ष्मण के शक्ति लगने पर भ्रातृ-प्रेम की मर्यादा बांधने के लिये प्रभु रामचन्द्रजी ने धैर्य छोड़ दिया, लक्ष्मण के शक्ति लगना हनुमान से सुन कर भरत भी धैर्य को छोड़ बैठे, किन्तु कठोर दुःख होने पर—लक्ष्मण का मृत्यु सुनने पर—भी सुमित्रा ने धैर्य को नहीं छोड़ा। तीनों के इतिहास को हम क्रम से दिखलाते हैं। लक्ष्मण को गोद में लेकर रुदन करते हुये राम के मुख से जो कुछ शब्द निकले थे, हिन्दी साहित्य के सम्राट् गोस्वामी तुलसीदासजी इस प्रकार लिखते हैं—

अर्द्ध रात्रि गइ कपि नहिं आवा।
राम उठाय अनुज उर लावा॥

सकहु न दुखित देखि मोहिं काऊ।
बंधु सदा तव मृदुल स्वभाऊ॥
मम हित लागि तजेउ पितु माता।
सहेउ विपिन हिम आतप बाता॥
सो अनुराग कहां अब भाई।
उठहु विलोकि मोरि विकलाई॥
जो जनत्यों वन बंधु बिछोहू।
पिता वचन मनत्यों नहिं वोहू॥
सुत वित नारि भवन परिवारा।
होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
अस विचारि जिय जागहु ताता।
मिलहिं न जगत सहोदर भ्राता॥
यथा पंख बिनु खगपति होना।
मणि बिनु फणि करिवर कर दीना॥
अस मम जिवन बंधु बिनु तोहीं।
जो जड़ दैव जियावै मोहीं॥
जैहौं अवध कौन मुंह लाई।
नारि हेतु प्रिय बंधु गवांई॥

प्रभु रामचन्द्रजी की जो कुछ भी दशा हुई वह आप के आगे है। प्रभु रामचन्द्रजी के रुदन को देख भालू और बन्दरों के छक्के छूट गये, छाती भर आई, मुक्तकंठ हो कर रोने लगे।

प्रभु की इस दशा को देख कर पत्थर के समान कठोर चित्त वाला पुरुष भी रोये बिना नहीं रह सकता था। आस पास के पक्षी प्रभु राम के रुदन को सुन कर शरीर की दशा को भूल कर रोने लगे, वास्तव में भ्रातृ-चोट ऐसी ही होती है।

जिस प्रकार प्रभु रामजी ने धैर्य को छोड़ दिया था, इसी प्रकार धीर वीर गंभीर भरत का भी धैर्य कूंच कर गया था, हनुमान से समाचार सुनते ही रोने लग गये, उन्होंने जैसे कैसे शोकसागर से अपने चित्त को निकाला।

लंकां गते वायुसुते सुमित्रां,
रुदन्बभाषे भरतोपि धीरः।
शत्या विभिन्नं तव देवि सूनुं,
हतं समावीक्ष्य स रौति रामः॥

जिस समय हनूमान लंका को चले गये इसके पश्चात् वीर भरत ने सुमित्रा को बुलाया और रोते हुये भरत ने सुमित्रा से कहा कि देवि! आज तेरा प्राणप्यारा पुत्र लक्ष्मण रण में प्राण त्याग के तुल्य (घायल होकर बेहोश) हो गया उसको गोद में लेकर प्रभु रामजी रो रहे हैं।

जिस समय माता अपने पुत्र की मृत्यु सुनती है उस समय माता को जो कष्ट होता है उसको माता ही जानती है। शास्त्रकार जब इस कष्ट का वर्णन करने बैठे तब वे भी घबरा गये और घबरा कर लिख दिया कि 'पुत्रशोक महाकष्टम्'। आज सुमित्रा पर जो कष्ट है उसको सुमित्रा ही जानती है। यदि

आजकल की स्त्री यह सुन ले कि मेरे सापत्नपुत्र की स्त्री के कारण मेरा पुत्र मर गया तो फिर यह बात आप पक्की समझ लें कि सापत्नपुत्र की आफत आ जावे, किन्तु उस समय विकट विपत्ति में जो सुमित्रा के मुख से अक्षर निकले हैं वे कंठ करने के योग्य हैं। कंठ करने के ही योग्य नहीं किन्तु सुनहरे अक्षरों में लिख कर बैठक में लगाने के लायक हैं। जब भरत ने लक्ष्मण का मृत्यु समाचार सुनाया तो इसको सुन कर सुमित्रा बोल उठी कि—

बोली धन्य सुवन मम आजू।
जूझेउ समर स्वामि के काजू॥
पर इक दुख मोहिं दीन्ह विधाता।
कुसमय भयउ राम बिन भ्राता॥

ऐसी पवित्र शिक्षा देना और इस प्रकार का प्रेम दिखलाना यह धार्मिक माता ही कर सकती है। आजकल शिक्षा और प्रेम सब उखाड़ डाला गया, सुधारक स्त्रियों के और ही और सिद्धान्त हो गये। प्रातःकाल उठते ही चांद, विश्वमित्र, आज, स्वतंत्र, आर्यमित्र आदि अखबारों का पढ़ना यह सुधारक स्त्रियों का मुख्य धर्म है। अपने घर का काम काज नौकरों से करवाना और होटल में से खाना मंगवाना तथा उसी भोजन की तारीफ करना ये सुधारक स्त्री के लक्षण हैं। सायंकाल पति के साथ किसी सवारी में बैठ हवा खाना, पति को फुरसत न हो तो किसी दोस्त के साथ घूम आना, यह इनका

तीसरा काम है। ऐसी स्त्रियां कभी २ लेक्चरों में भी पहुंचती हैं। वहां जाकर वर्णाश्रम तोड़ दो, हिन्दुओं को सब जातियां मिटा कर एक मनुष्यजाति बना दो, हिन्दू सभ्यता को मिटा दो, अंग्रेजी सभ्यता को स्वीकार करके देश को तरक्की कर डालो, स्त्रियों को स्वतंत्र बना दो। वेद ने एक स्त्री को एक सौ इक्कीस पति की आज्ञा दी है अतएव विधवा विवाह रोकने वालों को पैरों के नीचे कुचल स्त्रियों को स्वतंत्र बना दो, इत्यादि व्याख्यान भी फटकार डालती है। इन आवश्यकीय कार्यों से इनको फुरसत ही नहीं मिलती फिर ये बच्चों को शिक्षा कैसे दे सकती है। शिक्षा देना तो दूर रहा इनको तो बच्चों के पालन पोषण के लिये भी समय नहीं मिलता, अतएव इनके बच्चों का पालन धाई द्वारा होता है। हम सुधारकों से पूछते हैं कि धार्मिक स्त्रियों का व्यवहार अच्छा या तुम्हारी बनावटी लेडियों का? इन दोनों व्यवहारों में से गृहस्थ धर्म में कौन व्यवहार प्रेम उत्पन्न करता है? वास्तव में बात यह है कि—

"विनाशकाले विपरीतबुद्धिः"

जब नाश होने का समय आता है तब मनुष्य की बुद्धि उलटी हो जाया करती है। आज सुधारकों को हिन्दूपद्धति और हिन्दूजाति काट खाने को दौड़ती है, अतएव अब ये योरूपियन बनना चाहते हैं इस कारण हिन्दुओं का धर्म इनकी तरक्की में रोड़े अटकाता है।

श्वस्तु-वधू-व्यवहार ।

प्रभु रामजी लंका विजय कर पुष्पक विमान में चढ़ कर अयोध्या में आये उस समय भगवती जनकनन्दिनी अपनी सास कौशिल्या को छोड़ कर सब से प्रथम कैकेई और सुमित्रा को प्रणाम करती है, उस प्रणाम का चित्रपट यह है—

क्लेशावहा भर्तुरलक्षणाऽहं,
सीतेति नाम स्वमुदीरयन्ति ।
स्वर्गप्रतिष्ठस्य गुरोर्महिष्या,
वभक्तिभेदेन वधूर्ववन्दे ॥

मैं पति को क्लेश देनेवाली दुर्लक्षणा सीता हूं ऐसा कह कर चरणों में गिर पड़ी और स्वर्ग में गये हुये जो राजा दशरथ हैं उनकी रानी कैकेई और सुमित्रा को भक्ति के अभेद से प्रणाम किया। इस प्रकार से प्रणाम करती हुई सीता के साथ में जो व्यवहार सुमित्रा और कैकेई ने किया है, उसको कवि कालिदास इस प्रकार लिखते हैं—

उत्तिष्ठ वत्से ननु सानुजोऽसौ,
वृत्तेन भर्ता शुचिना तवैव ।
कृच्छ्रं महत्तीर्ण इति प्रियार्हां,
तामूचतुस्ते प्रियमप्यमिथ्या ॥

प्यारीवधू ! तू उठ, अपने छोटे भाई सहित जो ये रामचन्द्र जी बड़े भारी कष्ट को पार करके कुशल पूर्वक घर आ गये हैं

यह तेरे पवित्रचरित्र पातिव्रतधर्म का प्रभाव है। कैकेई और सुमित्रा ने जो बात कही है वह सत्य भी है और मीठी भी है।

मनु ने लिखा है कि प्रथम ब्राह्मण या अपने बड़े के पैर छुवे और फिर पैरों में गिर जाय, खड़ा हो कर यह कहे कि 'अभिवादये देवदत्तशर्माहं भो'। वृद्धों के सन्मान को आगे रख कर महर्षि मनु ने इस तरह का अभिवादन लिखा था। जब तक हिन्दू साम्राज्य रहा तब तक मनु के लेखानुसार ही अभिवादन किया जाता था। यवन साम्राज्य में इसमें शिथिलता आई। अभिवादन करनेवाले ने दूर से 'पालागन' कर लिया, जिसको अभिवादन किया गया उसने आशीर्वाद दे दिया। अब वह पैर छूना, पैरों में दण्डा सा गिरना, नाम बतलाना, ये सब उड़ गये। पालागन में दोनो हाथ जोड़े जाते थे, कुछ दिन के बाद एक हाथ बचा लिया गया और 'आदाब अर्ज़' चल गया। इस आदाब अर्ज़ मे एक ही हाथ से काम लिया जाता है। धीरे धीरे भारतवर्ष में अंगरेजी सभ्यता आई। इस सभ्यता में जब तरक्की के गीत गाये जाते हैं, और भी संक्षिप्तता की गई, 'गुड नाइट' और 'गुड मोर्निंग' की प्रणाली चली। इसमें एक ही अंगुली से काम चलता है। इसके पश्चात् फिर तरक्की ने जोर मारा, उसके फल से गुड मोर्निंग और गुड नाइट उड़ गया तथा उसके स्थान में 'नमस्ते' चल गई। इसमें एक भी अंगुली उठानी नहीं पड़ती। सन् १४ के बाद फिर तरक्की की गाड़ी सड़क पर दौड़ा दी गई। अब सुधारक स्त्रियांयें अपनी सास के साथ में इस

नीचता का व्यवहार करती हैं मानों यह सास इनकी गुलाम है। सुधारकों के रूवरू सुधारकों की स्त्रियां सास को फटकारती हैं, गालियां देती हैं, और कभी २ फुलझड़ी भी कर देती है किन्तु सुधारक अब बोल नहीं सकते। कारण यह है कि ये बेचारे तरक्की के सोच में लगे हुये हैं, सर्वस्व मिट जाय किन्तु तरक्की का लंबा चौड़ा पहाड़ मिल जाय । कई एक सुधारक कह उठावेंगे कि अभी तक हमारी स्त्री हमारी माता के साथ में ऐसा दुष्ट व्यवहार नहीं करती। इसके उत्तर में हम यही कहेंगे कि अभी तक आप सुधारकों की उच्च कक्षा पर नहीं पहुंचे, सुधारक तो बन गये किन्तु सुधारकों में फस्ट नबर नहीं पाया। फस्ट नंबर के सुधारकों में यही व्यवहार है, उनकी माता के ऊपर उनकी स्त्री सिंहनी सी टूटती है, अभी तुम में कुछ कुछ सड़ियल हिंदू धर्म की बू बसी है, जिस दिन यह निकल जावेगी उस दिन तो आप लोगों की माताओं के शिर पर ढूंढने से भी बाल नहीं मिलेंगे। धन्य है सुधारकों को, और हजार बार नमस्कार है इनकी तरक्की को । सुधारक ही बतलावें कि श्वश्रु-बधू प्रेम धार्मिक स्त्रियों का अच्छा है या तरक्कीबाज लेडियों का ? और घर में किसके प्रेम से गृहस्थ धर्म इन्द्रलोक बन सकता है ?

देवर-भौजाई ।

सनातनधर्म में देवर-भौजाई का वही नाता है जो पुत्र

माता का है, इसमें पुराणों ने अनेक उदाहरण दिये हैं। उन उदाहरणों में से आज एक उदाहरण हम श्रोताओं के आगे रखते है— ।

याद करिये उस दिन को जिस दिन प्रभु रामचन्द्रजी सन्मुख बैठे हुये सुग्रीव से सीता का गुम हो जाना कह रहे थे और सुग्रीव ने कहा था कि एक दिन हम सब लोग यहां पर बैठे थे उस समय एक स्त्री रोती हुई आकाशमार्ग से जा रही थी, मुझे देख कर उसने कुछ आभूषण फेंक दिये। इतना सुन प्रभु रामजी ने कहा कि वे आभूषण लाओ। रामजी की आज्ञा से सुग्रीव ने आभूषण मंगवाये और प्रभु को देकर पहचानने के लिये कहा। आपने उत्तर दिया कि हम आभूषणों को नहीं पहचान सकते, लक्ष्मण को दीजिये यह पहचानेंगे। जब लक्ष्मण के सामने आभूषण आये तो लक्ष्मण ने रामजी से कहा कि—

कुण्डले नैव जानामि नैव जानामि कङ्कणे।
नूपुरावेव जानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ॥

मैं कुंडल नहीं जानता और माता के कङ्कण भी नहीं जानता क्योंकि मैंने कभी ऊपर को दृष्टि नहीं डाली, मैं नित्य-प्रति माता के चरणों का अभिवन्दन करता था इस कारण नूपुर (पैरों का जेवर) को जानता हूं।

इतिहास में जो आदर्श लक्ष्मण ने दिखलाया है वह धर्मशास्त्र की आज्ञा है, मनजी लिखते हैं कि—

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भार्या या गुरुपत्न्यनुजस्य सा।
यवीयसस्तु या भार्या स्नुषा ज्येष्ठस्य सा स्मृता॥

ज्येष्ठ भाई की जो स्त्री है वह छोटे भाई की माता है और छोटे भाई की जो स्त्री है वह बड़े भाई की पुत्रवधू है।

अब हम सुधारकदल से पूछते हैं कि कहिये यह जो देवर-भाभी का व्यवहार है यह टूटी झोपड़ी को इन्द्रभवन बनाने वाला है या नहीं? और इसमें तुम क्या सुधार करोगे?

पति-पत्नी-धर्म।

जिस समय प्रभु रामचन्द्रजी वन को जाने लगे यह बात सीताजी ने सुनी। भगवती सीता ने रामचन्द्रजी से प्रार्थना की कि मैं भी आपकी सेवा करने के लिये वन को चलूंगी। जब रामचन्द्रजी ने मना किया तो भगवती जगदम्बा के मुखसे निकल गया—

अग्रतस्ते गमिष्यामि चिन्वन्ति कुशकण्टकान्।

भगवन्! मैं कुश और कांटे बीनती हुई आपके आगे २ चलूंगी जिससे आप को कष्ट न हो। प्रभु रामचन्द्रजी ने भगवती जनकनंदिनी को बार २ समझाया किन्तु आदर्शरूपा जानकी को कोई भी लोभ पतिसेवा से वंचित नहीं कर सका अतएव वह वल्कलवेष धारण करके राज्यसुख पर लात मार कर आज घोर कानन को इसलिये प्रयाण करती है कि पति-धर्म का पालन हो।

सज्जनो ! संसार की पतिव्रता स्त्रियों की यदि माला बनाई जावे और उस माला में सुमेर के लिये कोई आदर्श-रुपा स्त्री तलाश की जावे तो उसके लिये सीताजी से बढ़ कर संसार में दूसरी स्त्री न हुई है, न है और न होगी। पति-व्रताशिरोमणि जनकनन्दिनी के धर्मपालन को सुन कर कंठ गद्गद् हो जाता है और रोयें खड़े हो जाते हैं, नेत्रों से आंसुओं की धारा गिरने लगती है। जिस समय प्रभु रामचन्द्र की आज्ञा से लक्ष्मण सीताजी को वन में छोड़ने के लिये गये हैं, गंगा उतर कर रथ को खड़ा कर अब रामचन्द्र का त्याग सीता के कर्णगत करना चाहते हैं, इस समय लक्ष्मण की जो दशा है उसको कवि इस प्रकार लिखता है —

अथ व्यवस्थापितवाक्कथंचित्,
सौमित्रिरन्तर्गतबाष्पकंठः।
औत्पातिकं मेघ इवाश्मवर्षं,
महीपतेः शासनमुज्जगार ॥

प्रभु राम की आज्ञा सुनाते समय शोक के मारे लक्ष्मण का कंठ रुक गया—जैसे तैसे उस कंठ से वायु को निकाल मुखसे राम की आज्ञा को एकदम कह डाला—जैसे बादल पत्थरों (ओलों) को फेंके।

ततोऽभिषङ्गानिलविप्रविद्धा,
प्रभ्रश्यमानाभरणप्रसूना।

स्वमूर्तिलाभप्रकृतिं धरित्रीं,
लतेव सीता सहसा जगाम ॥

इस आज्ञा को सुन कर तिरस्कार रूप वायु से आहत होकर गिर गये हैं आभरण रूप पुष्प जिसके, अपने शरीर को उत्पन्न करने वाली कारण पृथ्वी में सीता इस प्रकार गिर गई जैसे प्रबल वायु की लतेड़ी हुई लता गिर जाती है।

इक्ष्वाकुवंशप्रभवः कथं त्वां,
त्यजेदकस्मात्पतिरार्यवृत्तः।
इति क्षितिः संशयितेव तस्यै,
ददौ प्रवेशं जननी न तावत् ॥

इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न हुये श्रेष्ठचरित्र राम ने तुझे क्यों त्याग दिया, अपने मन में ऐसी शंका करती हुई पृथ्वी ने सीता को विवर द्वारा अपनी गोद में नहीं लिया।

सा लुप्तसंज्ञा न विवेद दुःखं,
प्रत्यागतासुः समतप्यतान्तः।
तस्याः सुमित्रात्मजयत्नलब्धो,
मोहादभूत्कष्टतरः प्रबोधः ॥

उस समय सीता बेहोश हो गई, अतएव सीता ने अपने शरीर पर आये हुये दुःख को कुछ भी नहीं जाना। उस समय वस्त्र से वायु कर तथा मुख पर जल छिड़क प्रभृति यत्नों से लक्ष्मण ने सीता की मूर्छा हटाई—मूर्छा हट जाने पर सीता को

अत्यंत दुःख हुआ।

न व्याववदग्रजं तुरवर्णमार्यो,
निराकरिष्णोर्वृजिनादृतेऽपि।
आत्मानमेव स्थिरदुःखभाजं,
पुनः पुनर्दुष्कृतिनं निनिन्द॥

सीता ने इस प्रकार से त्याग कर देने वाले प्रभु रामचन्द्र के लिये एक अक्षर नहीं कहा बार बार दुःख भोगने वाले अपने आत्मा की ही निन्दा की।

आश्वास्य रामावरजः सतीं ता-
माख्यातवाल्मीकिनिकेतमार्गः।
निघ्नस्य मे भर्तृनिदेशरौक्ष्यं,
देवि क्षमस्वेति बभूव नम्रः॥

लक्ष्मण ने सीता को ज्ञान द्वारा आश्वासन दिया और आश्वासन के पश्चात् वाल्मीकि के स्थान का मार्ग बतलाया। फिर लक्ष्मण बोले कि देवि! इस समय मैं अपने बड़े भाई की आज्ञा को पूरा कर रहा हूं इस आज्ञा पूरी करने में आपके साथ जो मेरा दुष्ट व्यवहार है उसको आप क्षमा करें, इतना कह कर लक्ष्मण जनकनन्दिनी के चरणों में गिर पड़े।

सीता तमुत्थाप्य जगाद वाक्यं,
प्रीतास्मि ते सौम्य चिराय जीव।

विडौजसा विष्णुरिवाग्रजेन,
भ्रात्रा यदित्थं परवानसि त्वम् ॥

सीता ने लक्ष्मण को उठाया और बोली कि लक्ष्मण! मैं तेरे ऊपर बड़ी प्रसन्न हूं। सौम्य! तू बहुत काल तक जीवन धारण कर, मैं जानती हूं कि जिस प्रकार इन्द्र के आगे भगवान् वामन परतंत्र थे इसी प्रकार तुम परतंत्र हो।

श्वश्रूजनं सर्वमनुक्रमेण,
विज्ञापय प्रापितमत्प्रणामः।
प्रजानिषेकं मयि वर्तमानं,
सूनोरनुध्यायत चेतसेति ॥

लक्ष्मण से सीता कहती है कि तुम घर पहुंच कर मेरी सब सासों को मेरी तरफ से कहा हुआ प्रणाम कहना और यह भी निवेदन करना कि मेरे उदर में आपके पुत्र प्रभु राम का गर्भ है उस गर्भ का कल्याण आप सर्वदा चाहती रहें।

साहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टि-
रूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये।
भूयो यथा मे जननान्तरेपि,
त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः ॥

लक्ष्मण! आप भूपति से यह कहना कि जब मेरे संतति उत्पन्न हो लेगी इसके पश्चात् मैं सूर्य में दृष्टि लगा कर तप करने का यत्न करूंगी जिसके प्रभाव से दूसरे जन्म में भी

आपही पति मिलें और उस जन्म में मेरा आप से वियोग न हो।

नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत्,
स एव धर्मो मनुना प्रणीतः।
निर्वासिताप्येवमतस्त्वयाहं,
तपस्वि सामान्यमवेक्षणीया॥

लक्ष्मण! भूपति से यह भी कहना कि मनु ने चारो वर्ण और चारो आश्रमों का पालन करना राजा का धर्म बतलाया है। मुझे आपने निकाल भी दिया है तो भी जैसे और तपस्वी आपको रक्षणीय हैं इसी प्रकार सामान्य दृष्टि से मैं भी रक्षणीया हूं।

तथेति तस्याः प्रतिगृह्य वाचं,
रामानुजे दृष्टिपथं व्यतीते।
सा मुक्तकंठं व्यसनातिभारा-
च्चक्रन्द विग्ना कुररीव भूयः॥

लक्ष्मण ने सीता की बात को सुना और यह कहा कि जैसे आपने मुझसे कहा है उसी प्रकार मैं आपकी सासों से और भूपति से कहूंगा। इतना कह कर सीता की आज्ञा ले लक्ष्मण अयोध्या को लौटे। जितनी देर तक लक्ष्मण दीखते रहे उतनी देर तक तो सीता चुप रही किन्तु जब लक्ष्मण दृष्टि में न आये तब अत्यंत दुःख से दुःखित हो घबरा कर कुररी की भांति गला फाड़ कर रोने लगी।

नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षा,
दर्भानुपात्तान्विजहुर्हरिण्यः।
तस्याः प्रपन्ने समदुःखभाव,
मत्यन्तमासीद्रुदितं वनेऽपि॥

भगवती सीता के इस कठोर रुदन् को देख कर समस्त वन को घोर दुःख उत्पन्न हो गया; वन के मोरों ने नाचना छोड़ दिया और वृक्षों ने पुष्प गिरा दिये तथा वन में चरती हुई हरिणी तृण त्याग रोने लग गईं। सीता ही नहीं रोती थी किन्तु सीता के दुःख से दुःखित होकर समस्त वन रो रहा था।

तामभ्यगच्छद्रुदितानुसारी,
कविः कुशेध्मा हरणाय यातः।
निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः,
श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः॥

कुशा और समिधा लेने के लिये आये हुये ऋषि रोने के शब्द को सुन कर जिधर से रोने की आवाज आती थी उधर को चलते हुये वाल्मीकि सीता के पास पहुंच गये। आप बड़े दयालु हैं। एक समय किसी व्याध ने क्रौंच के जोड़ में से नर को मारा, यह देख उस स्थान में उपस्थित महर्षि वाल्मीकि ने उस व्याध को शाप दिया, शाप देते समय जो महर्षि वाल्मीकि के मुख से वाक्य निकला था वह श्लोक बन गया—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शास्वती समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

वह शाप यह था–निषाद ! तैंने काम मोहित क्रौंच जोड़े में से नर को मारा है अतएव तू सैकड़ों वर्ष तक शांति नहीं पावेगा।

तमश्रु नेत्रावरणं प्रमृज्य,
सीता विलापाद्विरता ववन्दे।
तस्यै मुनिर्दोहदलिंगदर्शी,
दाश्वान्सुपुत्राशिषमित्युवाच ॥

ऋषि को आये देख सीता ने अपने विलाप को शांत किया और आंखों को ढक लेने वाले आंसुओं को पोंछा इसके पश्चात् ऋषि को अभिवादन किया। गर्भ के चिन्ह देख कर ऋषि ने सीता को आशीर्वाद दिया कि तू सुपुत्रा हो अर्थात् तेरे श्रेष्ठ पुत्र हो।

जाने विसृष्टां प्रणिधानतस्त्वां,
मिथ्यापवाद क्षुभितेन भर्त्रा।
तन्मा व्यथिष्ठा विषयान्तरस्थं,
प्राप्ताऽसि वैदेहि पितुर्निकेतम् ॥

मैं अपने समाधि बल से यह जान गया हूं कि दुनियां के कई एक मनुष्यों ने तुझको मिथ्या कलंक लगाया है और उससे विचलित हो रामजी ने तेरा त्याग कर दिया है। सीते ! अब तू दूसरे देश में आकर दुखित मत हो, अब तो तू अपने पिता के घर पर आ गई।

उत्खातलोकत्रयकंटकेऽपि,
सत्यप्रतिज्ञेऽप्यविकत्थनेऽपि।
त्वां प्रत्यकस्मात्कलुषप्रवृत्ता,
वस्त्येव मन्युर्भरताग्रजे मे॥

रामजी बड़े प्रभावशाली हैं उन्होंने संसार के शत्रुओं को खोद कर बहा दिया, रामचन्द्रजी कभी झूठ नहीं बोलते, वे कभी अपनी प्रशंसा नहीं करते, इतने गुण होने पर भी आज मुझको रामचन्द्रजी के ऊपर क्रोध आ रहा है। क्रोध का कारण यह है कि राम ने तेरा त्याग क्यों किया।

तवोरुकीर्तिः श्वशुरः सखा मे,
सतां भवोच्छेदकरः पिता ते।
धुरि स्थिता त्वं पतिदेवतानां,
किं तन्न येनासि ममानुकम्प्या॥

पवित्रकीर्तिवाले तेरे श्वशुर दशरथ मेरे मित्र थे और तेरे जो पिता जनक हे वे बड़े २ सज्जनों का संसारबंधन काट देते हैं तथा तू पतिव्रता स्त्रियों में सब से प्रथम आसन पाने योग्य है। मैं ऐसा कोई कारण नहीं देखता कि जिससे मैं तेरे ऊपर कृपा न करूं। अतएव पुत्री! तुम घबराओ मत और हमारे आश्रम पर चलो।

इतना कह कर महर्षि वाल्मीकि भगवती जनकनन्दिनी सीता को अपने स्थान पर ले गये। यह है भारतीय स्त्रियों के

पातिव्रतधर्म पालन का नमूना। इस पवित्र आदर्श को देख कर हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, पारसी, जितनी जातियां संसार में हैं समस्त जातियां हिन्दुओं की पवित्र रमणियों के चरणों में अपना मस्तक रख देती हैं, किन्तु धन्य है अक्ल को दियासिलाई दिखलानेवाले इन सुधारकों को, जो ऐसे पवित्र धर्म को तरक्की में रोड़े अटकानेवाला बतलाते हैं।

हमारी सम्मति में यदि ये उस समय होते तो भगवती जनकनन्दिनी को आदर्श से गिर जाने का अवश्य ही उपदेश देते, चाहे जनकनन्दिनी इनके कथन का अनादर करती किन्तु ये अपनी लीडरी फैलाये विना हरगिज न मानते।

जिस प्रकार भगवती सीता ने अपने पवित्राचरण को धार्मिक आदर्श बना दिया है उसी प्रकार प्रभु रामजी ने अपने पवित्राचरण से धरातल को अचंभे में डाल कर चकित कर दिया। इसके ऊपर कवि कालिदासजी लिखते हैं कि—

> बभूव रामः सहसा सबाष्प-
> स्तुषारवर्षीव सहस्यचन्द्रः।
> कौलीनभीतेन गृहान्निरस्ता,
> न तेन वैदेहसुता मनस्तः॥

जिस समय लक्ष्मण ने प्रभु रामचन्द्रजी से सीता का त्याग सुनाया उस समय रामचन्द्रजी ने नेत्रों से इस प्रकार आंसू छोड़ दिये जैसे पौष का चन्द्रमा तुषार बरसाया

करता है क्योंकि रामचन्द्रजी ने मिथ्या कुलकलंक के भय से सीता का त्याग किया है स्वतः उसकी पवित्रता का पूरा ज्ञान रख मन से त्याग नहीं किया।

निगृह्य शोकं स्वयमेव धीमान्,
वर्णाश्रमावेक्षणजागरूकः।
स भ्रातृसाधारणभोगमृद्धं,
राज्यं रजोरिक्तमनाः शशास॥

बुद्धिमान् रामचन्द्रजी ने सीता के शोक से दुःखी होकर भी वर्ण और आश्रम के अनुसंधान रक्षा में अप्रमत्त होकर रजोगुणशून्य चित्त से अपने भाइयों सहित वृद्धि युक्त राज्य का शासन किया।

तामेक भार्यां परिवादभीरोः,
साध्वीमपि त्यक्तवतो नृपस्य।
वक्षस्य सङ्घट्टसुखं वसन्ती,
रेजे सपत्नी रहितेव लक्ष्मीः॥

लोकापवाद से घबराये हुये रामचन्द्रजी ने जब साध्वी सीता का त्याग कर दिया तब स्त्रीरहित रामचन्द्रजी के साथ में केवल लक्ष्मी ने ही शोभा पाई।

सीतां हित्वा दशमुखरिपुर्नोपयेमे यदन्यां
तस्या एव प्रतिकृतिसखो यत्क्रतूनाजहार।

वृत्तान्तेन श्रवणविषयप्रापिणा तेन भर्तुः
सा दुर्वारं कथमपि परित्यागदुःखं विषेहे ॥

रावण के रिपु रामचन्द्रजी ने सीता को त्याग कर अन्य स्त्री को नहीं बिवाहा। पत्नी के विना यागादि धर्म नहीं होता इसके ऊपर ऋषिवाक्य है कि "सस्त्रीको धर्ममाचरेत्"। जब प्रभु रामचन्द्रजी यज्ञ करने लगे और शास्त्रों की यह आज्ञा देखो कि विना स्त्री के यज्ञ नहीं हो सकता, यज्ञ करने के लिये स्त्री का होना आवश्यकीय है, यज्ञ पूर्ण करने के निमित्त प्रभु रामचन्द्रजी ने पत्नीव्रत का आदर्श रखते हुये भगवती सीता की ही सुवर्ण की प्रतिकृति बनवा कर यज्ञ किया।

जिस प्रकार भगवती जगदम्बा के पतिव्रतादर्श ने संसार को चकित कर दिया इसी प्रकार प्रभु रामचन्द्रजी के एक-पत्नीधर्मपालन ने भी संसार को अचंभे में डाल दिया। यह है हिन्दु-धर्म का धार्मिक आदर्श। ईश्वर की कृपा अच्छी थी उस समय सुधारकों का जन्म नहीं हुआ था नहीं तो सारे भारत-वर्ष के सुधारक इकट्ठे होकर यज्ञ के समय में प्रभु रामचन्द्रजी को विधवा विवाह की सम्मति देते और कोई आश्चर्य नहीं कि श्लोकों के कान पूछ ऐंठ कर शास्त्र से भी विधवा विवाह को धार्मिक व्यवस्था बतलाने का साहस कर बैठते। हम पूछते हैं कि भगवती जगदम्बा के तथा प्रभु रामजी के इस पवित्रा-दर्श ने तरक्की में क्या क्या रोड़े अटका दिये? प्रत्येक हिन्दू को यह भली भांति स्मरण रखना चाहिये कि यदि गृहस्थ में प्रेम

रहेगा तो वह गृहस्थ निर्धन होने पर भी इन्द्र के सिंहासन से अधिक सुखदायी होगा और यदि गृहस्थ में प्रेम न रहा तो वह धनी होने पर भी नर्क से बढ़ कर दुःखदाता बन जावेगा। धार्मिक व्यवस्थायें गृहस्थ में प्रेम पैदा करती हैं और लीडरों का योरूपीयाचरण धर्म और प्रेम को दियासलाई दिखला कर स्वतंत्रता के अभिमान में चूर कर देता है। जिन मनुष्यों को यह इच्छा हो कि हमारा गृहस्थ सुखदाता बने, कुटुम्ब में प्रेम की भागीरथी बहे, उनको तो धर्म के चरणों में गिर कर नाक घिसना होगा और धार्मिक नियम पालन करने होंगे। जिसको जान बूझ कर मनुष्यों में पशुधर्म के प्रचार का शौक लग गया है, जो स्वतः मनुष्यत्व का त्याग करके पशुधर्म में जा पड़ा है, वह तो सुधारक बने बिना बच ही नहीं सकता। संसार और कुटुम्ब की रक्षा के लिये धार्मिक लोगों को धार्मिक नियमों का पालन करना चाहिये, बस यही प्रार्थना है।

हरिः ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

कालूराम शास्त्री।

* श्रीगणेशाय नमः *

अभ्युत्थान ।
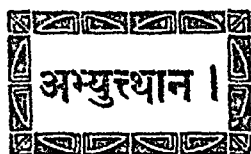
गंगातरंगरमणीयजटाकलापं,
गौरीनिरन्तरविभूषितवामभागम् ।
नारायणप्रियमनंगमदापहारं,
वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥ १

वीर धीर गंभीर नर, वसुधाधिप हो जायं।
विद्या बल गुणहीन नर, निशिदिन कुचले जायं ॥

प्रबल प्रताप सभापति तथा सभ्य मण्डली ! आज भारतवर्ष भी तरक्की करने का विचार कर रहा है । तरक्की करना देश के लिये दुःखदायी नहीं किन्तु सुखदायी है, यदि हम योरूप की शैली को आगे रख कर उन्नति करेंगे तो यह उन्नति हमारे धर्म, हमारी जाति, हमारे स्वरूप की नाशकारिणी होगी । आज जितने भी उन्नति उन्नति चिल्ला रहे हैं सभी की यह सम्मति है कि जाति को मिटाओ, धर्म को पैरों के नीचे कुचलो, स्वरूप को खो दो, तरक्की कर जाओ । इस प्रकार की अनिष्टकारिणी उन्नति वे ही मनुष्य चाहते हैं जो योरूप की शिक्षा दीक्षा से दीक्षित होकर सभ्य बनने का दावा करते हैं, जिन्होंने भारतोन्नति की पद्धति का कभी स्वप्न

में भी विचार नहीं किया। वास्तव में योरूप की शैली से भी उन्नति हो सकती है और भारतोन्नति पद्धति से भी, अन्तर इतना है कि भारतोन्नति की पद्धति हमको प्रवल धार्मिक, सच्चे हिन्दू बनावेगी और योरूप की शैली हमारे धर्म, हमारी जाति और हमारे स्वरूप को खो कर हमको योरूपीय जंटलमैन बना देगी। हमको नहीं मालूम हितकारिणी उन्नति को छोड़ कर आज भारतवर्ष नाशकारिणी उन्नति के पथ पर क्यों जा रहा है।

पूर्वजों ने हितकारिणी उन्नति की पद्धतिका अवलम्बन किया इसके अवलम्बन से देश को इतना विद्वान् बनाया कि भारतवर्ष समस्त देशों का गुरुधाम बना। इसी पद्धति का आश्रय ले वीरता को ऐसी उच्च दशा में पहुंचाया कि इस भारतवर्ष के बराबर किसी देश में भी वीर नहीं हुये, वीरता के कारण समस्त देश भारतवर्ष के राज्य के आधीन हुये, इसी पद्धति के अवलम्बसे भारतवर्ष का व्यापार संसार को चकित कर गया। इस विषय में एक कवि लिखता है कि—

यही है भूमि ऋषियों की जहां कंचन बरसते थे।
विदेशी लोग यह सुन सुन के दर्शन को तरसते थे॥

इसी पवित्र पद्धति के अवलम्ब से भारतवर्ष का शिल्प इतना बढ़ा कि दूसरे लोगों को इसका मुंह ताकना पड़ा और यह शिल्प थोड़े बहुत दिन नहीं रहा किन्तु कम्पनी के राज

तक भी अपनी उच्च कक्षा से संसार को चकित करता रहा। इसी पद्धति के अवलंबन से खाद्य पदार्थों की इतनी वृद्धि हुई कि एक रुपये का पांच चार मन अन्न तथा एक रुपये का मन दो मन दूध, दश बारह सेर घी का विकना एक साधारण बात थी। हमारी उन्नति में मनुष्यों की वेफिक्री, प्रेम, स्वार्थ-त्याग बराबर बना रहा, हमारी उन्नति जिस उच्च शिखर पर पहुंच चुकी थी योरूप की उन्नति आज तक भी उस दशा में नही पहुंची फिर वह कौन कारण है जिससे हम अपनी पद्धति को छोड़ कर योरुप की शैली को स्वीकार कर लें? कई एक लोग यह कह उठावेंगे कि हिन्दू साम्राज्य में रेल, तार, हवाई जहाज, मोटरें, मशीनें, नहीं थीं। हम विना विवाद के इसको स्वीकार किये लेते हैं कि नहीं थीं। क्या अपने देश की पद्धति से उन्नति करते हुये योरूप के इन अंजन और कलों से काम लें तो क्या ये काम न देंगे? बराबर देंगे। फिर हम नहीं जानते कि उन्नतिका बहाना लेकर हिन्दू-जाति योरूपीय सांचे में क्यों ढाली जाती है? यही कहना पड़ेगा कि हिन्दू लीडरों की मूर्खता को छोड़ कर योरूप के पीछे दौड़ने का दूसरा कोई भी कारण नहीं है।

जिस समय योरूप के बाशिन्दे नग्नबाबा बने हुये समुद्र-तटों की हवा खाते थे, जब इनको खाने पकाने का भी ज्ञान नहीं था, उस समय, सृष्टि के आरम्भ में भारतवर्ष ने उन्नति का विचार किया था। पहली खोज यह थी कि उन्नति के कारण क्या है? खोज करते करते इतना निश्चय किया कि—

शिल्पैर्धनैर्वीरपराक्रमेण,
सुविद्यया मानवजातिभूतिः ।
विवर्धते सा नितरां पृथिव्यां,
हीनैः सदा तैर्लघुतां प्रयाति ॥

शिल्प, धन, भुजबल, विद्या, इन चार गुणों से मानवजाति का ऐश्वर्य बढ़ता है, मानवजाति के यदि ये चारो गुण क्षय होने लगें तो फिर मनुष्यसमुदाय का ऐश्वर्य भी क्षीण हो जाता है ।

जब यह निश्चय हो गया कि विद्या, वीरता, व्यापार और शिल्प इन चार गुणों से देश उन्नति करता है तब यह विचार किया गया कि ये चारों गुण स्थायी कैसे रहें. इसका विचार करते हुये इस सिद्धान्त पर पहुंचे कि—

शिल्पोन्नतिर्नैव धनेन हीना,
धनस्य रक्षा भुजदण्डशक्त्या ।
बाह्वोर्बलेन प्रभवन्त्यनर्था,
नाशाय तेषां भवतीह धर्मः ॥

शिल्प के बिना संसार को रोटियां नहीं मिलतीं, और शिल्प बिना धन के बढ़ नहीं सकता यह जान कर शिल्प को धनियों द्वारा सहायता देने का नियम हुआ । इस प्रकार शिल्प को रक्षणीय बना कर फिर सोचा कि द्रव्य संसार में किस प्रकार रक्षणीय होसकता है, धर्महीन स्वार्थी लोग थप्पड़ मारकर धनियों का धन छीन लेते हैं यदि ऐसा होने लगा तो भूतल पर पूंजी का

अभाव हो जावेगा और उसके अभाव में शिल्प भी मर जावेगा अतएव धन अत्यन्त रक्षणीय है। यह विचार कर धन की रक्षा के लिये राजसत्ता की स्थापना हुई। राजाओं का यह कर्तव्य हो गया कि वे अपने शरीर को बलिदान भले ही दे दें किन्तु पूंजीपतियों की पूंजी पर आपत्ति न आवे। इस प्रकार धन-रक्षा के पश्चात् विचार करने लगे कि राजसत्ता से संसार का कल्याण भी बहुत होता है किन्तु यदि राजा उद्दण्ड हो जावे तो नहीं मालूम फिर संसार में कितने अनर्थ होंगे, इन अनर्थों को संसार से उखेड़ने के लिये धर्म की स्थापना की, यह निश्चय कर दिया कि निर्धन मनुष्य से लेकर चक्रवर्ती राजा तक को धर्म में बंध कर चलना होगा, जो धर्म का किंचित् भी त्याग करेगा उसको विद्वान् दण्ड देंगे।

फिर यह विचारा गया कि ये गुण उत्कट विकाश को किस प्रकार रख सकते हैं। वेद विधि के अवलम्बन से यह निश्चय किया कि एक एक गुण को एक एक वर्ण के लिये विभाजित कर दिया जावे जिससे प्रत्येक जाति स्वकीय प्राप्त गुण का दिनोंदिन विकाश करती रहे। इसके विचार में जो गुण विभक्त हुए उसकी प्रक्रिया यह है—

शूद्रेषु शिल्पं वणिजं वणिक्सु,
भूपेषु शौर्यं मुखभूषु विद्या।
शास्त्रेण दत्ता किल वैदिकेन,
तस्माद्गुरुर्भारत एव भूमौ॥

शूद्रों को शिल्प, वैश्यों को व्यापार, क्षत्रियों को रक्षा, ब्राह्मणों को विद्या, जिस भांति से वेद की आज्ञा थी उसी नियम के अनुसार विभक्त कर सर्वदा के लिये स्थायी और दृढ़ बना दिया, दृढ़ बनाने के कारण भारत संसार का गुरु है।

गुण विभक्त होने के पश्चात् धर्म की मान मर्यादा रखते हुये देश के उत्थान में कैसे २ प्रवृत्ति हुई इसका विवरण यह है कि-

वर्णे स्वकीये परिवर्तमाना:,
स्वे स्वेऽधिकारेऽपि सुबद्धचित्ता: ।
कर्माणि लोकेऽभ्युदयाय चक्रु:,
सर्वे नरा भारतवासिनो ये ॥

अपने अपने वर्ण में संसार के मनुष्य प्रीति पूर्वक स्थित हो कर अपने अपने अधिकार में चित्त को लगा कर समस्त भारतवासी मनुष्य संसार में अभ्युदय के काम करने लगे।

देशोन्नति के काम किसी एक वर्ण ने नहीं किये वरन् चारो वर्णों ने किये हैं। क्या क्या किया गया, इस विवेचन को श्रोताओं के आगे रखते हुये हम सब से प्रथम ब्राह्मणों के किये हुये काम का दिग्दर्श कराते हैं।

ब्राह्मण-कर्तव्य ।

संसारचक्रस्य विजित्य तृष्णां,
योगेन त्यागेन विशुद्धभावा: ।

शास्त्राणि चक्षुर्विविधानि विप्रा,
ज्ञानेन येषां प्रभवेत्सुविद्वान् ॥

ब्राह्मणों ने प्रथम संसारचक्र की तृष्णा का विजय किया फिर योग के द्वारा निर्भ्रान्ति ज्ञान की उपलब्धि की। इस प्रकार जब ब्राह्मणों के भाव सर्वांश में शुद्ध हो गये तब ब्राह्मणों ने शास्त्रों के रचने का आरम्भ किया, जिन शास्त्रों के अवलम्बन मात्र से आजकल लोग विद्वान् कहलाते हैं।

शास्त्र भी क्या उत्तम रीति से रचे कि इस प्रकार की रीति से दूसरी जाति न तो अपने यहां उत्तमता के साथ अपनी किताबों को आज तक रच सकी है और न आगे को ही रच सकेगी। हम ऋषियों के रचे हुये शास्त्रों में से व्याकरण को आगे रखते हैं। देखिये ऋषियों का रचा हुआ व्याकरण कितना गौरव रखता है. इसको भास्कराचार्य गोलाध्याय में लिखते हैं कि—

यो वेद वेदवदनं सदनं हि सम्यग्,
ब्राह्मया स वेदमपि वेद किमन्यशास्त्रम्।
यस्मादतः प्रथममेतदधीत्य धीमान्,
शास्त्रान्तरस्य भवति श्रवणोऽधिकारी ॥

जो सरस्वती के सदन वेदवदन को अच्छा जानता है वह वेद को भी जानता है, दूसरे शास्त्रों को जानता है

इसका तो कहना ही निरर्थक है क्योंकि सबसे अधिक गौरव रखने वाला वेद भी जब व्याकरण वाले को आ जाता है तो अन्य शास्त्र क्यों न आ जावेंगे अतएव प्रथम इसका अध्ययन करे इसके अध्ययन से जब बुद्धिमान् हो जाता है तब दूसरे शास्त्रों का श्रवण मात्र का अधिकारी रहता है।

हिन्दू-जाति को छोड़ कर कोई भी जाति आज तक अपनी भाषा का ऐसा व्याकरण नहीं बना सकी कि जिसके पढ़ने से केवल कान पवित्र होने पर समस्त उस भाषा की विद्यायें आगे नृत्य करती हुई दृष्टिगोचर हों। यदि यह गौरव किसी के व्याकरण में आया है तो वह केवल हिन्दू-जाति के ही संस्कृत व्याकरण में है।

आज संसार में हुज्जतबाज पैदा हो गये। जब इनको हुज्जतों से रोका जाता है तब ये तर्कज्ञ होने का दावा कर बैठते हैं। किन्तु हम इनसे पूछते हैं कि तुमने ये दलीलें सीखीं कहां से ? सच तो यह है कि यदि ब्राह्मणों के पूर्वज ऋषि लोग न्याय-दर्शन आदि ग्रन्थ न बनाते तो आज किसी को तर्क का स्वप्न भी न होता, फिर शास्त्र भी कैसा बनाया—

मोहं रुणद्धि विमलीं कुरुते च बुद्धिं,
सूते च संस्कृतपदव्यवहारशक्तिम्।
शास्त्रान्तराभ्यसनयोग्यतया युनक्ति,
तर्कश्रमो न तनुते किमिहोपकारम्॥

चित्त की मूर्खता को दूर कर बुद्धि को विमला बना संस्कृत के पदों की व्यवहारशक्ति को मधुर और मनमोहिनी बना कर दूसरे शास्त्रों की योग्यता को चित्त में स्थान देनेवाले विलक्षण हिन्दुओं के तर्कशास्त्र ने कहो तो मनुष्यों का कौन उपकार नहीं किया ?

क्या अरबी फारसी का मन्तक और अँग्रेजी वालों की न्याय फिलास्फी इस उत्तमता की झलक संसार में दिखला सकती है ?

प्रत्येक पदार्थ के विवेचनार्थ हमारे पूर्वजों ने मीमांसा दर्शन लिखा, फिर किस खूबी के साथ में लिखा—

नैयायिका वा ननु शाब्दिका वा,
त्रयीशिरःसु श्रमशालिनो वा ।
वादाहवे बिभ्रति जैमिनीय,
न्यायोपरोधे सति मौनमुद्राम् ॥

चाहे कोई नैयायिक हो, चाहे व्याकरण का धुरन्धर विद्वान् हो चाहे वेदत्रयी का प्रौढ़ पंडित क्यों न हो, किन्तु जब विवाद का संग्राम होगा तब मीमांसा की विवेचना में सभी की जबान बन्द हो जावेगी। क्या संसार की कोई जाति अपने यहां इस प्रकार की मीमांसा दिखला सकती है ? यदि इतनी योग्यता इस विषय में किसी जाति ने भी आज तक उपलब्ध नहीं की तो क्या संसार के ऊपर ऋषियों का अहसान नहीं है, जिन्होंने

अपनी बुद्धि की विलक्षणता से यह शास्त्र रच कर संसार के आगे रख दिया है।

ऋषियों ने ज्योतिष् शास्त्र को भी किस विलक्षणता के साथ लिखा है—

दूतो न संचरति खे न चलेच्च वार्ता,
पूर्वं न जल्पितमिदं न च संगमोऽस्ति।
व्योम्नि स्थितं रविशशिग्रहणं प्रशस्तं,
जानाति यो द्विजवरः स कथं न विद्वान्॥

आकाश में इनका कोई दूत तो जाता नहीं कोई आके वहां की बात नहीं सुनाता, पहिले भी किसी ने आकर नहीं सुना दिया और न सूर्य चन्द्र ही के साथ इनका संग होता है, फिर भी आकाश में स्थित सूर्य चन्द्र के ग्रहणका ठीक समय जानते हैं। क्या इस ज्ञान को जाननेवाला विद्वान् नहीं कहलावेगा? दूसरी जातियों ने भी ज्योतिष् के ग्रंथों का निर्माण किया है, किन्तु उन जातियों ने प्रथम इन ग्रंथों को पढ़ कर ही लिखा है, दूसरे इस विद्वत्ता के साथ नहीं, यदि इसकी समता में दूसरी जातियों के ज्योतिष् ग्रंथ स्थान रखते तो क्या मूर्खता की पराकाष्ठा भूभ्रमण को कोई जाति स्वीकार करती?

संसार के मनुष्यों को व्याधिपीड़ित देख ऋषियों की लेखनी उठी और किस गंभीरता के साथ वैद्यक शास्त्र का निर्माण हुआ, एक दृष्टि इस पर भी डालिये—

भ्रान्ता वेदान्तिनः किं पठथ शठतया
　　द्यापि चाद्वैतविद्यां,
पृथ्वीतत्त्वे लुठन्तो विमृशथ सततं
　　कर्कशास्तार्किकाः किम् ।
वेदैर्नानागमैः किं ग्लपयथ हृदय
　　श्रोत्रियाः श्रोत्रशूलैः,
वैद्यं सर्वानवद्यं विचिनुत शरणं
　　प्राणसंप्रीणनाय ॥

जिस समय मनुष्य को व्याधि घेर लेती है उस समय वहां पर वेदान्ती क्या अद्वैतविद्या का पाठ करेगा और क्या उस पाठ से रोग दूर हो जावेगा, क्या उस समय में तार्किक लोग तत्वों के लक्षणों को वर्णन करते हुये व्याधि को भगा देंगे, क्या वहां पर वेदज्ञ श्रोत्रिय लोग शुद्ध स्वरों से वेद का उच्चारण कर व्याधि को पकड़ जेलखाने में भेज देंगे ? ऐसी शोचनीय दशा में यदि कोई प्राण की रक्षा कर सकता है तो वह वैद्य है। ऋषियों का ध्यान प्रत्येक विषय पर गया है। सभी विषयों के विवेचन में उन्होंने अद्वितीय ग्रंथ लिखे, इसी नियम के अनुसार वैद्यक शास्त्र लिखा गया। पाश्चात्य देशों ने चीर फाड़ को बहुत उन्नति दी है किन्तु रोग के निदान में, व्याधि की परीक्षा में, औषधियों के विचार में, आज भी भूमण्डल की वैद्यक, संस्कृत वैद्यक के आगे शिष्य ही है।

ऋषियों ने संसार के उपकार के लिये काव्य का प्रादुर्भाव किया, फिर काव्य भी कैसा—

कान्पृच्छामः सुराः स्वर्गे निवसामो वयं भुवि।
किं वा काव्यरसः स्वादुः किं वा स्वादीयसी सुधा॥

देवता स्वर्ग में रहते हैं और हम पृथ्वी पर रहते हैं अब हम किससे पूछें कि स्वर्गीय अमृत मजेदार होता है या काव्य स्वादु होता है। इतना उत्कट रस रखने वाला काव्य कोई जाति आज तक संसार के सामने नहीं रख सकी। फिर काव्य भी कैसा कि संस्कृत में जितने बड़े २ ग्रंथ लिखे गये सब काव्य में। ब्राह्मणों ने संसार के सन्मुख विज्ञान की भागीरथी बहा कर अपने कर्तव्य को पूरा करके दिखला दिया।

हम प्रत्येक ग्रंथ की प्रशंसा कहां तक आपको सुनावें सब को छोड़ कर इतना कहे देते हैं कि वेदों की रक्षा के लिये, और वेदों के गूढ़तत्व को विशदी करने के लिये, संसार के जनसमुदाय को वेद विज्ञान साधारण रीति से समझाने के लिये, संसार की उन्नति और अन्त में मोक्ष पाने के लिये, छहो दर्शन, छहो अंग, धर्मशास्त्र, पुराण, इतिहास, श्रौत गृह्यसूत्र आदि विविधि प्रकार के ग्रंथ जो संसार के सम्मुख आये, ये ब्राह्मणों के ही परिश्रम का फल था। ब्राह्मणों ने साहित्य को जिस उच्च श्रेणी पर पहुंचा दिया था उस उच्च श्रेणी पर साहित्य को आज तक भूमंडल की एक भी जाति नहीं पहुंचा सकी।

ब्राह्मणों ने विज्ञान की उन्नति तो की ही है किन्तु इस

उन्नति के साथ साथ ये धनुर्विद्या में भी बड़े प्रवीण होते आये। भूतल के समस्त क्षत्रिय धनुर्विद्या का पाठ भी ब्राह्मणों से ही उपलब्ध करते रहे हैं। समय पड़ने पर शस्त्रास्त्र लेकर ब्राह्मण मैदान में भी कूदे हैं। परशुराम, कृपाचार्य, अश्वत्थामा प्रभृति अनेक ब्राह्मण इस विषय में प्रमाण मिलते हैं। महाभारत के युद्ध में अर्जुन ने कृष्ण से यह कहा था—यह सम्भव हो सकता है कि हम भीष्म का पराजय करदें, यह भी हम मान जायंगे कि कर्ण को हम गिरा देंगे, हम यह भी मानने को तैयार हैं कि शल्य, शकुनी, दुःशासन, जयद्रथ, भूरिश्रवा और दुर्योधन हमारे आगे रण में न ठहर सकेंगे किन्तु हम यह कभी भी मानने को तैयार नहीं कि द्रोणाचार्य हमसे हार मान जावेगा, द्रोणाचार्य कोई साधारण मनुष्य नहीं है।

मुखाग्रे यस्य वै वेदाः कराग्रे सशरं धनुः।
उभयोर्द्रोणसामर्थ्यः शापादपि करादपि॥

द्रोणाचार्य के मुख में चारो वेद नृत्य करते हैं और हाथ में धनुष बाण नाचते हैं, द्रोण में दो सामर्थ्य हैं वे धनुष बाण से भी मार सकते हैं और शाप देकर भी मार सकते हैं।

अध्यात्मबल।

ब्राह्मणों में शास्त्रबल और युद्धबल तो हो ही गया था किन्तु इन दोनों बलों से विलक्षण प्रबल एक अध्यात्मबल

और आ गया था। एक दिन विश्वामित्र सेना लेकर वशिष्ठ पर चढ़े, वशिष्ठ ने आती हुई सेना को देख कर "हुं" यह अक्षर मुख से निकाला, इस एक अक्षर के मुख से निकलते ही विश्वामित्र की समस्त सेना मृत्यु के मुख में चली गई। उस समय विश्वामित्र आश्चर्य की लहरों में गोते खाने लगे, होश आने पर कह बैठे कि—

धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजोबलंबलम्।
एकेन ब्रह्मदण्डेन शस्त्रास्त्राणि हतानि मे॥

क्षत्रिय के बलको धिक्कार है, संसार में यदि कोई बल है तो ब्रह्मतेज ही बल है, एक ब्रह्मदण्ड ने मेरे लक्षों शस्त्रास्त्रों का स्वाहा कर दिया।

श्रीमद्भागवत में लिखा है कि एक दिन एक राजा शिकार खेलने को गया, प्यासा मरने लगा, पानी की खोज में एक ऋषि के आश्रम में पहुंचा। दैवयोग से वहां भी जल नहीं मिला। राजा को क्रोध आया, दैवदुर्विपाक से राजा ने मरे हुये सर्प को क्रोधवश ऋषि के गले में डाल दिया, राजा चला गया। यह समाचार समीपस्थ ऋषि के नगर में पहुंचा। छः वर्ष की आयु रखने वाले उस ऋषि के पुत्र ने इस समाचार को सुना सुनते ही क्रोध आ गया और कह उठा कि—

इति लंघितमर्यादं तक्षकः सप्तमेऽहनि।
दङ्क्ष्यति स्म कुलाङ्गारं चोदितो मे ततद्रुहम्॥

जिस राजा ने धर्ममर्यादा को छोड़ दिया है उस कुलाङ्गार को सहस्रों यत्न करने पर भी आज से सप्तम दिवस तक्षक काटेगा।

राजा परीक्षित को बचाने के लिये ऋषि, मुनि, देव, गंधर्व आये साक्षात् धन्वन्तरिजी भी पधारे, किन्तु किसी का भी उद्यम सफल न हुआ और इस धार्मिक वीर क्षत्रिय को तक्षक ने काटा, विवश इसको शरीर छोड़ना पड़ा।

अध्यात्म विद्या की वृद्धि से ऋषियों ने सैकड़ों पुत्रेष्टि यज्ञ करवाके वंशोच्छेदन को रोका, सुद्युम्न को स्त्री से पुरुष बना दिया, इन्द्र को शाप दे दिया, हम और कहां तक कहें एक ब्राह्मण ने विष्णु की भी छाती में लात मारदी। संसार ब्राह्मणों की शक्ति के आगे शिर झुका उठा। एक दिन चक्रवर्ती राजा रहूगण कह उठा था कि—

नाहं विशंके सुरराजवज्रा-
न्न त्र्यक्षशूलान्न यमस्य दण्डात्।
नाग्न्यर्कसोमानिलवित्तपाशा-
च्छंके भृशं ब्रह्मकुलापमानात्॥

मैं इन्द्र के वज्र से नहीं डरता, मैं महादेव के त्रिशूल से नहीं डरता, मैं यमराज के दण्ड से नहीं डरता, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, वायु इनसे नहीं डरता, वरुणपाश से नहीं डरता, यदि मैं संसार में डरता हूं तो इससे डरता हूं कि कहीं मेरे शरीर

से ब्रह्मकुल का अपमान न हो जाय। ब्राह्मणों की अलौकिक अध्यात्मशक्ति को सुन कर एक कवि कह बैठा था कि—

ऐसी थी करामात जो हाथों को हिलादें।
जिन्दों को करें मुर्दा मुर्दों को जिलादें॥

पतन।

महाभारत के पश्चात् हिन्दू राजा व्यसनों में पड़ने लगे अतएव ब्राह्मणों की सहायता कम होने लगी, ब्राह्मणों में भी शिथिलता आ गई। यवन जाति के राज्य में ब्राह्मणों पर घोर आपत्ति आई, संस्कृत का पठन-पाठन छूट गया, वैदिक धर्म को सर्वोपरि कह देना पाप समझा गया, ब्राह्मणों ने नगर ग्राम छोड़ दिये, जंगलों को भागे, वहां जाकर फल फूल अन्न घास जो कुछ मिला उससे अपना पेट भरा और असंख्य संस्कृत साहित्य में से कुछ थोड़े से ग्रंथ कंठ करके बचाये जो इस समय आपके आगे हैं। हमें आशा थी कि बृटिशराज्य में हिन्दू जाति आंखें खोलेगी और होश में आवेगी तथा ब्राह्मणों का सन्मान करेगी, सन्मानित ब्राह्मण फिर विद्या के रत्नों को संसार के आगे रक्खेंगे, किन्तु हमारी यह आशा निराशा हो गई। आज उन्नति के व्याख्यान देनेवाले संस्कृत को मृतक भाषा कहने लगे, ब्राह्मणों को देश के दुशमन और भारतवर्ष का बेड़ा गरक करनेवाले बतलाने लगे। आज ये अपने व्याख्यानों में खुलासा कह देते हैं कि ब्राह्मण जाति को संसार से मिटा दो, ब्राह्मणों को

बोरों में भरकर समुद्र में डुबा दो, वेद गड़रियों के गीत हैं, उनमें तनक भी ज्ञान नहीं है, जाहिलों के बनाये हुये हैं। यद्यपि मुर्दा कौम को जीवित करने वाली यदि कोई वस्तु हमारे पास है तो वह पुराण हैं किन्तु ये पुराणों को गपोड़े बतलाते हैं। इनका साफ साफ कथन है कि हिन्दू साहित्य को जल्दी मिटा कर देश की उन्नति करो। अपने व्याख्यानों में ये लोग यह भी सुना देते हैं कि हम इस देश के रहने वाले नहीं हैं किन्तु उत्तरीय हिमालय से आये हैं और अमेरिका के वाशिन्दे हमारे वंशज हैं, वे और हम एक हैं, ये ब्राह्मण उनसे घृणा करवाते हैं इस कारण सब से पहिले ब्राह्मण जाति को मारदो। इन लोगों ने भंगी, चमार, कसाई, कुंजड़े, धोबी, तेली, नाइयों को ब्राह्मण इस लिये बनाया है कि जहां तक हो सके ब्राह्मण जाति शीघ्र मरे। अब ये ब्राह्मणों से विद्या की उन्नति करके देश का उत्थान करना नहीं चाहते किन्तु भारत की भाषा-वेष, आहार-व्यवहार को मार होटलों में अभक्ष्य मांस शराब का पान कर व्यभिचार द्वारा भारतवर्ष का उत्थान करना चाहते हैं। हमारी समझ में तो ये भारत का अभ्युत्थान नहीं करते किन्तु अभ्युत्थान का बहाना लेकर हिन्दू जाति को संसार से विदा करने पर टूट पड़े हैं। आज हम श्रोताओं से जोरदार अपील करेंगे कि आप लोग एकान्त में बैठ कर इसका विचार करें कि वास्तव में ब्राह्मणों के अवलंबित मार्ग से भारतवर्ष का उत्थान होगा या होटल के शराब कबाब से।

क्षत्रिय ।

भारतीयों के आलस्य से जिस प्रकार विद्या भारतवर्ष को छोड़ गई उसी प्रकार भारतवासियों की वीरता भी सात समुद्र पार उतर गई। अब भारतवासी वीरता का काम वाणी से लेना चाहते हैं। आजकल भारतवर्ष में राष्ट्रीय आन्दोलन की चहल पहल है, जल्दी से जल्दी स्वराज्य लेना चाहते हैं, किन्तु स्वराज्य लेने के साधन इनके पास केवल लेक्चरबाजी और हारमोनियम तबले के साथ भजन गान है। जिस समय ये लेक्चरबाजी के समुद्र में गोते लगातेहैं उस समय ये स्वराज्य के मिलने की तिथि भी नियत कर देते हैं, और भजनों में तो इतनी शक्ति है कि एक आदमी स्टेज पर खड़ा होकर यह साफ साफ कह देता है कि "चर्खे से लेंगे स्वराज-स्वराज मेरे प्यारे-चर्खे से लेंगे स्वराज" किन्तु संसार का इतिहास यह कह रहा है कि इस प्रकार से स्वराज्य मिल जाने की इच्छा रखने वालों की बुद्धियों को सन्निपात चिपट बैठा है, या यों कह सकते हैं कि संसार में कोई उच्च श्रेणी का पशु है तो वह है जो बकवाद से स्वराज्य लेना चाहता है। संस्कृत साहित्य में तो यह सर्वतंत्र सिद्धान्त कर दिया गया है कि "वीरभोग्या वसुन्धरा" "वीर होय जो बसुधा भोगै" बिना वीरता के संसार का कोई भी भाग अपने देश में अपनी राजसत्ता को रख नहीं सकता, जब तक भारतवर्ष प्रबल वीर रहा तब तक

भूतल के राजा इसके आधीन रहे, जब यह वीर रहा तब यह अपने देश में अपनी राजसत्ता को रख सका, जब यह निर्बल हुआ तब दूसरी कौमों ने इसके मुंह पर थप्पड़ लगाये और इसको पैरों के नीचे कुचल डाला। संसार में एक भी प्रमाण ऐसा नहीं मिलता जिससे यह सिद्ध हो जावे कि निर्बल मनुष्यों के हाथों में राज्यशासन की बागडोर रहे। प्राचीन भारतीय क्षत्रियों ने वीरता के गौरव को समझा और यह फल निकाला कि क्षत्रियों का जीवन 'वीरता' है, बलहीन क्षत्रिय का संसार में जीवित रहने का कोई प्रयोजन नहीं, शरीर को मौत की भेट कर दो और क्षत्रियों की वीरता की लाज रक्खो। इतना ज्ञान उपलब्ध करके भारतीय क्षत्रियों ने वीरता देवी का अनुष्ठान किया और इसके बाद संसाररक्षा की शासनपद्धति को हाथ में लिया। उस समय किसी चोर या डाकू में यह ताकत नहीं रही कि किसी की वस्तु को हड़प्प करने की दृष्टि से देखले। इस प्रकार मजबूत बन कर भारतीय क्षत्रिय संसार में शान्ति फैलाने का उद्योग करने लगे, क्षत्रियों का यह धर्म हो गया कि—

शरीररक्षस्य विधाय धारा,
संसाररक्षां भुजजो विधत्ते।
देशाब्जनाभे परिवर्तमानो,
जयाय भूयात्स तु क्षात्रवंशः॥

शरीर के रक्त की धारा वहा कर क्षत्रिय संसार की रक्षा करते हैं, ऐसा पवित्र क्षात्रवंश जो अजनाभ देश में ही मिलता है हमतो यही कहेंगे कि ईश्वर ऐसे पवित्रवंश का विजय करे।

भारत के क्षत्रियों ने धर्मरक्षा और देशरक्षा के आगे अपने जीवन की कुछ भी परवाह नहीं की, प्राचीन भारतीय क्षत्रियों के राज्य में कभी डाका नहीं पड़ा, कभी टैक्स नहीं लगा, कभी चंदा नहीं देना पड़ा, राज्य का धन कभी पेशवाजी में नहीं गया, भारतीय राजा अपने को नरेश नहीं समझते थे वरन् धर्म का चौकीदार समझते थे, वीरता की छटा जो भारतीय क्षत्रिय दिखला चुके हैं, संसार की कोई जाति दिखला नहीं सकती, भारतीय क्षत्रियों ने सर्वदा शत्रुओं को मच्छर से अधिक नहीं समझा, भरी हुई तोप की नाल पर हाथ रख देना भारतीय योद्धाओं का साधारण काम था। जब से राजशासन की स्थापना हुई तब से लेकर महाभारत के युद्ध तक भारत-वासी राजा ही चक्रवर्ती राजा होते आये, ऐसा एक भी चक्र-वर्ती राजा नहीं था कि जिसने कम से कम तीन अश्वमेध यज्ञ या उससे भी कम एक अश्वमेध यज्ञ न किया हो। चक्रवर्ती बनने के लिये जो अश्वमेध यज्ञ किया जाता है उसमें भूतल के राजाओं के जीतने पर ही अश्वमेध यज्ञ हो सकता है। भारत-वर्ष में कई एक क्षत्रिय वीर ऐसे भी हुये हैं कि जब वे दिग्वि-जय को निकले तब अपने शरीर से अकेले ही गये दूसरा एक भी मनुष्य उनके साथ नहीं गया यदि कोई दूसरा साथ में रहा

तो द्वितीय संख्या को पूर्ण करने वाला 'धनुष' ही साथ में रहा। यद्यपि ऐसे राजा अनेक हुये हैं, किन्तु उन सब में से एक राजा पाण्डु का दिग्विजय यहां दिखलाते हैं। जिस समय महाभारत हो चुका और तीर्थयात्रा में गये हुये विदुर को उद्धव का समागम हुआ यहां पर समस्त कुटुम्बी और सम्बन्धियों की चर्चा चली, इसी प्रकरण में लिखा है कि—

अहो पृथापि ध्रियतेऽर्भकार्थे,
राजर्षिवर्येण विनापि येन।
यस्त्वेकवीरोधिरथो विजज्ञे,
धनुर्द्वितीयः ककुभश्चतस्रः॥

बड़े आश्चर्य की बात है कि कुन्ती ने उस राजर्षि वीर पाण्डु के बिना अपने जीवन को रक्खा जो महारथी वीर पाण्डु धनुष को हाथ में लेकर के एकला ही चारो दिशाओं का दिग्विजय कर आया था इसके बिना जो कुन्ती ने अपने शरीर को रक्खा इस शरीर रखने का कारण केवल बच्चों का पालन करना ही था।

यद्यपि आजकल शराबखोर सुधारक इसको गप्प मानेंगे किन्तु संसार की घटनायें इसको सोलह आने सत्य सिद्ध कर देती हैं। भूषण की कविता को सुन कर जिस समय शिवाजी के शरीर में वीरता का संचार हुआ उस समय हजारों वीर यवन आफीसरों के शिरों को शिवाजी की

तलवार ने अलग फेंक दिया, इस वीरता के जोश में शिवाजी को युद्ध प्रवीण यवन केवल फूस के पुतले मालूम होते थे, यदि पाण्डु इनसे चार कदम आगे बढ़ गया तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? आश्चर्य है हमको व्यभिचारी कुल-कलंक सुधारकों पर जो वीरता को खोकर साबुन लगा लगा आप तो स्त्रियों के दर्जे पर पहुंच ही गये हैं किन्तु अब वे दूसरे भारतीयों की शेष रही वीरता का सत्यानाश करके उनको किस प्रकार योरुपीय सांचे में ढाल रहे हैं, यह आश्चर्य की बात है कि हिन्दू संतान ही हिन्दुओं का नाश करे!

आज जिस समय राजा कहीं की यात्रा करते हैं तो उस समय राजा के चारो तरफ बन्दूक लिये और बन्दूकों पर किर्च रक्खे सैनिक आफीसर रहते हैं, उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि यह राजा अपराधी है और इसके चारो तरफ जो शस्त्र-बन्द आफीसर हैं ये राजा के गिरफ्तार करने वाले हैं। इन आफीसरों को 'बाडी गार्ड' कहते हैं, यह बाडीगार्डपनकी दुष्ट प्रणाणी प्रथम भारतवर्ष के राजाओं में नहीं थी। कवि कालिदास लिखते हैं कि—

न चान्यतस्तस्य शरीररक्षा।
स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः॥

भारतवर्ष के राजा की शरीररक्षा अन्य से नहीं होती क्योंकि मनुसंतान अपने पराक्रम से ही अपनी रक्षा करती चली आई है।

आजकल की शिक्षापद्धति इतनी दूषित करदी गई है कि उसमें पढ़ा हुआ विद्यार्थी क्लर्की को छोड़ कर संसार का और कोई भी कुछ काम नहीं कर सकता, यदि इसको किसी गुण्डे से काम पड़ जावे तो यह वहां पर सीधे तरीके से पिट लेगा किन्तु पराक्रमहीन होने के कारण आत्मरक्षा नहीं कर सकता। जो लोग गुण्डों से पिटें और वे फिर स्वराज्य मांगें यह उनकी अनधिकार चेष्टा है। वास्तव में इनका कोई दोष नहीं, यह दोष शिक्षापद्धति का है जो जोरदार को कमजोर और मर्द को नामर्द बनाती है। उस समय के क्षत्रिय समस्त विद्याओं का अध्ययन करके वीर बनते थे। इनकी वीरता की प्रशंसा हम कहाँ तक करें, मनुष्य तो इनके सामने मच्छर से अधिक अस्तित्व नहीं रखता था। देवताओं को जब दैत्यों का भय होता था तब अपनी रक्षा की प्रार्थना करके देवता भी भारत-वासी वीर-क्षत्रियों के सन्मुख आकर रक्षा की भिक्षा मांगते थे। ककुत्स्थ जैसे बीसियों राजा भारतवर्ष से देवरक्षा के लिये स्वर्ग में गये, और इन्होंने दैत्यों का कचूमर निकाल कर देवताओं की रक्षा की। काम पड़ने पर देवताओं से युद्ध कर बैठना भारतवीरों की साधारण वीरता का लक्ष्य था। एक नहीं-दो नहीं, देवराज इन्द्र के युद्ध में छक्के छुड़ा देनेवाले भारत में कई एक क्षत्रिय वीर हो गुजरे हैं, उनमें से एक क्षत्रिय वीरबालक का इतिहास आगे रखता हूं। महाराजा दिलीप ९९ अश्वमेध यज्ञ कर चुका था, १००वीं बार दिग्विजय का घोड़ा घूम कर

अयोध्या में आगया, यज्ञ का आरंभ हो गया, इतने ही में इन्द्र ने अश्वमेध के घोड़े को गायब करना चाहा। इन्द्र की धर्म विरुद्ध इस घटना को दिलीप का बालक रघु सह न सका, धनुष बाण लेकर इन्द्र के पीछे दौड़ा और इन्द्र को ललकारा कि कौन भागा जाता है, चोर है या कोई शक्तिशाली है। इस आवाज पर इन्द्र युद्ध के लिये तैयार हो गया। दोनों तरफ से शस्त्रास्त्र चलने लगे। बहुत देर तक युद्ध होता रहा, अंत में इस वीर बालक ने इन्द्र की भुजा को बांध दिया और इन्द्र के धनुष को तोड़ डाला। इन्द्र को बड़ी लज्जा आई कि प्रथम तो यह मनुष्य और मैं देव, फिर मनुष्यों में भी यह बालक, तथा इतने पर भी इसने मेरा धनुष तोड़ डाला, यह विचार कर इन्द्र ने इस बालक पर अपार क्रोध किया, इसके मारने के लिये महर्षि दधीचि ऋषि की अस्थियों से बने हुये अमोघवज्र को उठाया। इस कथा को कवि कालिदास इस प्रकार लिखते हैं—

स चापमुत्सृज्य विवृद्धमत्सरः
प्रणाशनाय प्रबलस्य विद्विषः।
महीध्रपक्षव्यपरोपणोचितं
स्फुरत्प्रभामण्डलमस्त्रमाददे ॥१

रघुर्भृशं वक्षसि तेन ताडितः
पपात भूमौ सह सैनिकाश्रुभिः।
निमेषमात्रादवधूय तद्व्यथां,
सहोत्थितः सैनिकहर्षनिःस्वनैः ॥

इन्द्र जब शस्त्रास्त्रों से रघु के साथ में कबी खा गया तब इन्द्र ने धनुष को फैंक दिया, बढ़ गया है वैर भाव जिसका ऐसे इन्द्र ने प्रबल वीर वैरी रघु को मारने के लिये जिस वज्र से पर्वतों के पंख काट डाले हैं वह अपनी किरणों से संसार को प्रकाशित करनेवाला दधीचि की अस्थिया का बना हुआ वज्र हाथ में उठाया। घुमा करके बड़े जोर के साथ इन्द्र ने रघु की छाती में वज्र मारा, वज्र के लगते ही सैनिकों के आंसुओं के साथ रघु पृथ्वी पर गिर पड़ा किन्तु एक ही क्षण में उस वज्र की व्यथा को दूर करके सैनिकों की हंसी के साथ में रघु तुरन्त उठ बैठा।

इस आश्चर्यमयी घटना को देख कर इन्द्र के होश उड़ गये और बोल उठा कि—

> तथापि शस्त्रव्यवहारनिष्ठुरे
> विपक्षभावे चिरमस्य तस्थुषः।
> तुतोष वीर्यातिशयेन वृत्रहा
> पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते ॥ १
>
> असङ्गमद्रिष्वपि सारवत्तया
> न मे त्वदन्येन विसोढमायुधम्।
> अवेहि मां प्रीतमृते तुरङ्गमा-
> त्किमिच्छसीति स्फुटमाह वासवः ॥ २

शस्त्र की चोट में बड़े निष्ठुर अपने प्रबल शत्रु रघु के निर्भीक

स्थायित्व को देख कर इन्द्र इस बालक के ऊपर बड़ा प्रसन्न हुआ। यद्यपि शत्रु के ऊपर शत्रु प्रसन्न नहीं होता तौ भी पराक्रम का जो उत्कर्ष है वह शत्रु को भी प्रसन्न कर देता है। इन्द्र ने अपने मन में विचारा कि जिस वज्र से मैंने सहस्रों दैत्यों को मारा, वृत्रासुर को धराशायी कर दिया, पर्वतों के पंख काट डाले, जो वज्र अमोघ गिना जाता है वही वज्र इस छोटे से बच्चे पर कुछ भी प्रभाव न डाल सका, यह भी अदृष्टपूर्व वीर है, यह समझ कर इन्द्र प्रसन्न हुआ। प्रसन्न होकर इसी बात को रघु से कहा कि सार रखने वाले मेरे वज्र को तुम से अन्य कोई भी नहीं सह सका, हम और को तो क्या कहें पर्वतों पर भी छोड़ा हुआ यह वज्र कभी व्यर्थ नहीं हुआ, किन्तु तुम्हारे वक्षःस्थल में लग कर यह भी अपना प्रभाव न डाल सका। अब हम तेरे ऊपर प्रसन्न होगये, यज्ञ का घोड़ा तो हम देंगे नहीं घोड़े को छोड़ कर तुम जो चाहो सो मांगलो।

रघु ने कहा कि यदि तुम शत संख्यात्मक यज्ञ का यह घोड़ा नहीं देते तो फिर यह दो कि इस घोड़े के बिना ही मेरे पिता का यह यज्ञ पूरा हो, विवश इन्द्र को कहना पड़ा कि जाइये आपके पिता के सौ यज्ञ पूरे हुये। इन्द्र के इतना कहने पर भी रघु का चित्त मलीन रहा। किन्तु जिस समय यह अपने पिता दिलीप के पास आया दिलीप ने इसके घावों पर हाथ फेरा और इसकी प्रशंसा की तब कुछ सन्तोष हुआ। इसी प्रकार इतिहास में क्षत्रियों की प्रबल वीरता के सहस्रों इतिहास लिखे

हैं। आज हमको इतिहास नहीं सुनाना है, विषय को पुष्टि करनी है, विषय की पुष्टि के लिये ऊपर लिखे प्रमाण ही तोष-दायक हो सकते हैं अब कथा बढ़ाने से कोई प्रयोजन नहीं।

भारत के वीर क्षत्रिय अपनी मान मर्यादा में बट्टा लगाने वाले शब्द का सहन नहीं कर सकते थे। ऐसे शब्द को सुन कर वीर क्षत्रिय का क्रोध इस प्रकार बढ़ जाता था जैसे पैर के नीचे दबने से सर्प का क्रोध बढ़ जाता है। यद्यपि ऐसी घट-नायें इतिहास में अनेक दीखती हैं, तो भी विषय की पूर्ति के लिये मैं एक घटना को श्रोताओं के आगे रखता हूं। जनक (सीरध्वज) के यहाँ रक्खा हुआ शङ्कर का धनुष जब किसी भी वीर क्षत्रिय से न उठा तब जनक को सीता के कारी रह जाने के शोक ने घेर लिया, उस समय जनक ने कह उठाया कि—

आद्वीपात्परतोऽप्यमी नृपतयः सर्वे समभ्यागताः
कन्यायाः कलधौतकोमलरुचेः कीर्तिश्च लाभः परः।
नाकृष्टं न च टङ्कितं न नमितं नोत्थापितं स्थानतः
केनापीदमहो महद्धनुरिदं निर्वीरमुर्वीतलम्॥

ये सम्पूर्ण राजा लोग सब द्वीपों से इकट्ठे हो कर आये हैं और इसमें तपाये हुये सुवर्ण के समान कान्तिवाली कन्या और दूसरा कीर्ति का लाभ है तिस पर भी इस धनुष को न तो किसी ने खींचा, न टङ्कित (टंकार शब्द) करा और न नवाया, न किसी ने स्थान से उठाया, बड़ा आश्चर्य है कि यह पृथ्वी वीरों से शून्य है।

जनक के इस कथन को सुन कर रघुकुल में उत्पन्न हुये छोटे से बच्चे लक्ष्मण के रुधिर में उष्णता का संचार हो गया, अंग में स्फूर्ति और मन में चांचल्यता आ गई। लक्ष्मण ने बहुत चाहा कि हम इस क्रोध को दबा जांय किन्तु स्वरूप के अपमान ने उस शक्ति को फेल कर दिया, होठों को पीसते हुये क्रोध में भरे हुये लक्ष्मण ने अपने बड़े भाई रामचन्द्रजी से कहा कि देखिये जनक ने कितना कटु वाक्य कहा है ऐसी अनुचित वाणी जनक के मुख से निकलना हमको क्षोभ करा रहा है। प्रभो! हम किसी दूसरे के सम्बन्ध में तो कुछ कह नहीं सकते किन्तु यदि आप हमें आज्ञा दे दें तो हम जनक को तमाशा दिखला दें।

देव श्रीरघुनाथ किं बहुतया दासोऽस्मि ते लक्ष्मणो।
मेर्वादीनपि भूधरान्न गणये जीर्णः पिनाकः कियान्॥
तन्मामादिश पश्य पश्य च बलं भृत्यस्य यत्कौतुकं।
प्रोद्धर्तुं प्रतिनामितुं प्रचलितुं नेतुं निहन्तुं क्षमः॥

हे देव रामचन्द्र! बहुत कहने से क्या है। मैं आपका दास यह लक्ष्मण हूं, जो सुमेरु आदि पर्वतों को भी नहीं गिनता तो यह पुराना धनुष क्या है? सो आप मुझे आज्ञा दीजिये और मुझ अपने दास का बल और कौतुक (तमाशा) देखिये मैं तो इस धनुष को ऊपर करने को, नमा देने को, हिलाने को, ले जाने को और टुकड़े २ करने को भी समर्थ हूं।

क्षत्रियों ने अलौकिक वीरता को लेकर जब संसार का शासन किया तो इस शासन में अधर्म, स्वार्थ, पालसी का नाम तक नहीं रहने दिया किन्तु प्रत्येक राजा ने अपने जीवन को धर्म का आदर्श बनाया इस विषय की विवेचना सुनने की कृपा करें।

पुराणसाङ्गश्रुतिधर्मशास्त्रं
षड्दर्शनं भूरिपरिश्रमेण।
अधीत्य धर्माचरणेन पूता
आदर्शरूपाः प्रभवः श्रुतीनाम् ॥
नित्यं तु ते धर्मपथेन गोत्रां,
धर्मं पपुर्नम्रतया क्षितीशाः।
अकालमृत्युर्न च रोगभीतिं,
रकृष्टपच्या पृथिवी तदानीम् ॥

पुराण, अंगोंसहित वेद, धर्मशास्त्र, छहो दर्शन इनको भारत के क्षत्रियों ने अध्ययन किया और फिर धर्म के आचरण से पवित्र बने। भारतवर्ष के क्षत्रिय क्या थे श्रुति में कहे हुये धर्म के आदर्श थे। प्रत्येक राजा नित्य ही धर्मपथ पर स्थिति रख कर पृथिवी का पालन करता था। उनके धर्माचरण के प्रभाव से देश के सौभाग्य के दिन आये। उनके शासन में न तो कभी अकालमृत्यु होती थी और न कभी हैजा, प्लेग, इनफ्लूएंजा आता था और न प्रजा को किसी प्रकार का भय ही

होता था, इनके धर्म के प्रभाव से विना बोये ही फसल उत्पन्न होती थी।

क्षत्रिय लोग धर्म में कितनी निष्ठा रखते थे इसका फोटू कवि कालिदास आपके आगे इस प्रकार रखते हैं।

यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम्।
यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम्॥

जैसे वेद में विधि है उसके अनुसार ही हुताग्नि और जैसे जिसकी कामना उसके अनुकूल ही मांगने वालों की काम पूर्ति करना, जैसा जिसका अपराध है वैसा ही उसको दण्ड देना और जिस समय में वेद ने जागने के लिये लिखा है उसी समय जागना।

त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम्॥
शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥

द्रव्य केवल दान के लिये संग्रह करना, सत्य के लिये थोड़ा बोलना, यश के लिये भूतल का विजय करना, प्रजा उत्पन्न करने के लिये गृहस्थधर्म का सेवन करना, लड़कपन में विद्याभ्यास करना, युवावस्था में विषय की इच्छा करना, वृद्धावस्था में राजसिंहासन को छोड़ मुनिवृत्ति को धारण करना और अंत में योगाभ्यास से ब्रह्माण्ड फोड़ कर प्राण निकालना—यह भारतवर्ष के क्षत्रियों का आचार था।

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः॥

भारतीय क्षत्रिय जो प्रजा से पृथ्वी का कर लेते थे वह अपने खाने पीने के लिये नहीं किन्तु केवल प्रजा की रक्षा के लिये लेते थे। जिस समय कोई दुर्भिक्ष आ पड़ता था उस समय प्रजा को कर से सहस्रगुणा द्रव्य देते थे जैसे सूर्य चार महीने पृथ्वी से जो जल खैंचता है, चातुर्मास्य में उससे सहस्र-गुणा दे देता है।

भारतीय क्षत्रिय विषय के चक्कर में नहीं पड़ते थे, भारतीय क्षत्रिय जब किसी अन्यदेश का विजय करते थे तो कुछ भेट लेकर उसी को लौटा देते थे। जिस समय दो भारतीय वीर संग्राम में लड़ते थे उस समय वीरता और आयु में बड़ा वीर छोटे को प्रथम शस्त्र छोड़ने की आज्ञा देता था, दिन में युद्ध करते थे और रात्रि को मित्रभाव से बैठ कर बातचीत करते थे। क्षत्रियों की वीरता का फोटू भारतीय महाभारत के समय तक दर्शनीय बना रहा। जिस समय कुरुक्षेत्र के मैदान में २८ अक्षौहिणी सेना जमा होगई तब दुर्योधन ने भीष्म से प्रश्न किया कि बाबा क्या कोई ऐसा भी वीर पृथ्वी पर है जो २८ अक्षौहिणी सेना को एकला ही धराशायी कर दे ? इसको सुन कर भीष्म हंसे और हंस कर बोल उठे कि—

जो मैं अपनो तेज सँभारूं।
एक दिवस दोऊ दल मारूं॥

द्रोण कोप जो शर संधानै।
तीन दिवस में करै निदानै ॥

द्रौणी तीनहि दण्ड में, दोउ दल करे निदान।
पल लागत अर्जुन वधै, छुवै न दूजो बान ॥

भारतवर्ष के क्षत्रिय धर्माचरण में तो बहुत बढ़ ही गये थे किन्तु इनमें से कोई २ धर्मवक्ता भी हुये हैं। जनक, भीष्म, प्रभृति क्षत्रिय धर्मवक्ताओं में प्रबल धर्मवक्ता थे। इस प्रकार क्षत्रियों का धर्माचरण और वीरता द्वापर के अंत तक चली। द्वापर के अंत में दुष्ट संगति से दुर्योधन में स्वार्थ और अभिलाषिता आ गई, इसी पर महाभारत हुआ। युद्ध-विद्यायें इसी लड़ाई में समाप्त हो गईं। इस यद्ध के समाप्त होने ही क्षत्रियों में द्वेषाग्नि भड़क उठी। यह द्वेषाग्नि यादवकुल का विध्वंस करके भी शान्त न हुई, समय समय पर अपनी छटा दिखलाती ही रही। जैचन्द और पृथ्वीराज को द्वेषाग्नि ने भारत को दूसरों के पंजों में डाल दिया, किन्तु इस समय में भी कभी २ मृतक वीरता अपनी छटा दिखला ही देती थी। गुरू गोविन्द-सिंह, महाराणा प्रताप, पेशवा और मरहठों का फतेह पाना इसके उदाहरण हैं। आज तो क्षत्रियों की बड़ी शोचनीय दशा हो गई है। एक कवि लिखता है कि—

सेल गई बर्छी गई, गये तीर तलवार।
घड़ी छड़ी चशमा हुये, क्षत्रिन के हथियार ॥

भारतीय इतिहास साक्षी है इस बात का कि राज्यशासन वीरता के आधीन है। जब क्षत्रिय वीर थे ये संसार का शासन करते थे, जब भारत की वीरता नष्ट हुई तब भारत को गुलाम बनना पड़ा! वीरता के बिना कोई भी देश अपने शासन को नहीं पा सकता, यदि किसी प्रकार मिल भी जावे तो बलहीन देश उसको रख नहीं सकता, भारत को स्वराज्य पाने के लिये यह आवश्यकीय है कि पहिले वह वीरता प्राप्त करे और वीरता की प्राप्ति में प्रत्येक भारतीय क्षत्रियों को सहायता दे।

आज भारतवर्ष अपनी वीरता को खोकर लेक्चरबाजी से स्वराज्य लेना चाहता है, ऐसा न कभी हुआ है न आगे को हो सकता है। स्वराज्य २ चिल्लाने से सैकड़ों शताब्दियों में भी स्वराज्य न मिलेगा, हां इतना लाभ जरूर है कि कुछ निकम्मे आलसी लोग स्वराज्य २ चिल्ला कर लीडर बन जाते हैं और वे साधारण पबलिक को स्वराज्य प्राप्ति का धोखा देकर लक्षों रुपये मार खाया करते हैं। हमको नहीं मालूम कि भारतवासी अपनी बुद्धि को चक्की में पीस कर इनकी असंभव बातों को कैसे संभव मान बैठते है और किस विवेक से इनको लीडर कहते हुये स्वराज्य की प्राप्ति के स्वप्न देखा करते हैं। हमारी समझ में इस प्रकार से धोखे में डाल कर माल कमाने वाले लीडर नहीं हो सकते वरन् यदि हम इनको धाप्पालशाह कहें तो इसमें ज़रा भी अत्युक्ति नहीं है। यदि तुम

अपनी मान मर्यादा रखना चाहते हो, यदि संसार के सन्मुख तुम मनुष्य बनना चाहते हो, यदि तुम स्वराज्य के भूखे हो तो फिर भगवती वीरता शक्ति की आराधना करो जब वह तुमको वीर बना देगी तब तुम्हारा शासन अपने आप तुम्हारे आगे आकर खड़ा होगा और तुमसे प्रार्थना करेगा कि तुम अब हमें स्वीकार करो।

वैश्य।

भारत को विद्वान् बनाने में जो परिश्रम ब्राह्मणों ने किया और भारत को स्वावलम्बी बनाने के लिये क्षत्रियों ने जो वीरता बढ़ाई, वैश्यों ने भी भारतवर्ष को सुखी समृद्धिशाली बनाने में ब्राह्मण क्षत्रियों से कुछ अधिक ही काम किया था प्रथम तो—

वेदान्पुराणानि च धर्मशास्त्रं
भूगोलविद्यां गणितं च बीजम्।
अधीत्य वैश्या अभवन्विनम्रा
धर्मे रताः कर्मणि संप्रवृत्ताः॥

वैश्यों ने वेद और पुराण तथा धर्मशास्त्र, भूगोल साधारण गणित और बीजगणित का अध्ययन किया फिर नम्र होकर धार्मिक बन अपने कार्य में प्रवृत्त हुये।

धर्मशास्त्र ने वैश्यों को चार आजीविकायें बतलाई हैं—"कृषि वाणिज्य गोरक्षा कुसीदं तूर्यं उच्यते" खेती, व्यापार, गोपालन और ब्याज इन चारो ही कार्यों को उन्नति पर पहुं-

खाने के लिये वैश्य बद्ध परिकर हुये। सृष्टि का आरंभ था, भूतल पर अन्न छोटे २ होते थे वैश्यों ने संस्कार द्वारा छोटे अन्नों को बड़ा और फीके अन्न को स्वादु बनाया, अन्न जाति को इतनी उन्नति पर पहुंचाया कि जितनी अन्न की जातियां आज भी भारतवर्ष में होती हैं उतनी अन्नजातियां भूतल पर नहीं होतीं। वैश्यों ने संस्कार को हितकारी समझ कर फलों की वृद्धि की। इस जमाने में प्रायः समस्त ही भारतवर्ष भव्य दिव्य सुन्दर फलों से स्थान २ में अपनी अलौकिक छटा दिखलाता था। अन्न और फलों की इतनी अधिकता हुई कि भारतवर्ष में अन्न और फल कभी बेचने में नहीं आये, अन्न का बेचना यहां दूषित समझा जाता था। पद्मपुराण में लिखा है कि "अट्टशूला जनपदाः" जिसका अर्थ यह है कि कलियुग में देश अन्न बेचेंगे। अन्न की वृद्धि का दिग्दर्शन आप कर चुके, अब पशुवृद्धि का चित्र देखिये। वैश्यों ने अपने उत्कट परिश्रम से गोजाति की संख्या को उन्नति पर पहुंचाया-केवल उन्नति ही नहीं की वरन् गोजाति के वंश को अति दुग्धदायक बनाया, गौओं के भोजन के लिये इस प्रकार का प्रबंध किया कि वे दिन में जंगलों में तृण से अपना पेट इतना भर आवें कि रात्रि को ठहरने के स्थान में उनको भोजन की आवश्यकता न हो। गोजाति के साथ २ महिष, बकरी प्रभृति दुग्धधारी जाति को भी उन्नति पर पहुंचाया। उस समय मनुष्यों के खाद्य पदार्थ केवल दुग्ध दधि घृत बन गये थे, नाम मात्र के

लिये अन्न खाया जाता था। रास्ता चलता हुआ यदि कोई मनुष्य आकर पानी मांगता था तो उसको पानी देने में गृहस्थ अपनी अप्रतिष्ठा समझ कर पानी के बदले दूध देता था। इसी घृत दुग्ध की उन्नति से भारतवर्ष के कोने कोने में अश्वमेध से लेकर इष्टि पर्यन्त यज्ञ होती थीं। घृत दुग्ध के खाने से ही भारतवर्ष का जनसमुदाय बली, बुद्धिमान् और संयमी बना, उस समय की घृत दुग्ध की आधिक्यता का हम बुद्धि से भी अनुमान नहीं कर सकते। जब भारतवर्ष विदेशियों के पंजे में पड़ा उस समय भी घृत दुग्ध की अकथनीय आधिक्यता थी। कुतबुद्दीन ऐवक के शासनकाल में भी एक रुपये का ५ मन दूध मिलता था अतएव इसकी वृद्धि की प्रशंसा हम कहां तक करेंगे।

साथ ही साथ वैश्यों ने शूद्रों को सहायता देकर उनके द्वारा गज, वाजि, अश्वतर, रासभ, आदि जातियों की वृद्धि करके पशुओं को बलवान बनाया। भूमंडल में केवल भारतवर्ष ही एक ऐसा देश था कि जिसमें शुभ्र हस्ती मिलते थे, मनुष्यों की बेपरवाही से भूतल के सुफेद रंगवाले हाथी अब संसार से विदा हो गये। यहां के घोड़ों का उत्कर्ष अकथनीय है, भारतवर्ष में किस पराक्रम के घोड़े होते थे इस जिज्ञासा में महाभारत प्रभृति संग्रामों की आख्यायिकायें पढ़ कर जान लेना चाहिये, श्यामकर्ण घोड़ा जिसका एक कान काला होता था और जिसके जरिये से अश्वमेध यज्ञ होता था वह भी भारतवर्ष में

ही मिलता था, इसी प्रकार और और पशु भी विलक्षण और बलवान इसी भारतवर्ष में मिलते थे।

वैश्यों ने व्यापार को अकथनीय उन्नति दी थी। जिस समय वैश्य व्यापार के लिये तैयार हुये उस समय से भारतवर्ष की समृद्धि का उत्थान होने लगा, धीरे धीरे भूतल के जवाहिरात, हीरे, मोती, प्रभृति रत्न समस्त भूतल को छोड़ कर भारतवर्ष की शोभा बढ़ाने के लिये इसी देश में आ विराजे थे। यहां पर कहीं कहीं ऐसे भी जवाहिरात थे कि जो रात्रि को प्रकाश का काम देते थे। यहां के जवाहिरात के उत्कर्ष का ज्ञान उन्हीं को हो सकता है कि जिन लोगों ने प्राचीन राजाओं की राजधानी मथुरा, अयोध्या, द्वारका और लंका के राजमहलों की आख्यायिकायें पढ़ी हैं। जवाहिरात का व्यापार कितना बढ़ा था इसके ऊपर श्रीसत्यनारायण की कथा का एक श्लोक सुनिये—

> आसीत्पुरा रत्नपुरे च साधुः
> कोट्याधिपोऽसौ प्रथितः पृथिव्याम्।
> रत्नैरथापूर्य तरीसहस्रं
> समाययौ स क्रयविक्रियार्थम्॥

पुराने समय में रत्नपुर नगर में एक कोट्याधिप साधु नाम का वैश्य था जो पृथ्वी पर व्यापारियों में प्रबल व्यापारी गिना जाता था, एक समय वह सहस्रों नावों को जवाहिरात से भर कर क्रय विक्रय के लिये घर से रवाना हुआ।

व्यापार से उत्पन्न किये द्रव्य को वैश्यों ने घर में गाड़ कर नहीं रक्खा, दानशील वैश्य जाति ने अपने कमाये हुये रुपये से बड़े बड़े देवमंदिर बनाये, संसार के सुख के लिये तीर्थों के घाट तथा तीर्थों पर धर्मशालायें बनवा कर सदावर्त लगाये, स्थान स्थान में भूखों को अन्न और नंगों को कपड़ा मिलने का प्रबंध किया, बड़े बड़े विस्तृत वनों में छात्रों के लिये अन्न पहुंचा कर भारतवर्ष को विद्यावान् बनने में पूर्ण सहायता दी। राजाओं का यज्ञारंभ इन्हीं वैश्यों के भरोसे पर हुआ करता था। शूद्र जाति को न्यून व्याज पर रुपया दे कर शिल्प का उत्थान इसी वैश्य जाति ने किया है। वैश्य जाति की कमाई से भारतवर्ष स्वर्गीय भूमि से भी अधिक प्रशंसनीय बन गया था। काम पड़ने पर वैश्यों ने राजसिंहासन पर बैठ शासन का काम किया है. महाराज अग्रसेन इसके देदीप्यमान उदाहरण हैं।

वैश्यों की यह दशा उस समय तक रही जब तक कि यह देश विदेशियों से पददलित नहीं हुआ। विदेशियों के आते ही देश में लूट खसोट आरंभ हो गई, बार बार की लूट से वैश्य धनहीन हुये और इनके व्यापार का स्वाहा हो गया। आज गोरक्षा का क्या हाल है यह आपके सामने है, घृत दुग्ध के भाव को आप जान ही गये, भारतवर्ष की कृषि आज अनपढ़ों के हाथ में पड़ कर दिनोंदिन पतित हो रही है, आज व्यापार विदेशियों के हाथ में चला गया, रहा व्याज उसमें

विलक्षणता आ गई। प्रथम तो देश में रुपया ही नहीं और यदि किसी के पास रुपया भी है तो वह रुपया देनेवाला यह चाहता है कि सौ पचास ही रुपया देकर दो ही चार वर्ष में कर्ज लेने वाले का घर जेवर जमीन सभी मेरे हाथ लग जावे, इधर कर्ज लेने वाले भी इनके गुरू हो चले हैं क्योंकि आज इस भारतवर्ष ने झूठ, बेईमानी, दगा, फरेब, मक्कारी पर ही तो कमर बांधी है इसी वजह से ऋणी चाहता है कि व्याज तो क्या यदि मूल भी साहूकार ले जावे तो हम उसको बड़े दादा का पूत समझ लेंगे। जब आसामी बिल्कुल ही देने से इन्कार कर देता है तो फिर लाचार होकर साहूकार को अदालत देखनी पड़ती है, इस पर भी क्या, नतीजा कुछ नहीं, केवल यही नतीजा है कि—

अर्जी दई तकाजा छूटा घर घर पैसा बांटो।
बड़े भाग से डिगरी पाई शहद लगाकर चाटो॥

वैश्यों की अवनति होने से ही भारतवर्ष की अवनति हुई है। जिस जाति का व्यापार नष्ट हो जाता है वह जाति क्षुधा के संकट में पड़ धीरे धीरे नष्ट हो जाया करती है। भारतवर्ष के उत्थान के लिये यह आवश्यकीय है कि हम कृषि वाणिज्य गोरक्षा और कुसीद को हाथ में लेकर उनकी उन्नति करें। हमको यह नहीं मालूम कि खाद्य पदार्थों के अभाव में गोशून्य, कृषिशून्य, व्यापारशून्य भारतवर्ष कैसे उन्नति करेगा। आज लीडर लोग उन्नति के व्याख्यानों में कृषि आदि चारो व्यापारों का कुछ भी जिकर न कर देश के उत्थान का क्रम बतलाते हुये

कहते हैं कि औरतों की बड़ी उम्र में शादी करो, विधवा हो जाय तो विवाह करदो, पर्दा तोड़ दो, औरतों को दोस्तों के साथ मोटरों में बैठ कर हवा खाने दो और व्यभिचारिणी स्त्री को जातिबहिष्कृत मत करो, ऐसा करने पर भारतवर्ष का उत्थान हो जावेगा। हमारी समझ में तो दुराचार से देश रसातल को जाता है—उन्नति नहीं करता, किन्तु इतने पर भी इस विषय को आज हम श्रोताओं के आगे रखते हैं वे अपनी बुद्धि से निर्णय करें कि प्राचीन हिन्दुओं का बतलाया हुआ मार्ग भारतवर्ष को समृद्धिशाली बनावेगा या लीडरों के व्याख्यान में बतलाये हुये व्यभिचार से देश का उत्थान होगा।

शूद्र।

जिस प्रकार वैश्यों ने हिन्दूपद्धति से देश को समृद्धिशाली बनाया, शूद्रों ने भी देश का ऐश्वर्य बढाने के लिये कोई बात उठा नहीं रक्खी। शीशा, लोहा, तांबा, पीतल, कांसा, चांदी, सोना, मिट्टी, लकड़ी और वृक्षों की छाल तथा फसल के पदार्थों से शिल्प द्वारा वे विलक्षण वस्तुयें बना कर संसार के आगे रक्खीं कि जिन वस्तुओं को देख कर संसार दंग रह गया। भूमंडल में सब से प्रथम भारतवर्ष में ही कुठार, तलवार, बर्छी, भाला, मुद्गर, परिघ, शूल, कटार, बंदूक, तीर, मुशुण्डी, शतघ्नी प्रभृति अनेकानेक युद्ध के विलक्षण शस्त्र बने, इन शस्त्रों के बनाने में शिल्पियों ने वह बुद्धि लड़ाई कि जो आज तक संसार की बुद्धि से बाहर है। जिन्होंने महाभारत

पढ़ा है वे जानते हैं कि महाभारत के बाणों में ऐसे बाणों का भी प्रयोग हुआ है जिन बाणों में से सैकड़ों और सहस्रों बाण निकल कर शत्रु की सेना पर टूट पड़ते थे। महाभारत के किसी किसी बाण में यह भी शक्ति थी कि दौड़ कर शत्रु की छाती में लगे, यदि शत्रु पीठ फेर दे तो फिर यह बाण शत्रु के स्पर्श भी नहीं करे। महाभारत की लड़ाई में ऐसे भी बाण थे कि एक बाण के मारने से सेना में अग्नि लग जावे, इसके विपरीत दूसरे ऐसे बाणों का भी महाभारत में प्रयोग हुआ है कि बाण के छोड़ते ही घोर प्रलयकारक वृष्टि होने लगे, दूसरा बाण छोड़ने पर बादल फट कर आकाश स्वच्छ हो जावे, एक बाण के प्रभाव से सेना में प्रलयकारक वायु चल बैठता था तो दूसरे बाण से वायु की गति रुक जाती थी। युद्ध के शस्त्रों में इतनी गौरवता भरने वाले भारतवर्ष के शूद्र ही तो थे। बाण आकाश में छूट कर अक्षरों को लिख दे, पूज्य के समीप पहुंच कर शरीर में तो लगे नहीं प्रणाम करने की सूचना दे दे। इस विलक्षणता को देख कर आज भी संसार दंग है, इस विलक्षणता की खोज कर रहा है किन्तु अभी तक विलक्षणता का ज्ञान नहीं हुआ। पुराणों में ऐसे बाणों का भी जिक्र है कि जिस एक बाण के छोड़ने से समुद्र सूख जाता था, इस उत्कर्षता को हम कहां तक गिनावें, इसे बीच में ही छोड़ते हुये अन्यान्य बातों का परिचय देते हैं।

भारतवर्ष के शिल्पियों ने ऐसे भी रथों का निर्माण किया

था कि जिनके पहिये पृथ्वी पर आते ही नहीं थे, ये रथ आकाश में ही चलते थे। महाराज पौंड्रक को एक कारीगर ने एक लकड़ी का गरुड़ बना कर दिया था जिस गरुड़ पर सवार हो कर महाराज पौंड्रक आकाशमार्ग से उसी ही गति से जाते थे कि जिस गति से विष्णु का गरुड़ जाता था। भारतवर्ष के वर्तन, वस्त्र, भवननिर्माण, जो जगत्प्रसिद्ध हो गया था, इन्हीं शूद्रों के हाथ से बना था, इस विषय में जिसको विशेष देखना हो वे इतिहास देख लें, हम तो केवल इतना कहे देते हैं कि उस समय के भारतीय शिल्प के आगे आज भी अन्य देश की शिल्पोन्नति लज्जित हो रही है, आगे की ईश्वर जाने।

विदेशियों के आक्रमण के समय तक शूद्र जाति अपनी विलक्षणता को रक्खे रही अब आपत्ति आजाने से तथा आर्थिक सहायता न मिलने से विदेशीय माल सस्ता और चमकीला भारतवर्ष में विकने से शूद्रों का अधःपतन हुआ। भारत का उत्थान तब ही होगा जब कि शिल्प का उत्थान होगा, किन्तु आजकल उन्नति पर व्याख्यान देने वाले शिल्प का जिक्र तक नहीं करते, इनका उपदेश होता है कि शूद्रों को अंग्रेजी पढ़ाओ और इनके विवाहादिक संबंध द्विजातियों के साथ जोड़ दो, इनके हाथ का भोजन खाओ, इनसे घृणा मत करो, इनको मंदिरों में जाने दो, बरात जब आती हो तो दूल्हा के बाप को रुपये पैसे मत फैंकने दो, बरातियों के आगे इतना भोजन मत परोसो जो एक २ पत्तल पर आध आध सेर पड़ा रहे। पैसे

रुपये से शूद्रों की छोटी २ जातियों को सहायता मिलती थी उस सहायता को बन्द करने के लिये बखेर (पैसे रुपये फैंकना) बन्द, भंगी को पत्तलों का भोजन मिलता था वह महीनों खुद खाता था और अपने रिश्तेदारों को खिलाता था इस सहायता को देख कर लीडर विना दियासलाई के जल मरे, उसको भी बन्द कर दिया। सुधारक लोग शूद्रों को अपना पूर्ण शत्रु समझते है। कोरी का बनाया कपड़ा, भंगी का बनाया सूप और चमार का बनाया देशी जूता अब सुधारकों के घर में नहीं जाने पाता, इनकी आभ्यन्तर मन्शा यही है कि शूद्रों को मार कर देश का उत्थान कर दो। हमारा यह दावा है कि शूद्रों के उत्थान से ही शिल्प का उत्थान होगा और शिल्प के उत्थान से भारतवर्ष का उत्थान होगा। श्रोता लोग अपनी बुद्धि से विचार करें कि कौन सत्यता पर हैं और कौन तुमको धोखा दे रहा है।

आजकल के लीडर भारतवर्ष का उत्थान नही करते किन्तु जैसे कोई कुत्ते को रोटी दिखला कर डंडा मारे इसी प्रकार तरक्की के बहाने से हिन्दू जाति को मिटाना चाहते है।

जो अपने स्वरूप को खो कर भारतवर्ष को योरूपीय सांचे में ढाल उन्नति का मिथ्या सब्जबाग दिखलाते हैं हमारी समझ में उन्होंने तो अपनी बुद्धि को घूर से ठुकरा ही दिया है किन्तु हम उन पागलों को क्या कहैं जो "अंधेननोयमाना यथान्धाः" के चक्कर में पड़ के इनको बतलाई हुई बेहूदा और पागलपन की

बातों से भारतवर्ष की उन्नति मान बैठते हैं। देश का उत्थान करना कोई साधारण बात नहीं है इसके करने के लिये प्रत्येक मनुष्य को सूक्ष्म बुद्धि से विचार करना होगा, जो ऐसा न करेंगे वे धोखे में पड़ कर देश का अनिष्ट कर बैठेंगे। धोखे में बड़े बड़े अनिष्ट हो जाते हैं, इसके ऊपर एक दृष्टान्त देकर हम अपने वक्तव्य को समाप्त करेंगे।

एक शहर में एक होशियार धोबी रहता था। यह कपड़े बड़े उत्तम धोता था इस कारण शहर के अधिक कपड़े धुलने के लिये इसके यहां आने लगे। जितना बोझ यह ले जा सकता था जब उससे अधिक कपड़े आने लगे तब इसने एक जानवर खरीद लिया यह उसके ऊपर कपड़े लाद कर धो लाता था। जब यह कपड़े पिछाड़ने के समय आछी आछी करता था तब वह जानवर भी बोलने लगता था। धोबी ने इस घटना को देख कर सोचा कि यह क्यों बोलता है, अंत में इसने यह स्थिर किया कि यह गाता है, गाने की वजह से इस धोबी ने उस जानवर का नाम 'गंधर्वसेन' रख दिया। कुछ समय बीत जाने के बाद धोबी एक दिन बाजार में आया। यह किसी दूकान पर सौदा ले रहा था, चौधरी ने धोबी से कहा कि क्यों रे धोबी! पहिले तो तू तीसरे दिन कपड़े दे जाया करता था और अबकी बार आज १८ रोज हो गये तू अभी तक कपड़े क्यों नहीं लाया? इतना कहने पर धोबी रो उठा और रोता रोता बोला कि 'गंधर्वसेन' मर गये। चौधरी ने समझा कि जैसे

'तानसेन' बड़े गुणी थे इसी प्रकार 'गंधर्वसेन' भी कोई बड़े गुणी महात्मा होंगे यह समझकर चौधरी ने पूछा कि 'महात्मा गंधर्वसेन' ? धोवी 'महात्मा' को न समझा अतएव इसने कह दिया कि 'जी हां'। चौधरी बोले कि बड़ा गजब हो गया, संसार का एक भारी महात्मा चल बसा। चौधरी ने दुकान पर आकर नाई को बुलाया और 'महात्मा गंधर्वसेन' के रंज में मुंडन करवा दिया। इसको देख कर बाजार में बड़ी खलबली फैली कि चौधरी के यहां आज कौन मर गया, १० भले आदमी इकट्ठे हो कर चौधरी की दुकान पर गये, जाकर पूछा कि यह क्या बात है। इसको सुनते ही चौधरी को बड़ा गुस्सा आया बोल उठा कि आज संसार का एक सब से बड़ा महात्मा संसार को छोड़ गया और तुमसे इतना भी न हुआ कि उसका रंज ही मना लें। चौधरी की इस डाट को सुन कर लोगों ने मुंडन का लग्गा लगा दिया, एक दो घंटे के अंदर बाजार सफाचट्ट हो गया। सायंकाल उस राजधानी के दीवान हाथी पर बैठ कर हवा खाने निकले, बाजार के इस रूप को देख कर अचंभे में पड़ गये। चौधरी से पूछा कि यह क्या बात है ? चौधरी ने बतलाया कि दीवान साहब आज एक संसार का सर्वोपरि पूज्य महात्मा चल बसा, सारे संसार ने उसका रंज मनाया है। दीवान बोले कि तो क्या हमको भी रंज मनाना चाहिये ? चौधरी ने कहा कि 'जी हुजूर'। घर पहुंच कर दीवान साहब भी नाई को बुलाकर सफाचट्ट बन गये। कार्यवश दीवान साहब

को राजा के पास जाना पड़ा। दीवान को देख कर राजा साहब बोले कि यह क्या? दीवान ने कहा कि हुजूर आज एक संसार के प्रथम श्रेणी के विद्वान् महात्मा का स्वर्गवास हो गया, सारे संसार ने उसका शोक मनाया है। राजा बोले तो क्या हमको भी मनाना चाहिये? दीवान बोले कि जी हां। नाई को बुला कर राजा साहब भी बशरह शद्र बन गये। रात्रि को जब राजा महल में भोजन करने बैठ गये तब रानी ने कहा कि आज तो हमारा और तुम्हारा मुंह एकसा मालूम होता है क्या बात है? राजा ने कहा कि आज संसार के उच्चश्रेणी के महात्मा का वैकुंठवास हुआ है, समस्त संसार ने उसका रंज मनाया है, हमको भी मनाना पड़ा। रानी बोली कि तुम बड़े बेपरवाह हो, हमको तनक भी खबर न करी नहीं तो स्त्रियों के व्यवहार के अनुकूल हम भी रंज मनातीं, अस्तु आपने खबर न की तो न सही, परन्तु पूछना यह है कि क्या यह महात्मा तुम्हारे बाप लगते थे जो तुमने मूछ दाढ़ी मुड़वा डाली, यह थे कौन? राजा बोले हमको यह तो मालूम नहीं कि ये कौन थे। रानी बोली यह मजे की रही, रिश्ता मालूम ही नहीं और मूछ दाढ़ी सफाचट्ट। राजा भोजन करके बाहर आये, चोबदार के जरिये से दीवान को बुलाया, दीवान से पूछा कि यह महात्मा हमारे कौन लगते थे? दीवान बोला कि हुजूर मुझे यह भी मालूम नहीं कि यह थे कौन, इनका सब हाल चौधरी साहब जानते हैं। राजा ने चोबदार से चौधरी को बुलवाया और पूछा कि चौधरी

साहब यह महात्मा गंधर्वसेन कौन थे ? चौधरी बोला कि सरकार मुझे इनका हाल मालूम नहीं, इनका हाल तो वृद्ध धोबी जानता है। वृद्ध धोबी को बुला कर पूछा कि क्यों 'महात्मा गंधर्वसेन' कौन थे ? जो इतना कहा तो धोबी रोने लगा। दीवान ने कहा अरे रोता है कि बतलाता है। इतना सुन कर धोबी रोता रोता बोल उठा कि हुजूर उनके मरने पर कपड़े धोते २ मेरी कमर छिल गई। दीवान साहब घबराये और घबरा कर बोले कि राजा साहब पूछते हैं यह कौन था, तू बतलाता क्यों नहीं ? धोबी बोला हुजूर मेरा 'गधा' था। सुनते ही चुप रह गये, सन्नाटा खिच गया। दीवान बोले ग़ज़ब हो गया, कुछ भी विचार न किया, गधे के मरने पर मूछें मुड़वा दीं। पछताने लगे, फिर क्या होता था।

ऐसा न हो तुम्हारी भी यही दशा हो। लीडरों के कहने पर हिन्दूजाति और हिन्दूधर्म का नाश कर बैठो, और फिर भी स्वराज्य न मिले। धार्मिक हिन्दुओ ! तुम लीडरों से साफ साफ कह दो कि हम हिन्दूजाति और हिन्दूधर्म को मार कर स्वराज्य लेना तो दरकिनार जीना भी नहीं चाहते। यह हिन्दुओं की कमजोरी है जो इनको लीडर मानते हैं और लखों रुपये की सहायता देते हैं। अब भूल को स्वीकार करो, आगे के लिये कान पकड़ो, फिर कभी न इन्हें लीडर कहना और न सहायता देना। तुम अपने दिल की कमजोरी को मिटा दो, इनके व्याख्यान में हरगिज मत जाओ, इनसे साफ साफ कहो

कि तुम हिन्दू और हिन्दुधर्म के लिये विषधर काले सांप हो, तुम इन्सान नहीं हो खूंख्वार जानवर हो, इस शहर से भाग जाओ नहीं तो बलात्कार हम तुम्हारे व्याख्यान को बंद कर देंगे और अधिक चीं चपट करोगे तो हम फुलझड़ियां करने को भी तैयार हैं। लीडरों के ऐसे अपमान से ही हिन्दूधर्म और हिन्दू-जाति जीवित रह सकती है। हरिः ॐ तत्सत्

कालूराम शास्त्री।

* श्रीगणेशाय नमः *

सनातनधर्म-गौरव ।

ब्रह्माण्डच्छत्रदण्डः शतधृतिभवना-
म्भोरुहो नालदण्डः ।
क्षोणीनौकूपदण्डः क्षरदमरसरि-
त्पट्टिकाकेतुदण्डः ॥
ज्योतिश्चक्रोऽक्षदण्डस्त्रिभुवनविजय-
स्तम्भदण्डोऽङ्घ्रिदण्डः ।
श्रेयस्त्रैविक्रमस्ते वितरतु विबुध-
द्वेषिणां कालदण्डः ॥ १

धर्मप्राण जे नर बनैं, ते नर ईश्वरपूत ।
अधम कुचाली पातकी, ते नर पूत न मूत ॥ २
जड़ चेतन जे वस्तुयें, तिन कर धर्म अधार ।
जो दृढ़ राखै धर्म को, तेहि राखै करतार ॥ ३

सज्जनो ! मैं आप से पूछता हूँ कि आज संसार के मनुष्य क्या चाहते हैं ? सभी मनुष्य यह चाहते हैं कि हमको भोजन बढ़िया से बढ़िया मिले, शरीर ढाकने के वस्त्र भी वे मिलें जो खूबसूरती में संसार के वस्त्रों को नीचा दिखा दें,

हमको धर्मपत्नी ऐसी मिले जो अत्यन्त रूपवती वीणावाणी और हमारी आज्ञा में बंधी हुई हो, हमको वह द्रव्य मिले कि हम संसार के वढ़िया रईस कहलाने लगें, हमें सवारी के वाहन ऐसे मिलें कि जो चक्रवर्ती राजा के यहां भी न निकलें, हम और कहां तक कहें संसार के मनुष्य यह चाहते हैं कि हमारा टोपू भी वढ़िया हो। आपको सब वस्तुयें तो वढ़िया चाहियें किन्तु क्या धर्म वढ़िया न चाहिये? मुझे नहीं मालूम आपको हो क्या गया जो समस्त वस्तुयें तो वढ़िया चाहते हैं किन्तु धर्म वढ़िया नहीं चाहते।

यदि आप यह उत्तर दें कि नहीं नहीं हमको धर्म भी वढ़िया चाहिये तो फिर मैं आपसे पूछूंगा कि इसके विषय में आपने कितना परिश्रम उठाया है और कहां तक ज्ञान प्राप्त किया तथा कौन धर्म वढ़िया निकला? क्या आप यह तो नहीं समझ बैठे कि इस ज़माने में धर्म को कौन पूछता है? आपकी इच्छा नहीं तो न पूछिये किन्तु वर्तमान समय में भी धर्मविज्ञान के जिज्ञासुओं की कमी नहीं है। आज अनेक पुरुष यह जानना चाहते हैं कि संसार के प्रचलित धर्मों में वढ़िया, सत्य तथा ईश्वरप्रणीत धर्म कौन है? यद्यपि ईसाई मुसलमान प्रभृति समस्त मनुष्य अपने अपने धर्म को ईश्वरप्रणीत वतलाते हैं तो भी इस वात का विवेचन किया जावेगा कि वास्तव में सच्चा वढ़िया ईश्वरप्रणीत धर्म कौन है। इसके विवेचन में कुछ युक्तियां और कुछ दार्शनिक विचार रक्खेंगे। आज के भाषण

से आपको यह पता लग जावेगा कि ईश्वरप्रणीत धर्म कौन है। अब मैं अपने व्याख्यान का आरंभ करता हूँ, आप ध्यान पूर्वक सुनने की कृपा करें।

लीडरी-धर्म।

(१) इस समय जितने धर्म संसार में दृष्टिगोचर हो रहे हैं, उनमें कोई एक भी ऐसा धर्म नहीं कि जिसका कर्ता, चलाने वाला या उस धर्म का लीडर (नेता) न हो। जिस महात्मा ने जो धर्म चलाया है, उसका नाम उस धर्म के साथ आज तक स्मरण किया जाता है। आज ही नहीं किन्तु जब तक संसार में इनका धर्म रहेगा तब तक चलाने वाले का नाम और उसकी कीर्ति संसार में गूजती रहेगी, किसी मनुष्य के दूर करने से किसी महात्मा या धर्मनेता का नाम धर्म से अलग हो नहीं सकता किन्तु धर्म का नाम लेते ही उसके निर्माता का नाम चित्त में घूमने लगता है। इसी प्रकार धर्मनेता का नाम सुनते ही उसके चलाये धर्म का स्मरण हो उठता है। पृथ्वी पर ऐसा एक भी धर्म देखने में नहीं आता कि जिसका कोई निर्माता न हो।

इसको आप इस प्रकार समझें कि जो धर्म महात्मा बुद्ध ने चलाया उसका नाम बौद्ध धर्म, और हज़रत ईसा से चले धर्म का नाम ईसाई धर्म, इसी प्रकार हजरत मोहम्मद से चले धर्म का नाम महमडन धर्म, आदि आदि समस्त धर्मों को समझ लीजिये। इसी नियम से स्वामी दयानन्द के चलाये धर्म,

का नाम दयानन्दीय धर्म है। मतलब यह है कि ऐसा एक भी धर्म नहीं जिसका कोई नेता न हो।

अब यह निश्चय करना है कि सनातनधर्म किसका चलाया है। क्यों महाशय! क्या यह धर्म वेदव्यास का चलाया हुआ है? नहीं नहीं, वेदव्यासजी के पिता पराशरजी सनातन-धर्मी थे, अच्छा तो महाराज दशरथ का चलाया होगा? महाराज दशरथ के पिता अज और उनके पिता रघु दोनों ही सनातनधर्म के रक्षक थे। अच्छा धर्म निकला जो न गौतम का चलाया और न वशिष्ठ का, न भृगु का, न नारद का, तो रावण ने चलाया होगा? रावण ने चलाया नहीं किन्तु रावण ने सना-तनधर्मियों को बड़े असह्य कष्ट पहुंचाये। कहीं हिरण्याक्ष ने तो इस धर्म को नहीं चला दिया? हिरण्याक्ष ने चलाया नहीं किन्तु इसने सनातनधर्म को मिटाना चाहा, अतः यह भी इसका चलाने वाला नहीं। सिद्ध हो गया कि सनातनधर्म का चलाने वाला कोई मनुष्य नहीं है।

जिसका कोई भी मालिक न हो वह वस्तु किसकी होती है, इस पर कुछ विचार कीजिये। हमारे आगे जो यह मेज है यह किसकी है? सभा का सेक्रेटरी बोल उठेगा कि हमारी, इस मेज पर जो घड़ी रक्खी है वह किसकी? सभापति सहज में कह रहे हैं कि यह मेरी है, यह जो फर्श बिछा हुआ है यह किसका? देखिये वह बाबू भोलानाथ बोले कि हमारा, मेज के ऊपर जो यह दयानन्दतिमिरभास्कर है यह किसका? पं०

वासुदेवजी कहते हैं कि हमारा। जितनी वस्तुयें यहां रक्खी हैं कोई न कोई स्वामी प्रत्येक वस्तु का है। कल्पना करो कि इस सामने के मैदान में जमीन के अन्दर से दो लाख रुपये निकल आवें तो वे किसके ? अब सब चुप हैं, इनका कोई मालिक नहीं ? जिनका कोई मालिक नहीं फिर उन रुपयों को कौन लेगा ? पुलिस कह उठावेगी कि सरकार लेगी। सिद्ध हो गया कि जिसका कोई मालिक नहीं उसकी मालिक सरकार है। इसी भांति और और धर्मों के मालिक उनके नेता हैं, किन्तु सनातनधर्म के स्वामी सब नेताओं के सरकार ईश्वर हैं इसी कारण से इसका नाम 'सनातन' है।

ईश्वर अनादि अंनत है, न तो ईश्वर की पैदा होने की तारीख है और न मरने की, ईश्वर सर्वदा रहता है इसी से ईश्वर का नाम 'सनातन' है, अर्थात् हमेशा रहने वाला। ईश्वर अनादि है, ईश्वर का ज्ञान वेद भी अनादि है, ईश्वर का कभी अंत नहीं होता इसी कारण उसके ज्ञान वेद का भी अंत नहीं होता अतएव वेद भी सनातन है। मनुजी ने लिख दिया है कि–

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥

उस ईश्वर ने अग्नि, वायु, सूर्य इन तीन तत्वों से ऋग् यजुः साम नाम वाले सनातन वेद को दुहा।

ईश्वर सनातन है उसका ज्ञान वेद सनातन है अतएव

सनातन वेद से प्रतिपादित धर्म भी सनातन है। इसी कारण राजा युधिष्ठिर से देवर्षि नारद कहते हैं कि—

वक्ष्ये सनातनं धर्मं नारायणमुखाच्छ्रुतम् ॥

मैं उस सनातनधर्म को कहता हूं जो नर नारायण के मुख से सुना है।

इस विवेचन से यह सिद्ध हो गया कि भूतल पर जितने धर्म हैं वे महात्माओं के चलाये हैं, किन्तु सनातनधर्म ईश्वरीय धर्म है, यही इसका गौरव है। जो लोग ईश्वरीय धर्म को छोड़ कर मनुष्यों के चलाये हुये धर्माडम्बर जाल में फंसते हैं वास्तव में वे अपने आत्मा का हनन कर रहे हैं। हम कह आये हैं कि सनातनधर्म ईश्वरीयधर्म है इस कारण इसकी रक्षा का भार भी ईश्वर के ही ऊपर है। जब अरब में धर्म पर आपत्ति आई तब ईश्वर के दोस्त हज़रत मोहम्मद ने आकर धर्म की रक्षा की, और जब योरुप में धर्म पर आपत्ति आई तब ईश्वर के पुत्र मसीह ने आकर धर्म को बचाया, किन्तु जब सनातनधर्म पर आपत्ति आती है तब ईश्वर किसी को भी न भेज कर चार भुजा धारण करके खुद ही कूद पड़ा करता है। इतिहास इसका साक्षी है कि धर्म की रक्षा के लिये निराकार ईश्वर कभी खम्भे से निकले और कभी दशरथ के घर प्रगट हुये, उन्होंने कभी प्रकट होकर हाथ में कुठार उठा लिया और कभी प्रेम में निमग्न हुई गोपियों के यहां नाच नाचना आरंभ कर दिया। वे धर्म की रक्षा के लिये एक दो बार ही संसार में नहीं आये,

उनका तो खुला आर्डर है कि—

यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

हे अर्जुन! जिस समय अधर्म की वृद्धि होकर धर्म का नाश होता है उस समय धर्म की रक्षा के लिये मुझे शरीर धारण करना पड़ता है।

जिस धर्म के ऊपर आपत्ति आने पर जगदीश्वर निराकार का सिंहासन डोल उठे और ईश्वर को मजबूरन निराकार से साकार बनना पड़े, कौन कहता है कि वह धर्म ईश्वर का चलाया नहीं।

जन्म-तिथि।

(२) हम यह जानना चाहते है कि मोहमडन धर्म संसार में कब से आया? इसके उत्तर में इतिहास बोलता है कि १३ सौ वर्ष से, अब हमको यह पूछना है कि ईसाई धर्म कब से? इतिहास बतला रहा है कि १९ सौ वर्ष से, अच्छा बौद्ध मजहब कब से? इतिहास ने बतला दिया कि २२ सौ वर्ष से, क्यों साहब पारसी धर्म कब से? इतिहास के पन्ने कह उठे कि ५ हजार वर्ष से, ठीक—दयानन्दीय धर्म कब से? इतिहास कह उठा कि ५० वर्ष से, अरे यह तो बिल्कुल अबोध बच्चा है, अभी इसके दांत निकलेंगे-दांत निकलने के वक्त दस्त जारी होंगे, फिर नस्तर लगा कर इसका गर्म गर्म खून निकाला जायगा,

फिर वेचक निकलेगा, यदि इतनी आपत्तियों से बच गया और बालिग होगया तो इससे हो दो बातें हम जरूर पायेंगे, अभी तो यह ज्ञानशून्य बच्चा है इसको धर्मों में गिनना ही उचित नहीं। अब हम यह जानना चाहते हैं कि सनातनधर्म कब से? अब यहां तवारीख चुप-कोई उत्तर नहीं देती-उत्तर देते हुये इतिहास की आंखें फटती हैं। इतिहास जानता है कि संसार का पहिला मनुष्य मनु हुआ है किन्तु यह मनु भी सनातनधर्मी था। मनु से पहिले इतिहास नहीं था-सनातनधर्म था-अब इतिहास क्या बतलावे। सिद्ध हो गया कि समस्त धर्मों के आरंभ की तिथि इतिहास बतला देता है किन्तु सनातनधर्म का आरंभ बतलाने हुये इतिहास चकाचौंध में पड़ जाता है।

बात यह है कि जब सूर्य निकला रहता है तब घरों में अन्य रोशनियों की आवश्यकता नहीं रहती, सूर्यास्त हो जाने के पश्चात् अपने सुख के लिये संसार विविध प्रकार की रोशनियों को जला कर घर में उन्हीं से प्रकाश का काम लेता है। कोई ओल्ड फ़ैशन का मिट्टी का चिराग जलाता है तो कोई दिवालगीरी, कोई लालटेन, कोई गैस का हंडा। सूर्य के अभाव में ये सब काम देते हैं किन्तु जब फिर सूर्य निकल आता है तो ये टिमटिमाती हुई रोशनियां भद्दी और बेकार हो जाती हैं। इसी प्रकार महाभारत के ज़माने में जब सनातनधर्म रूपी सूर्य अस्त हो गया तो लोगों ने कुछ कुछ ज्ञान की प्राप्ति के लिये सहस्रों मजहब चला लिये किन्तु जब सनातनधर्म रूपी सूर्य

का उदय हो जावेगा तब ये सब मजहब बेकार हो जावेंगे, संसार इनको गुल करके सनातनधर्म से प्रकाशित होगा।

संसार-रक्षा।

(३) धर्मसमूह का विवेचन करने से यह पता चलता है कि जितने धर्म आज संसार में दृष्टिगोचर होते हैं ये समस्त ५ हजार वर्ष से इधर के ही चले हुये हैं क्यों कि सब धर्मों का बड़ा भाई पारसी धर्म है। इसको चले ५ हजार वर्ष हुये और योरूपीय साइंस तथा भारतीय साहित्य कह रहा है कि सृष्टि लक्षों नहीं, किन्तु किरोड़ों वर्ष से बनी है।

यदि हम यह मान लें कि सृष्टि के आरंभ से करोड़ों वर्ष तक एक भी धर्म नहीं रहा और "जरतश्त" के जमाने से धर्मों का संसार में फैलना आरंभ हुआ ऐसा मानने पर एक यह शंका खड़ी हो जावेगी कि धर्म के बिना करोड़ों वर्ष तक संसार-रक्षा कैसे हुई। संसार की रक्षा सर्वदा धर्म से ही होती है। उस धर्ममर्यादा को संसार में चाहे कोई सम्राट् कायम रक्खे या प्रजा स्वतः कायम रख ले—धर्ममर्यादा बिना संसार की रक्षा हो नहीं सकती, रक्षा नहीं हो सकती इतना ही नहीं, किन्तु धर्म के बिना संसार परस्पर के कलह, वैमनस्य, द्वेष आदि दुर्गुणों से क्षय हो जाता है। कोई भी विद्वान् इस बात को नहीं मान सकता कि धर्म के बिना मनुष्यों का अस्तित्व रह सके। इस विषय में सनातनधर्म का कथन है कि—

न वै राज्यं न राजासीन्न दण्डो न च दाण्डिकः ।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम् ॥

सृष्टि के आरंभ में न कोई राज्य था और न कोई राजा था, न कोई कानून था न कोई मेजिस्ट्रेट था, धर्म का अवलम्बन करके प्रजा परस्पर में धार्मिक वर्ताव से अपने आप अपनी रक्षा करती थी।

सिद्ध हो गया कि विना धर्म के संसार का अस्तित्व नहीं रह सकता फिर कोई किस मुख से कह सकता है कि करोड़ों वर्ष तक संसार में धर्म हो नहीं रहा। विवश होकर मानना पड़ेगा कि उस समय केवल ईश्वरीय प्राचीन यही सनातन धर्म था आज आप जिसके महत्व को सुन रहे है। इसके समय में नास्तिक भी थे और एक यवन जाति भी थी। सनातनधर्म उस समय प्रौढ़ विद्वान् था और शासन की वागडोर इसी के हाथ में थी। इतना होने पर भी यवन नास्तिकों पर इसने किसी प्रकार का दवाव नहीं डाला वरन् इन दोनों जातियों की रक्षा की, यही इसका गौरव है।

धर्म-प्राप्ति।

(४) धर्मनेताओं ने जो अपने अपने धर्म की पुस्तकप्राप्ति के मार्ग वतलाये हैं वे मार्ग निर्भ्रान्त मार्ग नहीं हैं, इस प्रकार के मार्गों में विचारशील मनुष्यों को सर्वदा संदेह रहता है। यह वात दूसरी है कि हम उस धर्म के मानने वाले हैं और उसके

बतलाये हुये ज्ञान प्राप्ति मार्ग को श्रद्धा और विश्वास से या अंधपरंपरा से सत्य मानते रहें किन्तु जिस समय हम पक्षपात को छोड़ कर सत्य निर्णय पर कमर बांधेंगे उस समय हमको तत्काल यह ज्ञान हो जावेगा कि हमारे धर्म के पुस्तक की प्राप्ति का जो मार्ग है वह संदेहोत्पादक है। इसको इस प्रकार समझिये कि आजकल जितने धर्म संसार में हैं वे अपने धर्म पुस्तक की प्राप्ति के दो मार्ग बतलाते हैं—एक इलहाम और दूसरा पैगाम। इन दो को छोड़ कर ईश्वर के ज्ञान की प्राप्ति का भिन्न कोई मार्ग ही नहीं माना। ईश्वर के ज्ञान की प्राप्ति के ये जो दो साधन हैं दोनों ही संदिग्ध हैं। समझिये, इलहाम-किसी मनुष्य में ईश्वरीय शक्ति का आवेश हो और उसके जरिये से जो ज्ञान की प्राप्ति है उसको इलहाम कहते हैं, इस प्रकार के लब्धज्ञान में तीन संदेह रहते हैं—(१) वह मनुष्य पागल तो नहीं होगया, (२) कोई चालाकी तो नहीं करता, (३) ईश्वरशक्ति के स्थान में उसको भूत तो नहीं चिपट बैठा। इन तीन प्रकार के उपलब्ध संदेह को यथार्थ रूप से दूर कर देने के लिये कोई भी कसौटी मनुष्यों के पास नहीं है अतएव इस रीति से उपलब्ध ज्ञान कभी भी निर्भ्रान्त नहीं कहा जा सकता। अब पैगाम को सुनिये। ईश्वर अपने ज्ञान को लिख कर किसी दूत के द्वारा अपने किसी भक्त के पास भेज दे, जैसे खुदा ने क़ुरान शरीफ की आयतें लिखीं और इबलीस के द्वारा हज़रत मोहम्मद के पास भेज दीं, इस प्रकार से उपलब्ध ज्ञान

को पैगाम कहते हैं। इसमें बड़े २ संदेह होते हैं-(१) क्या ईश्वर शरीरी है उसके हाथ हैं जो ज्ञान उसने अपने आप लिखा, (२) कोई बनावटी ईश्वर तो नहीं बन बैठा, (३) जो दूत ज्ञान को लाया है कहीं इसी ने ईश्वरीय ज्ञान को अपने घर में तो नहीं गढ़ा, (४) जो भक्त बना है वही तो बनावटी बातें नहीं बनाता, इत्यादि अनेक संदेह खड़े हो जाते हैं, जिनका दूरीकरण हो ही नहीं सकता। जब ज्ञानप्राप्ति का मार्ग ही अनेक संदेहों को उत्पन्न कर देता है तब किसी विचारशील मनुष्य का मन यह कैसे मान ले कि यह धर्म सर्वथा सत्य है।

सनातनधर्म में जो ज्ञानप्राप्ति का मार्ग है उसमें किसी प्रकार की भी भ्रान्ति नहीं हो सकती। सनातनधर्म में ईश्वर ने ब्रह्मा शरीर धारण किया फिर अपनी ईश्वरीय शक्ति का परिचय दिया। जब संसार ने उनको ईश्वर जान लिया तब ब्रह्मा ने संसार को वैदिक ज्ञान दिया। यह ज्ञान सर्वथा निर्भ्रान्त ज्ञान है, इसमें कोई सन्देह उत्पन्न हो ही नहीं सकता। कई एक सज्जन यह कहेंगे कि निराकार ईश्वर साकार हो नहीं हो सकता। ऐसा कहने वालों को हम सर्वथा ज्ञानरहित बच्चे मानते हैं। यदि निराकार ईश्वर साकार नहीं होता तो फिर निराकार ईश्वर से साकार संसार कैसे बनेगा, इसको हम सूक्ष्म रूप से 'अभिन्न निमित्तोपादान कारण' में दिखलावेंगे, जिनको विशेष देखना हो वे 'ईश्वर स्वरूप' व्याख्यान को देखें।

शत्रु-सेवक ।

(५) जो मनुष्य इस धर्म के ग्रंथों को शत्रुता की दृष्टि से भी देखता है वह भी इसका सच्चा हितकारी शिष्य हो जाता है, सच्ची शान्ति पाता है, फिर स्वप्न में भी किसी दूसरे धर्म का नाम नहीं लेता और न किसी धर्म का खण्डन ही करता है। मैं उदाहरण के लिये आप को दिखलाता हूँ कि 'दाराशिकोह' हिन्दुस्तान में आया। जब वह यहां का बादशाह हुआ तब उसकी यह इच्छा हुई कि हिन्दूजाति के धर्म की पुस्तकों का तर्जुमा फारसी में हो और फिर उस तर्जुमे को देख कर लियाकत के साथ मैं उसका खंडन करूं, ऐसा करने से अहले इसलाम धर्म का प्रचार होगा। लिहाज़ा उसने बड़े बड़े पंडित और मौलवियों को इकट्ठा किया और बहुत सा रुपया व्यय करके उपनिषदों का तर्जुमा फारसी जबान में करवाया तथा खंडन करने के लिये उनको देखने लगा। देखते देखते बादशाह को सच्ची शान्ति मिली और यह ज्ञान हुआ कि दुनियां में यदि कोई सच्चा धर्म है, मनुष्य का कल्याणकारक धर्म है, तो वह हिन्दू धर्म ही है। यह समझ कर उपनिषदों के आधार पर उसने अपना एक नया धर्म चलाया जिसके कुल मंतव्य उपनिषदों से ताल्लुक रखते हैं, उस धर्म वालों को सूफी कहते हैं। यह फिरका हमारे मुसलमान भाइयों में पाया जाता है। क्या यह सनातनधर्म का गौरव नहीं? जिस समय विद्वान् अंग्रेजों ने हिन्दुओं के धर्मपुस्तक उपनिषदों को देखा, देखते ही

आनंदित हो उठे, उपनिषदों की सचाई पर लट्टू हो गये और उन्हों के आधार पर थियासोफिस्ट नामक धर्म जारी किया। शत्रु को सेवक बनाना यह महत्व इसी सनातनधर्म में पाया जाता है। क्या यह कम गौरव है ?

विविधोपाय।

(६) भिन्न भिन्न पापों से संसारसागर में हाहाकार करते हुये जीवों के उद्धार के लिये और और धर्मों के पास एक एक कायदा है किन्तु सनातनधर्म के पास अनेक प्रकार हैं यह भी एक सनातनधर्म का गौरव है। दूसरे धर्मों में बालक, जवान, बूढ़ा, इनमें से कोई भी मनुष्य पाप करे वह पाप चाहे छोटा हो चाहे बड़ा हो, चाहे जान कर किया हो या अज्ञातावस्था में हुआ हो, चाहे स्वतंत्रता से किया हो या किसी ने बलात्कार करवाया हो सब की निवृत्ति के लिये एक ही नित्यकर्म बतलाया गया है। वरन् सनातनधर्म प्रत्येक पाप की निवृत्ति के लिये भिन्न भिन्न उपाय बतलाता है, इतना ही नहीं किन्तु एक एक पाप पर अनेक प्रायश्चित्त रखता है, क्या यह गौरव नहीं है ? कल्पना करो कि एक गांव में एक वैद्य रहता है और उसके पास एक ही दवाई है, बुखार आवे तो वही दवाई, दस्त लगे तो वही औषधि, आंख में दर्द हो तब भी वही और पेट में शूल चले फिर भी उसी का सेवन, गर्ज यह है कि कितने भी रोग हों दवाई सब की एक ही होगी। यदि कोई मनुष्य कहे कि इस

दवाई से तो हमको आराम नहीं होता तब यही कहना पड़ेगा कि हम मजबूर हैं एक ही दवा हमारे पास है। इसी गांव में एक दूसरा वैद्य है जिसके पास बुखार की दवा पृथक्, दस्त की ओषधि भिन्न, आंख के दर्द की दवा और, पेट के शूल की अलाहिदा फिर एक बुखार की सैकड़ों दवाइयां, दस्त की बीसियों औषधियां, भाव यह है कि जितने रोग शरीर में हो सकते हैं उन रोगों में से प्रत्येक रोग की अनेक औषधियां हैं। अब बतलाइये कि इन दो वैद्यों में से कौन वैद्य अच्छा है ? यदि अनेक औषधियों वाला वैद्य बढ़िया है तो फिर सनातनधर्म बढ़िया क्यों नहीं।

दार्शनिक विचार।

(७) जिस समय हम दार्शनिक विचारों को आगे रखते हैं उस समय संसार के समस्त धर्म दर्शनों की युक्तियों से डरते हुये युक्तियों के आगे से भागते हुये नजर आते हैं। दार्शनिक युक्तियों के सामने अपनी सत्यता का प्रमाण देने वाला यदि कोई धर्म है तो वह सनातनधर्म है। सुनिये, अब हम संसार के धर्मों को युक्तियों के साथ टकराते हैं।

आजकल संसार में डार्विनथ्यूरी के प्रभाव से नित्य प्रति नास्तिकता बढ़ रही है, यदि यह और कुछ बढ़ जावे और नास्तिक लोग संसार के समस्त मतों को निमंत्रण देकर अपने यहां बुलावें तथा खूब खातिर करने के पश्चात् यदि यह सवाल कर बैठें कि आप लोग ईश्वर को मानते हो तो हमको

अपना ईश्वर दिखलाओ। इस मौके पर बड़ा मज़ा होगा, बड़ा बांका शास्त्रार्थ होगा। एक प्लेटफार्म पर सनातनधर्मी, मुसलमान, ईसाई, पार्सी, यहूदी और आर्यसमाजी डटेंगे और दूसरे पर नास्तिक। नास्तिकों की तरफ से एक मनुष्य खड़ा होकर प्रश्न करेगा कि आप लोग आस्तिक कहलाते हैं, ईश्वर को मानते हैं, हम लोग ईश्वर को नहीं मानते इस कारण हमको नास्तिक कहा जाता है, हम में और आप में यह भेद पड़ गया है किन्तु वास्तव में हम और आप एक हैं, हम चाहते हैं कि हमारा और आप का यह भेद मिट जावे, सौभाग्यवश आज दोनों दल इकट्ठे हो गये हैं इस कारण आज बीच का भेद निकल जाना चाहिये, आप लोग ईश्वर को दिखला दें और हम मान लें बस भेद की समाप्ति है।

इस प्रश्न को सुन कर आस्तिकों की तरफ से मौलवी साहब उठ कर उत्तर देने लगे कि कुरान शरीफ पारा फलां आयत फलां में लिखा है कि ईश्वर है।

इसको सुन कर नास्तिक बोला कि मौलवी साहब हमारे प्रश्न को ही नहीं समझे, हमारा प्रश्न यह है कि हमने ईश्वर को न तो कभी दिल्ली के स्टेशन पर टिकट खरीदते पाया और न कभी बम्बई की मारकेट में सौदा खरीदते, हम कुरान शरीफ का खुदा सुनना नहीं चाहते किन्तु आंख से इस प्रकार देखना चाहते हैं कि जिस प्रकार बटेश्वर के मेले में घोड़े देखे जाते हैं।

इसको सुन कर अब मौलवी साहब घबराये और घबराकर

बोले कि वाह साहब वाह, ईश्वर को आंख से दिखलाओ, ईश्वर न ठहरा किसी काश्तकार का बैल ठहरा, तोबा तोबा, हम ऐसे काफिर से बात भी करना नहीं चाहते, इतना कह कर मौलवी साहब बगलें झांकते हुये घर को चल दिये।

मौलवी साहब के बाद एक आर्यसमाजी खड़े हुये। इन्होंने कहा कि ईश्वरसत्ता के ऊपर तो कोई शिर ही नहीं हिला सकता क्योंकि ईश्वर के अस्तित्व में वेद प्रमाण है, वेद प्रमाण वह प्रमाण है कि जिसके आगे समस्त प्रमाण शिर झुका देते हैं।

इसको सुन कर नास्तिक ने कहा कि वेद प्रमाण है इसमें क्या कारण है? आर्यसमाजी ने कहा कि वेद ईश्वर निर्मित है इस कारण वह सत्य है और प्रमाण है। नास्तिक ने कहा कि बस यही बात है? महाशयजी आप तो बहुत गल्ती खाते हैं पहिले तो आप इस बात का प्रमाण दें कि ईश्वर है और इसके बाद यह प्रमाण दें कि वेद ईश्वर कृत है, ये दोनों प्रमाण जब किसी दलील से न कटेंगे तब वेद प्रमाण होगा। अभी तो वेद के निर्माता ईश्वर पर ही महाभारत हो रहा है, अभी आप वेद पर क्यों दौड़ते हैं, फिर हमारा प्रश्न भी यह नहीं कि ईश्वर के विषय में धार्मिक पुस्तकों का प्रमाण दे दिया जावे, हम तो आज ईश्वर को आंख से देखना चाहते हैं। इस प्रश्न को सुन कर आर्यसमाजी घबराया और कहने लगा कि वाह जी वाह, निराकार ईश्वर को ये आंख से देखेंगे, कृपा करिये। इतना कह कर नमस्ते कहते हुये समाजी भाई ने लंबे लंबे कदम घर को बढ़ा दिये।

इनके बाद एक पादरी साहब खड़े हुये और इस एह्वो-ल्यूशन थ्योरी वाले से बोले कि आप नाहक में क्यों झगड़ा बढ़ाते हैं हमारी धर्मपुस्तक बाइबिल में साफ लिखा है कि संसार का सिर्जनहार जिसके हुक्म से यह सब बना है, गाड है।

इस को सुन कर विकाशवादवाले ने कहा कि हमारे बही खाते में लिखा है कि आप के पिता हमारे यहां से आठ आना सैकड़े माहवारी ब्याज पर नौ करोड़ रुपया उधार ले गये वह सब रुपया मय ब्याज के देकर जाइये।

पादरी साहब बोले कि यह आपका कथन बिल्कुल झूठ है हमारे पिता ने उम्र भर में कभी एक पैसा किसी से उधार नहीं लिया। इस को सुन कर नास्तिक बोला कि यह क्या बात है कि तुम्हारा लेख सही और हमारा गलत? यदि लेख सही रहेंगे तो दोनों रहेंगे और गलत होंगे तो दोनों होंगे। इस को सुन कर पादरी साहब घबराये और कह उठे कि बस मेहरबानी कीजिये आज हमको गिरजा जाना है, इतना कहकर चलेगये। यही दशा यहूदी और पार्सियों की भी होगी।

जिस समय संसार के समस्त मत विकाशवाद वालों से थरथराते और उनकी निन्दा करते घर को भागेंगे, जब इन सब की जान आपत्ति में आजावेगी और नास्तिकों का हौसला बढ़ जावेगा, उस समय यह बूढ़ा धर्म, आपकी बुद्धि के अनुसार यह सड़ियल धर्म, यही सनातनधर्म सन्मुख खड़ा होकर नास्तिकों को ललकारेगा और कहेगा कि आओ हम आप को

ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन करावें। यह धर्म नास्तिकों को महर्षि पतंजलि की पाठशाला में भरती करेगा और यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि इन आठ कक्षाओं (क्लासों) में उत्तीर्ण करके नवम क्लास संयम में ईश्वर का साक्षात्कार करवा देगा।

समस्त धर्मों पर आई हुई नास्तिकों की आपत्ति को सनातनधर्म ही दूर कर सकता है। ईश्वर का साक्षात् करवाने वाला पुस्तक यदि किसी धर्म के पास है तो वह सनातन धर्म है। कई एक सज्जन यह कहेंगे कि योगदर्शन से ईश्वर का साक्षात्कार तो हम भी करवा सकते हैं। बड़ी खुशी की बात है, हम मानते हैं, किन्तु सवाल तो यह है कि क्या योग-दर्शन तुम्हारा स्वतः प्रमाण ग्रंथ है? तुम योगदर्शन को प्रमाण मानते हो? यदि ऐसा है तब तो ध्यानावस्था में पहुंच कर आप मूर्तिपूजा करते होंगे क्योंकि योग का यह सूत्र है "यथाभिमतध्यानाद्वा" जब तक मूर्तिपूजा स्वीकार न करो तब तक ध्यान न बनेगा, ध्यान के बिना संयम न होगा और संयम के बिना ईश्वर का साक्षात्कार न होगा फिर आप योगदर्शन द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार कैसे करवावेंगे? यदि यह सब बातें स्वीकार करके आपने ईश्वर का दर्शन भी कराया तो प्रश्न यह होगा कि यह ईश्वरदर्शन किसकी पूंजी से हुआ? उत्तर यही होगा कि सनातनधर्म की पूंजी से। फिर आप का क्या महत्व है? आप अपनी धर्मपुस्तक से दर्शन

करवाइये तब आप का कथन सत्य होगा। भाव यह है कि ईश्वर का साक्षात्कार करवाने वाला धर्मपुस्तक यदि किसी के पास है तो उसका नाम सनातनधर्म है। क्या यह इसका कम महत्त्व है कि जो नास्तिकों के सिद्धान्तों का चकनाचूर कर सकता है।

सनातनधर्म शास्त्रार्थ में जो दूसरे धर्मों को समझाता है वह क्रूर स्वभाव से नहीं समझाता—बड़ी प्रीति से समझाता है, वह भी द्वेषभाव से नहीं किन्तु केवल कल्याण के लिये। समस्त धर्म अपना २ कल्याण चाहते हैं। कोई धर्म के मनुष्य प्रार्थना करते हैं कि भगवन्! तुमने सुबह को रोटियां दीं शाम की और दीजिये, कोई धर्म के मनुष्य कहते है कि मालिक मेरी इज्जत आबरू बनाये रखिये, किन्तु सनातनधर्म यह प्रार्थना नहीं करता, इस की प्रार्थना है कि—

सर्वे कुशलिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

संसार के समस्त प्राणी कुशल पूर्वक रहें और सभी रोग-रहित हों, सभी का कल्याण हो, किसी को भी दुःख न हो।

सब अपना २ कल्याण चाहते हैं और सनातनधर्म सब का कल्याण चाहता है, क्या यह इस का कम गौरव है?

शास्त्रार्थ।

(८) यह केवल कथन ही कथन नहीं है किन्तु संसार में जब

जब शास्त्रार्थ हुये उन समस्त शास्त्रार्थों में सनातनधर्म का ही विजय हुआ। जिस समय संसार में किसी धर्म ने जन्म भी नहीं लिया था उस समय केवल सनातनधर्म ही था किन्तु एक ऐसा अवसर आ गया कि ईरान में पार्सी धर्म खड़ा हुआ। उस समय भारतवर्ष में ईरान से एक पत्र आया कि यहां पर एक नवीन मत खड़ा हुआ है उसके साथ शास्त्रार्थ करने को किसी विद्वान् को भेजो। भारतवर्ष से शास्त्रार्थ करने के लिये वेद व्यासजी भेजे गये। यह मामला पार्सियों की धर्मपुस्तक दसातीर में इस प्रकार लिखा है कि—

अकनूं बिरहमने व्यास नामी अज हिन्द आमद
पस दाना कि अक्ल चुनानस्त।

अर्थात्—एक विद्वान् बिरहमन व्यास नामी हिन्द से आया, जो बड़ा अक्लमन्द था जिसके बराबर अक्लमन्द कोई न था।

इसके आगे १६३ आयत में लिखा है कि—

चूं व्यास हिन्दी बलख आमद
गश्तास्प जरतश्त रा बख्वान्द।

जब हिन्द का व्यास बलख में आया तो ईरान के राजा गश्तास्प ने जरतश्त को बुलाया।

और आगे लिखा है कि—

मन मरदे अम हिन्दी निजाद

मैं एक हिन्द में पैदा हुआ पुरुष हूं।

आगे लिखा है कि—

"व हिन्द बाज़गश्त" ।

अर्थात् फिर हिन्द को लौट गया ।

इस मामले को आज पांच हजार वर्ष हो गये । उस समय पारसी धर्म के नेता जरतश्त और व्यास में जो शास्त्रार्थ हुआ इस शास्त्रार्थ में सनातनधर्म ने विजय पाई ।

द्वितीय शास्त्रार्थ—भारतवर्ष में एक ऐसा ज़माना आया कि काशी, कन्नौज, काश्मीर आदि २ शहरों में गिने गिनाये सनातनधर्मी रहगये, शेष सब नास्तिक बन गये । आज हिन्दुओं में परस्पर में लड़ाई होती है कोई कहता है कि ईश्वर साकार, कोई कहता है निराकार, किन्तु उस ज़माने में निराकार और साकार दोनों की चटनी हो गई, यही आवाज़ भर गई कि ईश्वर बिल्कुल है ही नहीं । इस बौद्ध मत के फैलने पर भारतवर्ष का एक छोटा सा सपूत लंगोटी लगा के उठा कि जिनका नाम जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य था । इन्होंने बौद्धों के साथ अनेक शास्त्रार्थ किये और उन सब में सनातनधर्म ने ही विजय पाई । इस गाथा को सारा संसार जानता है । प्रत्यक्षवादी बोध ग्रन्थ और युक्ति इन दोनों प्रमाणों को नहीं मानते थे । केवल प्रत्यक्ष प्रमाण से बोधधर्म का विजय करना हंसी खेल नहीं है । सनातनधर्म को छोड़ कर संसार का कोई धर्म ऐसे शास्त्रार्थ में विजय नहीं पा सकता ।

तृतीय शास्त्रार्थ—पुराने ज़माने में भारतवर्ष में एक

ऐसे प्रसिद्ध पण्डित थे कि जैसे आजकल महामहोपाध्याय पं० शिवकुमारजी थे-इन महात्मा का नाम महेशठक्कुर था। ये अपनी घरू पाठशाला में विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे। इन का एक रघुनन्दन नामक छात्र, जो विद्वान् हो चुका था, और अपने घर को जाना चाहता था, पण्डितजी के पास आया, और प्रार्थना की कि मैं अपने घर को जाना चाहता हूं। गुरू ने आज्ञा दी कि जाओ। इस शिष्य ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि गुरुदक्षिणा मांग लीजिये। गुरूजी ने कहा कि तुमने हमारी बड़ी सेवा की है यही गुरुदक्षिणा है। शिष्य ने फिर आग्रह किया कि ऐसा नहीं हो सकता, कुछ न कुछ अवश्य मांग लीजिये। गुरूजी ने फिर यही कहा कि सेवा ही बहुत है। तीसरी वार जब शिष्य आग्रह कर बैठा तब गुरु को क्रोध आ गया। क्रोध में बोले कि यदि तुम गुरुदक्षिणा ही देते हो तो गण्डकी नदी से लेकर नैपाल तक का राज्य दे दो। विद्यार्थी सुन कर बोला कि बहुत अच्छा। भारतवर्ष के उस विद्यार्थी का यह साहस है कि जिसके पास पहनने को कपड़ा नहीं और खाने को पाव भर अन्न नहीं ऐसा निर्धन होने पर भी गण्डकी नदी से लेकर नैपाल तक का राज देना स्वीकार करता है, यह इसका प्रशंसनीय साहस है।

यह विद्यार्थी गुरु के स्थान से चल कर दिल्ली आया। दिल्ली आकर बादशाह को एक पत्र भेजा कि मैं एक हिन्दु दार्शनिक विद्यार्थी हूं और आपके यहां इस आशा से आया हूं

कि आप अपने बड़े बड़े आलिमों से मुबाहिसा करवावें। इस पत्र को पढ़ कर बादशाह नें एक विद्वान् मोलवी को विद्यार्थी के पास भेजा। मौलवी साहब ने विद्यार्थी से दो दो बातें कीं और फिर बादशाह के पास लौट गये। बादशाह के पूछने पर इस मोलवी ने कहा कि जापनाह यह शख्स बहुत विद्वान् है। आलिमों के साथ में इस विद्यार्थी का मुबाहिसा हुआ, अन्त में आलिमों ने शिकस्त खाई और इस विद्यार्थी ने फतह पाई।

इसको देख कर बादशाह बड़ा प्रसन्न हुआ और विद्यार्थी से कहा कि तुम जो चाहो सो मांगलो। विद्यार्थी ने कहा कि म बहुत कुछ मांगने वाला हूं ऐसा न हो कि मैं मांगू और हुजूर फिर देने से इन्कार करदें। जो मैं मांगू वही मिले, यदि हुजूर ऐसा मंजूर करें तो फिर मैं मांगू। बादशाह ने कहा कि हम तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हैं तुम जो मांगोगे हम वही देंगे। बादशाह की इस आज्ञा को सुन कर विद्यार्थी बोला कि अच्छा तो गण्डकी नदी से लेकर नैपाल तक का राज्य दे दें। बादशाह ने उसी समय यह राज्य इस विद्यार्थी को दे दिया।

यह विद्यार्थी देहली से राज्य पाकर चला। साथ में सेना और अनेक प्रकार के वाहन हैं। यह विद्यार्थी चलता चलता घर नहीं गया किन्तु अपने गुरु मान्यपण्डित महेश ठकुर के पास पहुंचा, जाकर प्रणाम किया और बादशाह का वह बख्शिशनामा कि जिसमें राज्य देना लिखा था गुरु के चरणों में अर्पित कर दिया पश्चात् विद्यार्थी अपने घर को चला गया।

जिन महानुभाव महेश ठक्कुर ने यह राज्य पाया था उनकी तेरहवीं पीढ़ी में आप को घोर निद्रा से जगाने वाले, श्रोत्रिय-वंशभूषण, महाराजा साहब बहादुर दर्भंगानरेश, आपके समक्ष सनातनधर्म के स्तम्भ होकर विद्यमान हैं।

चतुर्थ शास्त्रार्थ—कितने ही मनुष्य यह कहते होंगे कि आप सब कथा पुरानी ही गाते हैं, साइन्स के ज़माने का आज का हाल कहो, आज तो सनातनधर्म समस्त धर्मों से गिरा नज़र आता है। निःसन्देह हमने जो बातें कही हैं ये सब प्राचीनकाल की हैं, किन्तु हम करें भी क्या, हमारे तो समस्त ही व्यवहार पुराने है—हमारा चालचलन पुराना, फैशन पुराना, धर्म पुराना, हमारी जाति पुरानी, फिर नई बात हम कैसे कहें, वर्तमान ज़माने की बात तो वह कहे कि जो दो हफ्ते का धर्म रखता हो।

अच्छा अब आपने कहा तो एक नई ही बात सुनाते हैं सुनिये। १९वीं शताब्दी के अन्त में जिसको अभी थोड़ा ही समय व्यतीत हुआ है अमेरिका देश के शहर चिकागो में मज़हबी कान्फ्रेंस हुई। इस कान्फ्रेंस में हर एक मज़हब ने अपनी अपनी तरफ़ से लायक लायक आलिम फाजिलों को प्रतिनिधि बना कर भेजा। इस कान्फ्रेंस में ईसाई, यहूदी, बौद्ध, अहले इसलाम आदि आदि सभी मज़हबों की तरफ से प्रतिनिधि भेजे गये।

कान्फ्रेंसवालों ने प्रतिनिधियों से पूछना आरम्भ किया कि

आप अपने धर्म का महत्त्व कितने दिन में सुना सकते हैं? यहूदियों ने कहा कि एक दिन में, बौद्धों ने कहा कि दो दिन में, इसी प्रकार ईसाई, मुसलमानों के प्रतिनिधियों ने लिखवाया। किसी ने एक दिन लिया, किसी ने दो दिन, किसी ने तीन दिन। तीन दिन से आगे कोई नहीं बढ़ा। दैवयोग से उस समय एक भारतवर्ष का साधु भी चिकागो में पहुंच गया था। सब से पूछ कर इन महात्मा के पास आये और इन से पूछा कि आप हिन्दुधर्म का महत्त्व कितने दिन में कह सकते हैं? इन्होंने जवाब दिया कि जितने दिन तक आप सुनना चाहें। इस कथन को सुन कर लोग हँस पड़े और कहने लगे कि इनके टाइम का भी ठिकाना नहीं। निश्चय किया कि इनको सब के पश्चात् टाइम देना चाहिये।

प्रत्येक धर्म के प्रतिनिधियों ने अपने अपने धर्म की महिमा (गौरवता) कहनी आरम्भ की और क्रम क्रम से सब के व्याख्यान समाप्त हुये। इस जलसे में बड़ी भीड़ होती थी और श्रोता बड़े ध्यान से सुनते थे। सब के पश्चात् हिन्दुस्तान के साधू का नंबर आया। समय पर स्वामीजी ने अपना व्याख्यान आरम्भ किया। प्रथम ही दिन उनकी आवाज़ को सुन कर लोगों के कान खड़े हो गये। दूसरे दिन इतनी भीड़ हुई कि सभा में तिल रखने को भी जगह नहीं रही। 'सनातनधर्म क्या महत्त्व रखता है' इसके ऊपर स्वामीजी का कई दिन तक भाषण हुआ, अन्त में कान्फ्रेंस करनेवाला स्वामीजी के चरणों में गिर गया।

इस व्याख्यान के प्रभाव से अमेरिका के कुछ बड़े बड़े विज्ञान-वेत्ता सनातनधर्म की शरण आये और उन्होंने बाइबिल को छोड़ कर श्रीमद्भगवद्गीता और तुलसी की माला हाथ में लेकर कृष्ण कृष्ण कहना आरम्भ कर दिया। साइन्स के ज़माने में समस्त धर्मों के सन्मुख अपने महत्त्व का डंका बजा कर सब के देखते देखते पांच हजार विद्वानों से उनका मज़हब छुड़ा कर यदि कोई धर्म अपनी तरफ खींच सकता है तो उस धर्म का नाम सनातनधर्म है।

भारत के जिस सपूत ने इस कार्य को किया, सनातनधर्म के विज्ञान के रूप को जिन्होंने दिखाया, उन महात्मा का नाम श्री स्वामी विवेकानन्द था। जब स्वामी विवेकानन्द के द्वारा साइन्स के ज़माने में भी सनातनधर्म अपनी विजय वैजयन्ती को ऊंचा कर दिखला रहा है फिर आप वर्तमान समय में सनातनधर्म की हीन दशा कैसे समझ रहे हैं ? मालूम होता है कि आप ने कोई धर्म विषय की पुस्तक नहीं देखी।

पंचम शास्त्रार्थ—इससे भिन्न सन् १८९५ ई० में एक और शास्त्रार्थ हुआ था कि जिसमें विजयतिलक सनातन-धर्म को ही मिला है। उपरोक्त समय में मु० वज़ीराबाद (पंजाब) में आर्यसमाज ने सनातनधर्म से शास्त्रार्थ ठाना। आर्यसमाज ने कहा कि हमारी और आपकी नित्य प्रति लड़ाई होती रहती है आओ एक शास्त्रार्थ करें, उस शास्त्रार्थ में जो विजय पावेगा उसी को सत्य समझ लेंगे। शास्त्रार्थ

पक्का हुआ। मध्यस्थ का फैसला मानना दोनों थोकों ने स्वीकार कर लिया। इस शास्त्रार्थ के मध्यस्थ योरुप निवासी वेदवेत्ता मिस्टर मेक्समूलर बनाये गये। यह लेखबद्ध शास्त्रार्थ होने के पश्चात् पत्र मध्यस्थ के पास भेज दिये गये। यह शास्त्रार्थ श्राद्ध विषय पर था। आर्य समाजी कहते थे कि जीवित पितरों का श्राद्ध होना चाहिये और सनातनधर्मी कहते थे कि नहीं मृतक पितरों का। दोनों पक्षों के लेख पढ़ कर मिस्टर मेक्समूलर ने फैसला लिख भेजा कि श्राद्ध तो मृतक पितरों का ही होता है। आर्यसमाज के पास जब सनातनधर्म के मनुष्य पहुंचे कि कहिये अब तो मृतक पितरों का ही श्राद्ध रहा। इसको सुन कर आर्यसमाजियों ने उत्तर दिया कि मेक्समूलर तो मूर्ख है वह वेद का हाल क्या जाने। मध्यस्थ चुनते समय तो मेक्समूलर विद्वान् था किन्तु फैसला देते समय मूर्ख हो गया! आर्यसमाज और सनातनधर्म से जब शास्त्रार्थ हुआ तब विजय सनातनधर्म के ही हिस्से में आई। यह शास्त्रार्थ छप गया है और पं० गणेशदत्तजी शास्त्री सनातनधर्म कालेज लाहौर से मिलता है।

जो धर्म किसी ज़माने में भी नहीं गिरा और जो पूर्व और आज अपने सामने किसी को अपने बराबर नहीं देखता या सब पर फतह पाता है उसको कौन कह सकता है कि यह पोच है? सन्मुख आये धर्म को नीचे गिरा कर विजय पाना निःसन्देह यह सनातनधर्म की गौरवता है।

कारण।

(२) आज संसार में सैकड़ों धर्म प्रचलित हैं, इनमें कौन सत्य और कितने बनावटी हैं, इस समय दार्शनिक युक्ति से इसी का विचार आरंभ करते हैं। यद्यपि धर्म सैकड़ों हैं तो भी ये सैकड़ों धर्म चार विभागों में विभक्त हो सकते हैं। प्रथम वे धर्म हैं जो सृष्टि का कारण ईश्वर को न मान कर सृष्टि का बनना परमाणुओं से मानते हैं या ईश्वर को सर्वथा ही नहीं मानते। द्वितीय धर्म वे हैं जो संसार का निमित्त कारण ईश्वर को और उपादान कारण प्रकृति को मानते हैं। तृतीय वे धर्म हैं जो सृष्टि के आरंभ में केवल ईश्वर को मानते हैं और ईश्वर के 'कुन' कहने से सृष्टि की रचना समझते हैं। चतुर्थ एक धर्म ऐसा भी है जो सृष्टि का "अभिन्न निमित्तोपादान कारण" ब्रह्म को मानता है, इसके मत में सृष्टि का निमित्त और उपादान दोनों ही कारण ब्रह्म है। आज हम दार्शनिक युक्ति को कसौटी बना कर इन चारों धर्मों को जांचेंगे इस जांच में जो पूरा उतरे वही मनुष्य के मानने योग्य है। अब विचार सुनिये।

नास्तिक।

नास्तिकों का कथन है कि ईश्वर का अस्तित्व बेवकूफ माना करते हैं या ऐसे लोग मानते हैं जो ईश्वर को जबर्दस्ती का सांड बना कर संसार को डराते रहते हैं, वास्तव में परमा-

णुओं को छोड़ कर उनसे परे कोई ईश्वर है नहीं। जब सृष्टि नहीं थी उस समय तत्वों के परमाणु आकाश में घूमते फिरते थे, घूमते २ परमाणुओं का एक स्थान में ढेर लग गया, यह ढेर ही ग्रह बना। इसके ऊपर वृक्ष, झाड़ी, पशु, पक्षी, मनुष्य, पैदा हुये। जिस प्रकार परमाणुओं के ढेर से हमारी पृथ्वी बनी है इसी प्रकार अन्य अनेक ग्रहों की रचना हुई है। इस रचना में ईश्वर के मानने की कौन आवश्यकता है।

यह नास्तिकों का सिद्धान्त दर्शनों के आगे कपूर की भांति उड़ जाता है।

(१) योरुप का दार्शनिक काण्ट लिखता है कि वे परमाणु जिनसे संसार का बनना माना जाता है शकल वाले हैं या बे-शकल। यदि परमाणुओं को शकल वाले माना जावेगा तब तो परमाणु अनित्य हो जावेंगे क्योंकि संसार में जितने शकल वाले पदार्थ हैं सबही नाश होने वाले हैं, यदि हम परमाणुओं को शकल वाले मानेंगे तब तो वे अनित्य ठहरेंगे और उनके बनाने वाली तथा बिगाड़ने वाली एक अन्य शक्ति माननी पड़ेगी। यदि हम उन परमाणुओं को रूपरहित मान लें तब वे नित्य तो अवश्य होंगे किन्तु संसार को नहीं बना सकेंगे कारण यह है कि जब एक रूपरहित परमाणु के साथ अनेक रूप-रहित परमाणु मिलेंगे तब रूपवाला यह संसार नहीं बन सकेगा क्योंकि रूपरहित धन रूपरहित धन रूपरहित इनका जब जोड़ लगाया जावेगा तब योग रूपरहित ही होगा। दोनों ही दशा

में परमाणु संसार के कर्ता नहीं हो सकते ।

(२) जगद्गुरु शंकराचार्य का कथन है कि जिन परमाणुओं से संसार की उत्पत्ति मानी जाती है उनकी दशा सर्वदा एक सी रहती है या उनकी दशा में परिवर्तन होकर ह्रास उल्हास होता है, यदि हम यह मानलें कि उनकी दशा सर्वदा एक रहती है और उनमें परिवर्तन नहीं होता तब तो कोई भी ग्रह किसी भी समय में नष्ट न होगा, प्रलय न हो सकेगी, प्रलय जभी होगी जब कि सृष्टि के आरंभ में जो परमाणुओं की शक्ति है उस शक्ति की क्षीणता हो जावे, शक्ति क्षीण हुये विना ग्रह नष्ट हो नहीं सकता। इसके विरुद्ध यदि हम यह मान लें कि सृष्टि के आरंभ में परमाणुओं में प्रबल शक्ति रहती है और प्रलय के समय में इस शक्ति को क्षीणता हो जाती है तब परमाणु विकार वाले हो जावेंगे। जिस वस्तु में विकार शक्ति (घटना बढ़ना) रहता है उसको नित्य मान लेना दर्शन की दृष्टि में भारी भूल है।

इन दो युक्तियों के ऊपर हम एक दृष्टान्त देते हैं उसको सुन कर श्रोता यह समझ लेंगे कि केवल परमाणुओं से सृष्ट्युत्पत्ति मानना दर्शनों की अनभिज्ञता को छोड़ कर और कुछ भी सार नहीं रखता। एक विश्वम्भरदत्त एम. ए, एल. एल बी. एक रोज रात के आठ बजे अपने कमरे में बैठे थे उस समय उन्होंने अपने चिरंजीव पुत्र भोलानाथ को आवाज लगाई। आवाज लगाने से बीस मिनट पश्चात् भोलानाथ

आया और आकर पिताजी से कहा कि क्या आज्ञा है? पिता ने पुत्र की तरफ देख कर पूछा कि क्या करते थे? पुत्र ने उत्तर दिया कि मैं ठाकुरजी की आरती कर रहा था। इतना सुन कर पिताजी को क्रोध आ गया, क्रोधित होकर बोले कि तुम मेट्रिक पास कर चुके किन्तु सड़ियल हिन्दू धर्म की बू तुम्हारे दिमाग से अभी तक नहीं निकली। इसको सुन कर पुत्र ने कहा कि मैं समझा नहीं, समझा दीजिये। पिता ने कहा कि तुम अब तक भी ईश्वर को मानते ही चले आते हो, क्या साइंस में तुमको यही पढ़ाया गया है? लड़के ने कहा कि पिताजी यदि ईश्वर नहीं तो फिर इतना बड़ा ब्रह्माण्ड किस प्रकार बन गया। पिता ने उत्तर दिया कि परमाणु अनादि हैं ये चलते फिरते जिस एक स्थान में जमा हो गये एक ढेर बन गया, धीरे धीरे वही ग्रह हो गया, ग्रह में परमाणुओं की प्राकृत शक्ति से सृष्टि हुई इसमें ईश्वर के मानने की कौन सी आवश्यकता आ पड़ी। लड़का उस समय मौन रह गया किन्तु अगले दिन लड़के ने पाठशाला में पहुंच कर अपना लिखना पढ़ना सब बन्द कर दिया और एक कमरे में बैठ बड़ी सावधानी के साथ एक अत्युत्तम ड्राइंग खींची और उसकी शोभा को चमत्कृत करने के लिये उसमें लाल, हरा, पीला, नीला रंग भरा फिर ड्राइंग को लाकर पिताजी की मेज पर रख दिया। रात्रि को पिता उस कमरे में आये और बैठते ही मनमोहिनी ड्राइंग पर दृष्टि पड़ी, उसको हाथ में उठा कर लड़के को पुकारा, लड़के के

आ जाने पर पिता ने प्रश्न किया कि यह ड्राइंग किसने निर्माण की है ? लड़के ने उत्तर दिया कि पिताजी यह ड्राइंग अपने आप बन गई। इतना सुन कर पिताजी क्रोधित हो गये, लाल लाल आखें करके बोले कि तुम हमको धोखा देना चाहते हो, कहीं ड्राइंग भी अपने आप बन जाती है। लड़के ने हाथ जोड़ कर नम्रता के साथ कहा कि पिताजी यह कागज पूर्व की तरफ रक्खा था और पश्चिम की ओर बनी हुई रंगीन पेंसलें धरीं थीं, पश्चिम का ही वायु चल रहा था उस वायु के धक्के से पेंसलों के परमाणु उड़े और वे इस कागज पर जम गये यही कारण ड्राइंग के तैयार होने का है।

इसको सुन कर पिता ने कहा कि हमको सर्वथा ही मूर्ख मत बनाओ यह कभी संभव ही नहीं हो सकता कि पेंसलों के परमाणु हवा से उड़ कर कागज पर जमा हो जावें और वे इस प्रकार जमें कि हरे हरे सब एक जगह और लाल लाल एक स्थान में जमा होकर एक उत्तम ड्राइंग खींच दें। यह कभी संभव ही नहीं कि ड्राइंग अपने आप खिंच जावे, यह किसी न किसी मनुष्य की खींची हुई है, बिना खींचे खिंच ही नहीं सकती। इसको सुन कर लड़का बोला कि पिताजी जब बिना खींचे एक ड्राइंग भी नहीं खिंच सकती तो फिर बिना बनाये यह ब्रह्माण्ड किस प्रकार बन जावेगा, इसका बनाने वाला कोई न कोई मानना अवश्य पड़ेगा। इसको सुन कर बाबूजी की समस्त हुज्जतें कूच कर गईं।

यद्यपि "कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरु-षेति चिन्त्यम्" श्वेताश्वतरोपनिषत् की इस श्रुति के भाष्य में परमाणुवाद का एक बड़े विस्तृत रूप से खण्डन किया है उसको तो जाने दीजिये जो दो तीन युक्तियां हमने व्याख्यान में दो हैं इन्हीं से परमाणुवाद का सर्वथा मृत्यु हो जाता है फिर नास्तिक लोग किस प्रकार कह सकते हैं कि हमारा पर-माणुवाद सत्य है ।

निमित्त कारण ।

हमने यह दिखला दिया कि दार्शनिक युक्तियों के आगे नास्तिकों का परमाणुवाद ५ मिनट में निःसार हो जाता है अब उन दूसरे धर्मों की सत्यता की जांच करेंगे जो इस सृष्टि का ईश्वर को निमित्त और प्रकृति को उपादान कारण मानते हैं। इनके मत में सृष्टि के आरंभ में जीव, ईश्वर, प्रकृति ये तीन पदार्थ अनादि हैं जब ईश्वर को सृष्टि रचना की इच्छा होती है तब जैसे सुवर्ण को लेकर सुनार कटक कुंडल बनाता है, तथा जैसे कुम्भार मिट्टी को लेकर घड़ा बना देता है, जैसे सूत को लेकर जुलाहा कपड़ा तैयार करता है इसी प्रकार इनके मत में ईश्वर प्रकृति से संसार बना देता है। जो लोग अंधपरंपरा से इसको मानते चले आते हैं उनकी बात तो और है किन्तु जो विचारशील इस मत को दार्शनिक कसौटी पर कसते हैं उनकी दृष्टि में यह मत तीन कौड़ी का हो जाता है। इसको

इस प्रकार समझिये-हम इनसे पूछेंगे कि जिस ईश्वर ने प्रकृति से यह संसार रचा है वह तुम्हारा ईश्वर कहां रहता है ? इस प्रश्न के उत्तर में पदार्थत्रयवादी कहते है कि ईश्वर तो सर्व-व्यापक है। इस उत्तर पर हमारा कहना यह है कि निमित्त कारण कभी भी कार्य में व्यापक नही हो सकता।

कल्पना करो कि हम अपने पांच सात मित्रों सहित बुद्धू कुम्भार के यहां गये-हमें बुद्धू कुम्भार से काम था इस कारण उससे मिलना था। जब हम दरवाजे पर पहुंचे तो कुम्भार हमको न मिला किन्तु उसका लड़का मिला। हमने उस लड़के से पूछा कि तुम्हारे पिता कहां गये है ? उसने उत्तर दिया कि कल एक घट बनाया था उस घट के प्रत्येक अणु में हमारे पिता व्यापक हो गये हैं। हमारे कई वार पूछने पर भी वार वार उसने यही उत्तर दिया। हमने समझा कि यह भंग पी गया है अतएव कुछ का कुछ वकता है, क्या कभी घट के एक एक अवयव में कुम्भार धँस सकता है-हम आगे को चल दिये। थोड़ी दूर चलने से एक जुलाहे का घर आगया, हमको उससे भी कुछ काम था-हमने उसको बुलाया-तन्तुवाय कहीं गया था मकान के अन्दर से उसकी स्त्री निकली-हमने उससे पूछा कि तेरा पति कहां है ? उसने उत्तर दिया कि कल कपड़ा बुना था उस कपड़े के एक एक सूत में धँस बैठा। हमने फिर पूछा कि हम तेरे पति को पूछते हैं-स्त्री ने उत्तर दिया कि जी हां मैंने उसी को बतलाया है। हम समझ गये कि यहां तो आज

आवा का आवा ही बिगड़ गया। जैसे कुम्भार का लड़का प्रमाद में था वैसे ही यह स्त्री भी है, आगे बढ़े। चलते चलते एक बढ़ई का घर आ गया, हमको उससे भी काम था किन्तु वह मिस्त्री कहीं गया था और उसके घर के पास एक पंडित बैठा था पं० जी से हमने पूछा कि यह बढ़ई कहां गया है ? पं० जी ने कहा कि कल एक साहब की मेज बनाई थी उसके ज़र्रे २ में धँस बैठा। यह सुन कर हमको बड़ा आश्चर्य हुआ और हमने पं० जी से कहा कि अगर कुम्भार का लड़का कहे तो कोई आश्चर्य नहीं, तंतुवाय की स्त्री कहे तो कोई शोक नहीं, शोक तो इस बात का है कि तुम लिखे पढ़े विद्वान् होकर कहते हो कि बढ़ई मेज के एक एक अवयव में धँस गया, यह कभी संभव है—कभी आज तक ऐसा हुआ है कि आज ही अनोखा मिस्त्री मेज में लंबी तानेगा ? पं० जी को बड़ा क्रोध आया और आप बोल उठे कि वाह वाह शास्त्रीजी आप भी खूब कहते हैं यदि घट का निमित्त कारण कुम्भार घट में नहीं धँस सकता, वस्त्र का निमित्त कारण तंतुवाय वस्त्र में व्यापक नहीं हो सकता, मेज का निमित्त कारण रथकार मेज में व्यापक नहीं होता तो फिर याद रखिये कि संसार का निमित्त कारण ईश्वर भी संसार में व्यापक न हो सकेगा। जब कमंडलु का बनाने वाला ठठेरा कमंडलु में नहीं धँसता, आभूषण का बनाने वाला सुनार आभूषण में व्यापक नहीं होता, कुठार का निर्माता अयस्कार कभी कुठार में नहीं धँसा, इत्यादि जब

कोई भी निमित्त कारण (कार्यकर्ता) कार्य में नहीं धँसता तो फिर संसार का बनाने वाला ईश्वर संसार में कैसे धँसेगा। इस उदाहरण से पाठक समझ गये होंगे कि वस्तुओं के बनाने वाले वस्तुओं में नहीं धँसते तो फिर ईश्वर कैसे व्यापक होगा। इनका ईश्वर व्यापक हो नहीं सकता, ईश्वर के रहने का ये दूसरा स्थान बतला नहीं सकते, अतएव सिद्ध हो गया कि दार्शनिक विचार के आगे इनका मत बच्चों का खेल है।

कुन।

अब 'कुन' वालों की कथा सुनिये। इनका कथन है कि जब ईश्वर की सृष्टि रचने की इच्छा हुई तब ईश्वर ने कहा कि कुन (हो जा) ईश्वर के इतना कहने पर संसार बन गया। ६ दिन में संसार बन गया और सप्तम दिन ईश्वर तान दुपट्टा सो गये। इनसे भी हमारा प्रश्न है कि जिस ईश्वर ने संसार के बनने की आज्ञा दी है वह तुम्हारा ईश्वर कहां है? ये भी उत्तर देते हैं कि सब जगह, किन्तु इनका यह कहना पागल के भाषण से अधिक कुछ भी गौरव नहीं रखता। इसमें उदाहरण देखिये—भारतवर्ष में जो रेल बिछी है वह किस के हुक्म से बिछी है? आप कहेंगे कि भारत गवर्नमेण्ट की आज्ञा से। हमने एक पुरुष से प्रश्न किया कि भारत गवर्नमेण्ट कहां रहती है? उसने उत्तर दिया कि रेल के एक एक परमाणु में व्यापक है। क्या यह उत्तर ठीक है? रेल के बनने की आज्ञा देने वाली भारत

गवर्नमेण्ट रेल में धँस बैठेगी ? यदि नहीं धँसती तो फिर संसार के बनने की आज्ञा देने वाला ईश्वर संसार में किस न्याय से व्यापक होगा।

दूसरा उदाहरण देखिये—कल्पना करो कि हम और आप सक्खर शहर के सिंध नदी के पुल पर पहुंचे। अद्वितीय पुल को देख कर मन बड़ा प्रसन्न हुआ, हमने वहां पर खड़े हुऐ एक मनुष्य से पूछा कि यह पुल किसके हुक्म से बना ? उसने उत्तर दिया कि ब्रिटिश गवर्नमेंट के हुक्म से। हमने फिर प्रश्न किया कि वह ब्रिटिश गवर्नमेंट कहां है ? उसने उत्तर दिया कि इस पुल में व्यापक है। हमने उससे पूछा कि क्या तुम पागल हो गये हो ब्रिटिश गवर्नमेंट इसमें कैसे धँसेगी ? उसने उत्तर दिया कि यदि पुल के बनने की आज्ञा देने वाली ब्रिटिश गवर्नमेंट पुल के एक एक जर्रे में नहीं प्रविष्ट होती तो फिर संसार के बनने की आज्ञा देनेवाला ईश्वर संसार के एक एक परमाणु में व्यापक कैसे होगा ? कुन वाले भी ईश्वर को सर्वव्यापक सिद्ध नहीं कर सकते इस कारण दार्शनिक युक्ति के आगे यह मजहब ५ मिनट से अधिक नहीं ठहर सकता।

अभिन्न निमित्तोपादान कारण।

संसार के समस्त मजहब इन्हीं तीन विभागों में बँट सकते हैं और तीनों भाग दार्शनिक कसौटी के सामने कच्चे उतरते हैं इस कारण सभी को मानना पड़ेगा कि समस्त धर्मों के सिद्धान्त

कमजोर हैं अतएव इन धर्मों को विचारशील मनुष्य कभी भी सत्य और मान्य नहीं कह सकते। रही बात "अभिन्न निमित्तोपादान कारण" की। एक धर्म ऐसा है जो ईश्वर को सृष्टि का "अभिन्न निमित्तोपादान कारण" मानता है उसका कथन है कि सृष्टि का बनाने वाला ईश्वर है और सृष्टि बनने का मेटर भी ईश्वर है-जैसे मकड़ी जाले को तनती है और जाले का मेटर भी अपने ही शरीर के एक अंग से उत्पन्न करती है इसी प्रकार ईश्वर अपने एक अंश से स्थूल मेटर को उत्पन्न करके इस सृष्टि को रचता है। भाव यह है कि सृष्टि का बनाने वाला (निमित्त कारण) भी ईश्वर है और सृष्टि के बनने का मेटर (उपादान कारण) भी ईश्वर है। यह धर्म बड़ा मजबूत है, एक भी दार्शनिक युक्ति इसको काट नहीं सकती। परीक्षा के लिये हम एक प्रश्न इससे भी करते हैं। इस धर्म से हम पूछते हैं कि तुम्हारा ईश्वर कहां रहता है? यह कहता है कि वह तो सर्वव्यापक है। हम फिर प्रश्न करते हैं कि सर्वव्यापक कैसे है? तो यह कहता है कि जैसे घट के एक एक परमाणु में मिट्टी है क्योंकि घट मिट्टी से बना है, इसी प्रकार संसार के एक एक परमाणु में ब्रह्म है क्योंकि संसार ब्रह्म से बना है। जैसे कुठार के एक एक अंश में लोहा है क्योंकि कुठार लोहे से बना है, जैसे कपड़े के एक एक अंश में सूत है क्योंकि कपड़ा सूत से बना है, जैसे कटक कुंडल के एक एक अंश में सुवर्ण है क्योंकि वह सुवर्ण से बना है, इसी अटल सिद्धान्त के

अनुसार संसार के एक एक अंश में 'ब्रह्म है क्योंकि संसार ब्रह्म से बना है। इसी प्रकार इसके काटने के लिये जितनी दार्शनिक युक्तियां तैयार की जाती हैं ये उन युक्तियों पर गंभीर भाव से तोपदायक अपने धर्म को दृढ़ बनाने योग्य उत्तर देता रहता है, इस कारण भूमंडल के विद्वानों ने इसी धर्म को स्वीकार किया है। इस धर्म का नाम है "श्रीसनातनधर्म"। संसार के समस्त धर्म दार्शनिक युक्तियों के आगे उड़ जाते हैं किन्तु इसके आगे दार्शनिक युक्तियां ही अपने विवाद को त्याग कर इसके चरणों में जा पड़ती है, इससे अधिक गौरव और क्या हो सकता है ?

आधुनिक साइंस ।

(१०) आजकल आधुनिक साइंस का नाम सुनते ही मजहब प्राण छोड़ देते हैं, घबरा जाते हैं, चाहे आधुनिक साइंस के नाम से कोई झूठी गप्प बना कर तैयार की हो किन्तु मजहबों का कचूमर निकालने के लिये वही तोपदायक हो जाती है। इतना साहस किसी मजहब में नहीं है कि बनावटी साइंस के दो थप्पड़ लगा कर उसकी अक्ल ठिकाने बिठला दे, यदि यह शक्ति किसी धर्म में है तो उसका नाम श्रीसनातनधर्म है। आज कल साइंस का नाम बदनाम करके मदरसों के बहकाये हुये लोग यह कहा करते हैं कि पृथ्वी घूमती है। इस विषय में न तो इनमें स्वाभाविक बुद्धि है और न इस विषय में इन्होंने कुछ विद्या ही पढ़ी है, जैसे छोटे बच्चे को माता 'अम्मा' कहना

सिखला देती है और फिर माता के सिखलाने पर वह बच्चा 'अम्मा' 'अम्मा' कहता रहता है। इसी प्रकार लड़के जब मदरसे में धँसते हैं तो उनकी बुद्धियों पर जहालत का पर्दा डाल दिया जाता है। इस प्रकार से मास्टरों के पढ़ाये हुये लड़के 'सूर्य नहीं घूमता' 'पृथ्वी घूमती है' यही चिल्लाते फिरा करते हैं। इनको यह भी मालूम नहीं कि संसार में सबसे प्रथम इस सिद्धान्त को संसार के आगे किसने रक्खा और जो पृथ्वी को अचला मानते हैं उनकी तरफ से इस सिद्धान्त को किस प्रकार मिट्टी में मिलाया गया। सब से प्रथम ईरान के दार्शनिक महाशय 'पैथागोरास' ने संसार के आगे यह रक्खा कि "ग्रहगणों का अपनी अपनी स्पष्ट दैनिक गति से पूर्वाभिमुख भ्रमण करना तो ठीक है किन्तु प्रवहवायु की गति से भपंजरों सहित सूर्यादि ग्रहगणों का २४ घंटा एक दिन रात में एक बार पृथ्वी के चारों ओर पश्चिमाभिमुख भ्रमण करना केवल कल्पना मात्र है। वास्तव में २४ घंटा एक दिन रात में एक बार पृथ्वी ही अपने अक्ष (धुरी) पर पूर्वाभिमुख भ्रमण कर जाती है अतएव यह मिथ्या भान होता है कि ये अपार भपंजरों सहित सूर्यादि ग्रहगण समान गति से पश्चिमाभिमुख चलते हैं"। इसके पश्चात् इसी सिद्धान्त को योरुप में मिस्टर 'केप्लर' ने पबलिक के आगे रक्खा, इनके बाद 'सर न्यूटन' ने इसी सिद्धान्त की पुष्टि की।

इनके पास एक करामात है जिससे ये पृथ्वी का घूमना

सिद्ध करते हैं वह यह है कि जैसे नाव में बैठे हुये मनुष्यों को नदी तीर के वृक्ष चलते दिखलाई देते हैं इसी प्रकार पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यों को सूर्यादि ग्रह घूमते नजर आते हैं। जिस प्रकार वृक्ष नहीं चलते और नाव चलती है उसी प्रकार ग्रह नहीं चलते किन्तु पृथ्वी चलती है।

बड़ी कमजोर पुष्टि है. नाव का उदाहरण दिया जो खुद चल रही है तीर का उदाहरण नहीं दिया जो चलता नहीं, तीर (किनारे) पर खड़े हुये मनुष्यों को ठीक नाव का चलना मालूम होता है क्योंकि किनारा चलता नहीं। इसी प्रकार तीर के सदृश तो पृथ्वी अचला है और नाव के सदृश ग्रह घूमते हैं। नाव का स्थित रहना और वृक्षों का घूमना यह दृष्टान्त तब दिया जा सकता था जब हम पृथ्वी का घूमना मान लेते, हमतो घूमना ही नहीं मानते फिर चलने वाली नाव का दृष्टान्त अचला पृथ्वी से क्यों मिलाया जाता है? इधर पृथ्वी अचल है उधर किनारा अचल है किनारे से और पृथ्वी से समता होने पर यह दृष्टान्त ही पोच हो जाता है।

पृथ्वी के चलने में संस्कृत के विद्वानों ने ऐसी अनेक युक्तियां दी हैं जिन युक्तियों को सुन कर पृथ्वी के घुमाने वालों की बुद्धि चक्कर में पड़ जाती है और अपनी जान छुड़ाने के लिये फिर उनको मौनावलम्बन करना होता है। सुनिये प्रमाण—

यथोष्णताऽर्कानलयोश्च शीतता
विधौ द्रुतिः के कठिनत्वमश्मनि।

मरुच्चलो भूरचला स्वभावतो
यतो विचित्रा वत वस्तुशक्तयः ॥

भास्कर।

जैसे सूर्य और अग्नि में उष्णता, चन्द्रमा में शीतलता, जल में गति, पाषाण में स्वभाव से कठिनता है ऐसे ही स्वभाव से पृथ्वी अचल है, वस्तुओं की शक्ति विचित्र है।

सिद्धान्त शिरोमणि के रचयिता भास्कराचार्य ने अचलत्व पृथ्वी का स्वाभाविक धर्म माना है ये विना बहस के पृथ्वी को अचला बतला गये किन्तु वराहमिहिराचार्य का यह ध्यान हुआ कि हुज्जतबाज केवल आज्ञा मात्र से नहीं मानेंगे इस कारण कुछ युक्तियां ऐसी दे दी जावें जिनके ऊपर पृथ्वी भ्रमण मानने वालों की चीं चपट बन्द ही हो जाय, इसको दृष्टि में रख कर वराहमिहिराचार्य लिखते हैं कि—

भ्रमति भ्रमस्थितेव क्षिति-
रित्यपरे वदन्ति नोडुगणः।
यद्येवं श्येनाद्या नखात्पुनः
स्वनिलयमुपेयुः ॥ १ ॥
अन्यच्च भवेद्भूमेरन्हा,
भ्रमरंहसा ध्वजादीनाम् ।
नित्यं पश्चात्प्रेरण
मथाल्पगा स्यात्कथं भ्रमति ॥ २ ॥

जो यह कहते हैं कि पृथ्वी ही घूमती है भपंजर नहीं घूमता तो उनसे हमारा यह प्रश्न है कि ऐसा होने पर पक्षी अपने घोसलों में नहीं जा सकेंगे। इसको इस प्रकार समझिये कि पृथ्वी की परिधि २५ हजार मील है और २४ घंटे में उसको अपना दौरा पूरा करना है इसके ऊपर यदि हम अनुपात लगावें तो एक घंटे में पृथ्वी एक हजार ४१ मील चलती है और १ मिनट में १७ मील चलती है। एक कबूतर प्रातःकाल ६ बजे उड़ कर आकाश में पहुंचा और वह ४ घंटे तक उड़ता रहा, अब वह अपने घोसले में आना चाहता है, क्या अब वह घोसले में पहुंच सकेगा? नहीं पहुंच सकता क्योंकि ४ घंटे में तो उसका घोसला ४ हजार १६४ मील चला गया, अब यह विचारा घोसले में पहुंचने से रह गया। कल्पना करो कि एक कबूतर अभी आकाश को उड़ा है और तीन मिनट उड़ कर वह लौटा है, अब यह भी घोसले में जाना चाहता है, क्या इसको घोसला मिल जावेगा? इसको भी नहीं मिल सकता क्योंकि ३ मिनट में इसका घोसला ५१ मील पूर्व निकल गया और अब यह कबूतर घोंसले को जा रहा है कबूतर की चाल धीमी है और पृथ्वी की चाल तेज है इस कारण आगे आगे कबूतर तथा घोसले का फासला और भी बढ़ता जावेगा इसके विरुद्ध दोनों कबूतर अपने घोसले में आ जाते हैं फिर हम कैसे मानलें कि पृथ्वी चलती है।

कई एक सज्जनों का यह कथन है कि कबूतर पर भूवायु-

द्वारा आकर्षण पड़ता है इस कारण कबूतर हमेशा घोसले की तरफ को खिंचता रहता है, अब वह दूर कैसे निकलेगा। जो लोग आकर्षण और भूवायु के महत्व को नहीं जानते उनका ही यह कथन है। यदि आकर्षणशक्ति का यही अर्थ है तब तो आकाश में एक भी बादल न रह सकेगा, बादल आया कि फौरन आकर्षण ने पृथ्वी पर डाल दिया और भूवायु उसकी गति को रोक कर आगे न बढ़ने देगी। दूसरा उदाहरण सुनिये-कल्पना करो कि कानपुर में एक हवाई जहाज आ गया, वह घंटे में ५० मील चलता है, अब तुम उसको पूर्व को ले जाओगे तो एक घंटे में ५० मील चलेगा यदि पश्चिम को लेजाओगे तब भी उसी चाल से ५० मील पश्चिम जाता है, इसी चाल से एक घंटे में दक्षिण को ५० मील जाता है उत्तर में भी ५० मील जाता है। भूवायु और आकर्षण से इसकी चाल में फरक क्यों नहीं पड़ता? क्या मजे की बात है पृथ्वी आकर्षण शक्ति से हलके कबूतर को तो अपने तरफ खींचती रहेगी और भारी जहाज जिसके ऊपर आकर्षणशक्ति अधिक पड़ती है, उसको न खैंचेगी, क्या यही विवेक है? इसी का नाम विज्ञान और फिलास्फी है? आकर्षणशक्ति का अभिप्राय तो यह है कि वह वेगशून्य वस्तु को पृथ्वी की तरफ खैंच लेती है किन्तु वेगवाले पदार्थ को आकर्षण नहीं खैंच सकता इसी कारण से जहाज और कबूतर पर आकर्षण का प्रभाव नहीं पड़ सकता, जब कबूतर पर आकर्षण का प्रभाव नहीं तो पृथ्वी घूमनेवालों के मत में

कबूतर को घोसला नहीं मिलेगा। प्रत्यक्ष में कबूतर घोसले में आ जाता है, इसलिये पृथ्वी का घूमना चंडूखाने की गप्प है।

फिर वराहमिहिर लिखते हैं कि "यदि पृथ्वी तीव्रवेग से पूर्वाभिमुखी भ्रमण करती है तो ध्वजा पताका पृथ्वी के वेग से सर्वदा पश्चिम को तरफ को ही उड़ेंगी और यदि पृथ्वी मंद वेग से पूर्व को चलती है, ऐसी दशा में २४ घंटे में उसका पूर्ण भ्रमण नहीं हो सकेगा"। वराहमिहिर के इस लेख का अभिप्राय यह है कि पृथ्वी २४ घंटे में २५ हजार मील घूमती है और एक घंटे में १०४१ मील घूमती है। बड़ी तेज चाल है। इस तेज चाल से आकाश में भारी धक्का लगेगा उस धक्के से जोरदार तीव्र वायु (आंधी) पैदा होगी, पृथ्वी पूर्व को जा रही है धक्के का वायु पश्चिम को जायगा इस कारण संसार की समस्त ध्वजा पताका सर्वदा बड़े जोर से पश्चिम को उड़ेंगी, ये सर्वदा पश्चिम को नहीं उड़तीं इस कारण पृथ्वी के भ्रमण को मानने वाले विवेकशून्य हैं। यदि कोई कहे कि हम इतने वेग से थोड़े ही घुमाते हैं जो पृथ्वी जल्दी जल्दी घूमे और आकाश में धक्का लगे तथा एक घंटे में पृथ्वी एक हजार मील चली जावे। यदि धीरे घुमाओगे तो पृथ्वी २४ घंटे में अपना दौरा भी न कर सकेगी, यह वराहमिहिर का अभिप्राय है।

अब इस विषय में कुछ लल्ल का भी कथन सुनिये—

यदि च भ्रमति क्ष्मा तदा

स्वकुलायं कथमाप्नुयुः खगाः।

इषवोऽम्बिनभः समुज्झिता:
निपतन्तः स्युरपाम्पतेर्दिशि ॥ १ ॥
पूर्वाभिमुखे भ्रमे भुवो
वरुणाशाभिमुखो व्रजेद्घनः ।
अथ मंदगमात्तदा भवेत्
कथमेकेन दिवा परिभ्रमः ॥ २ ॥

यदि पृथ्वी चलती है तो फिर पक्षी अपने घोसलों में नहीं पहुंच सकेंगे और आकाश का फेंका हुआ बाण पश्चिम में गिरेगा। लल्ल ने पहले पक्षियों की बात कही है यह तो वही है जो वराहमिहिर ने कही थी किन्तु बाण की बात दूसरी है इसका स्पष्टीकरण सुनिये। कल्पना करो कि एक मनुष्य ने धनुष पर रख कर तीर ऊपर को फेंका अब वह तीर पश्चिम में गिरेगा, कारण इसका यह है कि धनुष से तीर निकल कर आकाश में गया और फिर वहां से लौटा, आने जाने में बाण को लगा आधा मिनट, अब आधे मिनट में जहां से वह बाण ऊपर को फेंका गया है वह भूमि ८॥ साढ़े आठ मील पूर्व को चली गई इस कारण बाण सर्वदा पश्चिम में गिरेगा। प्रत्यक्ष में ऐसा नहीं होता, फिर हम किस न्याय से मान लें कि पृथ्वी घूमती है। लल्ल आगे लिखते हैं कि "यदि पृथ्वी पूर्वाभिमुखी घूमती है तो फिर बादल हमेशा पश्चिम को जायगा। यदि कहो कि पृथ्वी धीरे धीरे चलती है इस कारण बादल पश्चिम को नहीं जाते तो ऐसी मंद गति से एक दिवस में पृथ्वी का

भ्रमण कैसे होगा" । अव वादल के मामले को समझिये। कल्पना करो कि वादल पूर्व को जा रहा है। हमारी पृथ्वी भी पूर्व को जा रही है, बादल की चाल मंद है पृथ्वी की चाल तेज है इस लिये पृथ्वी आगे निकल जावेगी, तव हमको यह मालूम पड़ेगा कि वादल पश्चिम को जा रहा है। पश्चिम को जाने वाला वादल तो पश्चिम को जाता ही है किन्तु पूर्व जाने वाला वादल भी पश्चिम को जाता प्रतीत होगा, इस कारण हमेशा वादल पश्चिम को जाया करेंगे । संसार में यह वात हमको दिखलाई नहीं देती फिर हम पृथ्वी भ्रमण को कैसे मान लें ?

योरुप, भारत के आगे पृथ्वी-भ्रमण तो क्या सिद्ध करेगा अभी तो योरुप को पृथ्वी के स्वरूप का भी ज्ञान नहीं हुआ। जव हम पश्चिमीय शिक्षा से शिक्षित किसी मनुष्य से पूछते हैं कि पृथ्वी का क्या स्वरूप है, तो वह उत्तर देता है कि पृथ्वी नारंगी की शकल की है। हम पूछते हैं कि इसमें प्रमाण क्या है तो हमको उत्तर मिलता है कि प्रमाण तो हम नहीं जानते हमको ऐसा पढाया जाता है। संस्कृत साहित्य कहता है कि पृथ्वी की नारंगी की शकल नहीं किन्तु गोल गेंद की शकल है। जव हम संस्कृत साहित्य से पूछते हैं कि इसमें प्रमाण क्या ? तो वह हमको वतलाता है कि आप छत पर खड़े होकर एक अंजुली जल भर कर नीचे फेकें, नीचे फेंकने समय जल के जितने भाग होंगे वे सव गेंद की तरह से गोल हो जावेंगे। इसी प्रकार जव

यह पृथ्वी आर्द्र थी और आकर्षणशक्ति न होने के कारण गोल होकर नीचे को गिर रही थी, इसी दशा में यह कठोर बनी और चारो तरफ से सिकुड़ती हुई उसी गेंद की दशा में बनी रही। अब हम कैसे मान लें कि पृथ्वी की नारंगी की शकल है। जब योरुप पृथ्वी की शकल ही नहीं जानता तो पृथ्वी का चलना कैसे सिद्ध कर देगा। वराहमिहिर और लल्ल के युक्तिवाद से पृथ्वी का भ्रमण उड़ जाता है। भूभ्रमण को उड़ाने वाला यदि कोई धर्म पृथ्वी पर है तो वह श्रीसनातनधर्म है। बनावटी साइंस जिसके आगे चीं बोल जाय क्या उस प्रबल विश्वविजयी "श्रीसनातनधर्म" में कुछ भी गौरव नहीं? तुमको मानना पड़ेगा कि निःसन्देह सनातनधर्म बड़ा प्रबल है इसके तुल्य विज्ञानी भूतल पर एक भी धर्म नहीं। बोलिये प्रभु रामचन्द्र की जय।

कालूराम शास्त्री।

* श्रीगणेशाय नमः *

ईश्वरस्वरूप ।

येनोद्धृता वसुमती सलिले निमग्ना
नग्ना च पाण्डववधूः स्थगिता दुकूलैः ।
संमोचितो जलचरस्य मुखाद्गजेन्द्रो
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबंधुः ॥ १ ॥

पालन कियो न धर्म को, नहिं जान्यो करतार ।
धरा न कबहूं सहि सकै, इन दुष्टन को भार ॥ २ ॥

श्वर ने जितनी वस्तुयें संसार में रची हैं ये सब संसार का उपकार करती हुई अपने जीवन को पूरा करती हैं। नदियां जल द्वारा संसार का उपकार करती हैं तो वृक्ष फल फूल पत्र और लकड़ी द्वारा, पशु बोझ ढोकर दूध देकर हड्डी चमड़े से संसार का उपकार करते है तो मनुष्य धर्माचरण से संसार का उपकार करते हुये ईश्वर की भक्ति में निमग्न होकर जड़ चेतन संसार को प्रेमदृष्टि से देखते हैं किन्तु जो मनुष्य धर्माचरण नहीं करता और जिसने ईश्वर के प्रेम में गोता नहीं लगाया उसको देख कर पृथ्वी यह सोचती है कि यह निकम्मा, फ़िजूल, बेकार पत्थर ईश्वर ने

मेरी छाती पर क्यों रख दिया। मनुष्यजन्म पाने के दो ही प्रयोजन हैं—एक तो धर्माचरण से संसार का उपकार करना दूसरे भक्तिसागर में गोता लगा कर ससार को प्रेमदृष्टि से अवलोकन कर अपने जन्म-मरण के बंधन को तोड़ देना यही मनुष्य के जन्म का सार है। किन्तु आज योरुप के प्रभाव से भारतवर्ष का भी वायु दूषित हो उठा है। आजकल के लोग ईश्वर के ज्ञान की कोई आवश्यकता ही नहीं समझते, ईश्वर का स्वरूप चाहे जैसा हो हम से क्या मतलब, जैसा हो वैसा बना रहे-हमें जानने की क्या आवश्यकता। मनुष्यों की इस बेपरवाही ने ईश्वर के स्वरूप में भी गड़बड़ी डाल कर संदेह पैदा कर दिया। कोई कहता है ईश्वर साकार है, कोई कहता है ईश्वर निराकार है। आज ५१ वर्ष से भारतवर्ष में यह झगड़ा चल रहा है कि ईश्वर साकार है या निराकार। भारतवर्ष है वीर जो ५१ वर्ष में भी एक बात न जान सका। कई एक सज्जन यह पूछा करते हैं कि क्यों पं० जी महाराज ५१ वर्ष में भी साकार निराकार का फैसला नहीं हुआ इसकी क्या वजह है? हम इसकी दो वजह बतलाया करते हैं एक तो यह कि आजकल के लोग ईश्वर से असहयोग कर बैठे हैं अब उनको यह आवश्यकता नहीं रह गई कि वे इस बात की तहकीकात करें कि ईश्वर निराकार है या साकार, (२) जो लोग यह जानना चाहते हैं कि वास्तव में ईश्वर साकार है या निराकार तो उनके ज्ञान के रास्ते में चालबाज एक ऐसा भयंकर पर्दा

डाल देते हैं कि हजारों मील मार्ग तै करने पर भी उनको ईश्वर के असली स्वरूप का दर्शन नहीं होता। चालबाजों के चाल के पर्दों में निराकार ही निराकार दीख पड़ता है। अपनी प्रतिष्ठा जमाने के लिये चालाक मनुष्य बड़ी २ चालाकियां करते हैं।

चालाकी।

इसके ऊपर हमको एक दृष्टान्त याद आ गया। एक ग्राम में एक गृहस्थ के घर में रात्रि को नित्य तुलसीकृत रामायण की कथा हुआ करती थी। एक दिन इस गृहस्थ के यहां एक पंडित आ गये, इस गृहस्थ ने उनको ठहराया, भोजन का प्रबंध किया। सायंकाल रामायण की कथा होने लगी। इस कथा में पहिली चौपाई यह निकली—

भूप सहसदश एकहि बारा।
लगे उठावन टरे न टारा॥

कथा बांचने वाले ने अर्थ किया कि राजा तो हैं दशहजार और धनुप है एक, दश हजार राजा उस धनुप को उठाते हैं किन्तु वह धनुप टारा नहीं टरता।

इस अर्थ को उस अतिथि पंडित ने सुना, वह बड़ा चालाक था, फौरन बोल उठा कि तुम अर्थ गलत करते हो 'भूप सहसदश एकहि बारा' इस चौपाई में तो कहीं धनुप का नाम भी नहीं, फिर तुम अपनी तरफ से चौपाई के अर्थ में धनुप क्यों

मिलाते हो ? इस आश्चर्यमयी बात को सुन कर वक्ता और समस्त श्रोता बोल उठे कि फिर पंडितजी महाराज इस चौपाई का क्या अर्थ है ? पंडितजी ने कहा कि सीता के स्वयंवर में जनक के यहां प्रदर्शिनी भी हुई थी उस प्रदर्शिनी में एक वारा (बड़ा) भी रक्खा गया था वही चौपाई में लिखा है कि राजा तो है दश हजार और उर्द की पीठी का वारा है एक, दश हजार राजा उस वारा (दही बड़ा) को उठाते हैं किन्तु वह इतना बड़ा है कि दश हजार राजाओं से भी नहीं उठता। यह विलक्षण अर्थ सुन कर श्रोता बोले कि इतने बड़े वारे के लिये कड़ाही कहां से आई होगी ? उस पंडितजी ने कहा कि कड़ाही का समाचार तो रामायण में लिखा है। श्रोता बोल उठे कि रामायण में तो ऐसी कड़ाही का जिकर नहीं है। पंडितजी ने कहा कि तुम रामायण जानते ही नहीं, देखो रामायण—

कोटि कोटि मुनि जतन कराही।

मुनियों ने कोटि कोटि जतन किये तब कराही मिली। लोगों ने कहा कि तो महाराज चूल्हा कितना बड़ा बना होगा। पंडितजी बोले चूल्हे का क्या काम, कड़ाही मैदान में रक्खी थी और बादल जलता बलता गर्म तेल बरसा गया, उस गर्म तेल में वारा पक गया। श्रोताओं ने कहा कि यह कहां लिखा है ? पंडितजी बोले रामायण में, सुनिये—

बारिद तप्त तैल जिमि बर्षा।

बादल ने जलता बलता गर्म तेल वर्षा दिया उसमें बड़ा

पक गया। श्रोता बोले कि महाराज फिर वह बारा कहां गया? पंडितजी ने उत्तर दिया कि एक मनुष्य आया और उसको उठा कर खा गया। श्रोताओं ने कहा कि यह कहां लिखा है? पंडितजी बोले रामायण में लिखा है, सुनिये—

कबहुं न मिल भर उदर अहारा।
आज दीन्ह विधि एकहि बारा॥

कभी भी पेट भर कर भोजन नहीं मिला था आज ब्रह्मा ने एक ही बारा ऐसा दे दिया कि खूब पेट भर गया।

श्रोता लोग समझ गये होंगे कि कहां की चौपाई कहां लगा कर इस पंडितजी ने जनक की नुमायश और नुमायश का बड़ा सिद्ध किया है। इसी प्रकार की चालाकियों से ईश्वर को निराकार सिद्ध कर दिया जाता है। जिन लोगों ने तुलसीकृत रामायण पढ़ी है वे लोग तो पंडितजी की चालाकी को समझ गये होंगे किन्तु जिन्होंने रामायण नहीं पढ़ी वे लोग तो चक्कर में फंस ही जाते हैं। इसी प्रकार जो लोग वेद जानते हैं वे समझ लेते हैं कि चालाकी से ईश्वर को निराकार बना रहा है किन्तु जो वेद नहीं पढ़े उनको तो भ्रम में पड़ जाना ही पड़ेगा।

श्रोताओं को समझाने के लिये एक उदाहरण रामायण का और सुनाता हूं। एक रोज हमको एक निराकारवादी मिले और हमसे बोले कि पं० जी हमको नहीं मालूम आप ईश्वर को किस आधार से साकार कहते हैं, वेदों की बात तो जाने दीजिये, पुराणों का भी जिक्र छोड़िये, तुलसीकृत

रामायण को ही देख लीजिये, उसमें भी तो ईश्वर को निराकार लिखा है। हमने कहा कि क्या तुलसीकृत रामायण में ईश्वर बिल्कुल निराकार लिखा है? इतना सुन कर इस महात्मा ने कहा कि बिल्कुल सोलह आने निराकार लिखा है, तुलसीकृत रामायण में ईश्वर के साकार की गंध तक नहीं। हमने उससे कहा कि सुनाइये कहां निराकार लिखा है? इतना सुन कर ये महात्मा बोल उठे कि सुनिये—

> बिन पद चले सुने बिन काना।
> कर बिन कर्म करे विधि नाना॥
> आननरहित सकल रस भोगी।
> बिन वाणी वक्ता बड़ योगी॥
> तन बिन स्पर्श नयन बिन देखा।
> ग्रहे घ्राण बिन वास अशेषा॥
> अस सबभांति अलौकिक करणी।
> महिमा जासु जाय नहिं बरणी॥

ये चौपाइयां सुना कर इनका अर्थ भी समझाया और बोले कि देखिये तुलसीकृत रामायण भी तो ईश्वर को निराकार बतला रही है। हमने इसको सुन कर इनसे कहा कि जिस रामायण में आपकी चौपाइयां लिखी हैं उसी रामायण में यह भी तो लिखा है कि—

> जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेशा।
> तुमहिं लागि धरिहौं नर वेषा॥

हे मुनियो और हे सिद्धो, तथा हे देवताओ! तुम मत डरो मैं अब तुम्हारे लिये मनुष्यशरीर धारण करूंगा। आकाशवाणी की इन चौपाइयों से तुम ईश्वर को किस प्रकार निराकार बनाओगे? इतना सुन कर ये हजरत बोले कि सनातनधर्मी बड़े अडंगेबाज होते हैं हमने तो किष्किधाकाण्ड की बात कही और ये पंडितजी बालकाण्ड में पहुंच गये, क्या हम बालकाण्ड को प्रमाण मानते हैं जो हमको बालकाण्ड की चौपाई सुनाते हो। हमने कहा कि आप बालकाण्ड को प्रमाण नहीं मानते? उन्होंने उत्तर दिया कि हरगिज नहीं। फिर हमने पूछा कि तो आप कौन काण्ड को प्रमाण मानते हो? उन्होंने कहा कि किष्किन्धाकाण्ड को। हमने कहा तो अच्छा कोई हर्ज नहीं अब किष्किन्धाकाण्ड ही सुनिये, इतना कह कर हमने चौपाई सुनाने का लग्गा लगाया—

बिन पद चले सुने बिन काना।
कर बिन कर्म करे बिधि नाना॥
आननरहित सकल रस भोगी।
बिन वाणी वक्ता बड़ योगी॥
तन बिन स्पर्श नयन बिन देखा।
ग्रहे घ्राण बिन वास अशेषा॥
अस सब भांति अलौकिक करणी।
महिमा जासु जाय नहिं बरणी॥

जेहि इमि गावहिं वेद बुध, जाहि धरैं मुनि ध्यान।
सोइ दशरथसुत भक्त हित, कोशलपति भगवान॥

जिसको चौपाई के कहे हुये प्रकार से वेद और बुध पंडित गाते हैं तथा मुनि जिसका ध्यान धरते हैं वही भगवान भक्तों की रक्षा के कारण दशरथ के सुत होकर प्रकट हुये। इसको सुन कर ये कृपानिधान बोले कि आपने दोहा नाहक पढ़ दिया क्या हम इस दोहे को प्रमाण मानते हैं जो आपने दोहे को आगे रख कर रामचन्द्रजी को ईश्वर बना दिया। इसको सुन कर हमने पूछा कि क्या आप दोहे को बिल्कुल नहीं मानते ? उन्होंने जवाब दिया कि ऐसी असंभव बात को हम कैसे मानेंगे। हमने कहा तब तो आप अपनी गर्ज के लेख को प्रमाण मानते हैं। इतना सुन कर वह चल दिया। जैसे रामायण में ईश्वर को साकार कहने वाले प्रमाणों को दबा दिया जाता है और ईश्वर को निराकार कहने वाले प्रमाण को आगे रक्खा जाता है बस यही चालाकी वेदों के प्रमाणों में की जाती है। जो प्रमाण ईश्वर को साकार कहता है वह छोड़ दिया जाता है और जो निराकार कहता है वह पबलिक के आगे रख दिया जाता है। आज इस प्रकार से ईश्वर निराकार बतलाया जाता है। अब हम वेदों को आप लोगों के आगे रखते हैं, सुनते जाइये। ईश्वर के निराकार होने में जो वेद का एक मंत्र दिया जाता है वह यह है—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण
मस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भू-
र्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥

यजु० ४० मं० ८

जो ऐसे आत्मा को देखता है वह ऐसे ब्रह्म को प्राप्त होता है—कैसे ब्रह्म को प्राप्त होता है जो शुक्र पराक्रम युक्त है, जो ब्रह्म अकाय—शरीररहित है, उसके शरीर नहीं इस कारण अव्रण फोड़ा फुंसी रहित है, शरीररहित होने से नस नाड़ी रहित है, वह ब्रह्म शुद्ध विज्ञानानन्द है अतएव अपापविद्ध पापरहित है।

इस मंत्र में जो ईश्वर को निराकार सिद्ध किया जाता है उसमें दो चाले हैं—(१) चाल तो यह है कि पूर्वार्द्ध का ठीक अर्थ न करके मनमाना अर्थ कर लेना, इनके मनमाने अर्थ के दोष ये है। जब ईश्वर 'अकाय' शरीररहित है, शरीर उसके है ही नहीं तो फिर वेद ने यह क्यों कहा कि "अव्रणम्, अस्नाविरम्, शुद्धम्, अपापविद्धम्" अर्थात् उसके फोड़ाफुंसी नहीं, वह नस नाड़ी के बंधन में नहो, वह शुद्ध है और पाप-रहित है। खाली 'अकाय' शब्द कह देने से ही फोड़ा फुंसी, नसनाड़ी, अशुद्धता, पापशून्यता स्वतः सिद्ध हो जाती थी। ये चार पद मंत्र में क्यों डाले जो 'अकाय' के विपरीत अर्थ को उत्पन्न कर देते है। इसको समझिये। एक मनुष्य ने अपने

किसी मित्र से पूछा कि आप के कोई पुत्र भी है ? मित्र ने उत्तर दिया कि मेरे पुत्र नहीं, उसके एक आंख नही, उसके दो अंगुली नहीं, वह मलीन नहीं रहता, वह मूर्ख नहीं। अब क्या समझे ? अब तो यही समझना पड़ेगा कि आंखरहित, दो अंगुलीरहित, मलीनतारहित, मूर्खतारहित, दत्तक लड़का अवश्य है, यदि नहीं है तो ये चारो बातें कहना निष्प्रयोजन हैं। बस ऐसा ही हाल मंत्र में है। पहिले कहा ईश्वर के शरीर नहीं और फिर कहा फोड़ा फुंसी नहीं, नस नाड़ी का बंधन नहीं, वह शुद्ध है, उसके पाप का लेश नहीं। इस चक्करदार वेद के उपदेश से जो मतलब निकलना था उसको पबलिक के आगे नहीं आने दिया। अब हम समझाते हैं, समझिये—'काय' कहते हैं शरीर को। शरीर को काय क्यों कहते हैं "चिनोति सुखदुःखादिकं यस्मिंस्तत्कायम्" इकट्ठे किये जाते हैं सुखदुःखादिक जिसमें उसका नाम है काय। यह वेद और शास्त्रों का सिद्धान्त है कि सुखदुःखादिक कर्म के भोगने के लिये ही शरीर होता है, और ईश्वर कैसा है वह 'अकाय' है, सुखदु ख रूप शरीर रहित है अर्थात् कर्मबंधन युक्त उसका शरीर नहीं, इच्छा तनु है, जब स्वेच्छा तनु है तो फोड़ा फुंसीरहित, नस नाड़ीरहित, शुद्ध और पापरहित है 'अकाय' पद से ईश्वर के सर्वथा शरीर धारण का निषेध न मान बैठें किन्तु कर्मबंधन रूप ही शरीर का निषेध है इस बात को सिद्ध करने के लिये ये चार विशेषण डाले हैं। फोड़ा फुंसी नस नाड़ी का बंधन, पाप और अशुद्धता

ये चारो कर्मबंधन से होती है, ईश्वर के कर्मबंधन है नहीं इस कारण परमात्मा के स्वेच्छातनु में इन चारो का अभाव है। मंत्र के इस गूढ़ अभिप्राय का गला घोट चार पदों को व्यर्थ करके मनमाना अर्थ कर लेना निःसन्देह ससार की आंख में धूल झोंकना है। यह कथा तो पूर्वार्द्ध की रही।

(२) अब उत्तरार्द्ध का हाल सुनिये । मंत्र के उत्तरार्द्ध में स्पष्टरूप से ईश्वर को साकार लिखा है, जिसको ये छिपाते हैं, इसको इस प्रकार समझिये-उत्तरार्द्ध में "परिभूः" शब्द आया है, यह शब्द 'भू' धातु से बना है और इसमें 'परि' उपसर्ग है जिसका अर्थ होता है "परितो भवतीति परिभूः" चारो तरफ से जो प्रकट हो उसका नाम 'परिभूः' है। प्रकट होने वाला सर्वथा दृश्य होता है। 'परिभूः' के आगे 'स्वयम्भूः' शब्द है इसका अर्थ है "स्वयं भवतीति स्वयम्भूः" जो अपने आप शरीर धारण करे उसका नाम 'स्वयम्भूः' है। 'स्वयम्भूः' ईश्वर का प्रकट होना मनु ने लिखा है—

ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यंजयन्निदम्।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः॥

मनु० अ० १

प्रलयकाल के अनंतर स्वयंभू भगवान् इस अव्यक्त संसार को प्रकट करने के निमित्त इस पंचमहाभूत और महत्तत्व अहंकार को रचता हुआ प्रकट हुआ।

पूर्वार्द्ध का अर्थ बदला, उत्तरार्द्ध में कहे हुये ईश्वर के साकार रूप को दबाया। इस प्रकार मंत्र को मारकूट, कचूमर निकाल, बनावटी निराकार बना कर पबलिक के आगे रक्खा। क्या संसार का कोई मनुष्य इसको न्याय कह सकता है या इसका नाम धर्म रक्खा गया है। जो वस्तु बनावटी बनाई जाती है चाहे थोड़ी देर तक उसकी कलई न भी खुले किन्तु अन्त में तो खुल ही जाती है। कारीगर लोग मिट्टी के खिलौने बनाते हुये आम नीबू नारंगी अमरूद ऐसे बना देते हैं कि मानो ये साक्षात् फल हैं और अभी वृक्ष से टूट कर आये हैं किन्तु अच्छी तरह से देखने से तो यह जान ही लिया जाता है कि ये मिट्टी के खिलौने बनाये गये हैं। चने गेहूं के खेत को जब हिरण खाने लगते हैं तब कृषक खेत पर फूस के मनुष्य बना कर खड़े कर देते हैं। उनके पैर ठीक बना कर दोनों हाथ पसार देते है कि मानो ये खेत की रक्षा करते हुये पशुओं को भगा रहे हैं। शिर पर मिट्टी की हांडी लगाते हैं और उस हांडी पर काला रंग चढ़ा देते हैं जिससे ठीक मनुष्य का शिर प्रतीत होने लगे। फूस पर मिट्टी लगा कर उसको खड़िया से ऐसा पोतते हैं कि मानो मनुष्य सुफेद कपड़े पहिने है। भाव यह है कि इस फूस के मनुष्य को ऐसा बनाते हैं कि मानो यह सच्चा मनुष्य है, इसको देख कर हरिण भी घबराते हैं किन्तु पांच सात दिन के पश्चात् जब वह रात दिन एक ही स्थान पर खड़ा दीखता है तब हरिण भी समझ जाते हैं कि यह असली मनुष्य नहीं है

हमारे डराने के लिये यह बनावटी खड़ा किया गया है, इतना ज्ञान होने पर हरिण उससे डरते नहीं उसके खड़े रहने पर भी उस खेत की खेती को हरिण खाया करते हैं। जब पशु भी बनावट को जान जाते हैं तो क्या मनुष्य नहीं जानेंगे। वास्तव में निराकारवादियों ने भूतल के जनसमुदाय को मूर्ख समझा है और ये अपने को समझते हैं कि यदि संसार में कोई बुद्धिमान मनुष्य उत्पन्न हुये तो वे हम हैं किसमें शक्ति है जो हमारी चाल को समझ जावे। ये अपने मन में चाहे जो कुछ समझें परन्तु—

सचाई छिप नहीं सकती, बनावट के असूलों से।
खुशबू आ नहीं सकती, कभी कागज के फूलों से॥

संसार में मनुष्य बड़ी बड़ी होशियारियाँ करते हैं। पुलिस और अदालतों के बने रहने पर भी बाज बाज मनुष्य बनावटी नोट, रुपये, अठन्नी, चवन्नी, दुअन्नी, इकन्नी बनाने लगते हैं किन्तु जब गवर्नमेंट को इस बात का पता लग जाता है तब तो गवर्नमेण्ट ऐसे आदमियों को कुछ दिन के लिये बड़े घर भेज देती है। जब गवर्नमेण्ट के सिक्के में चाल करने वाला मनुष्य गवर्नमेण्ट की दृष्टि में पापी और बड़े घर के वेटिंग रूम के योग्य है तब फिर वेदार्थ में चाल करने वाला मनुष्य क्या ईश्वर की दृष्टि में पापी और कुंभीपाक के योग्य न होगा? धर्मशास्त्र डंके की चोट कह रहा है कि जो अर्थ में धोखा देता है वह महापापी है किन्तु निराकारवादी वास्तव में न तो

ईश्वर को मानते हैं और न जन्मान्तर को मानते हैं, न पाप पुण्य को मानते हैं। नास्तिक होने के कारण पाप करना भी इनकी दृष्टि में बुरा नहीं है इसी कारण इनका अन्तःकरण इतना दूषित हो गया है कि मंत्र में जो ईश्वर ने अभिप्राय रक्खा था, उस मंत्र के अर्थ में चाल से अपने अभिप्राय को भरते हैं। इस प्रकार से निर्लज्जता के नाच को नाचने वाले ईश्वर के बड़े दादाओं को दूर से ही नमस्कार करना अच्छा है।

वेद मंत्र में जो चाल की गई है उसको श्रोता समझ गये होंगे, अब इनके पास निराकार का कोई प्रमाण नहीं। यद्यपि चारों वेदों में सैकड़ों मंत्र ऐसे मौजूद हैं जो ईश्वर को साकार कहते हैं और जिनको हम इसके आगे के व्याख्यान में आपको बतलावेंगे परन्तु निराकार का चारों वेदों में यह एक ही मंत्र निकला, इसमें भी चालबाजी से साकार का निराकार बनाया गया। इस मंत्र के अर्थ की कलई खुलने पर इनको चुप हो जाना पड़ता है, क्या करें बेचारे, वेद ने कोई दूसरा मंत्र ही निराकार का न दिया!

ये लोग कोई वेद के आधीन थोड़े ही हैं। वेद इनका साथ न दे, ईश्वर को निराकार न बतलावे तो न सही, ये अपनी दूसरी चालाकी से ईश्वर को निराकार बना लेते हैं। दूसरी चालाकी यह है कि ये लोग उपनिषदों को स्वतः प्रमाण नहीं मानते। यदि हम उपनिषद का प्रमाण दे दें तो ये फौरन कह देते हैं कि हम उपनिषदों को कब प्रमाण मानते हैं, किन्तु जब वेद

से ईश्वर निराकार सिद्ध नहीं होता तब ये उपनिषदों को प्रमाण मान कर उन्हीं से निराकार सिद्ध करने लगते हैं। इनका प्रथम प्रमाण देखिये—

सर्वेन्द्रियगुणाभासं, सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
सर्वस्य प्रभुमीशानं, सर्वस्य शरणं बृहत्॥ १७

श्वेताश्वतर० अ० ३

समस्त इन्द्रियों के विषय का जिसको ज्ञान होता है, जो समस्त इन्द्रियवर्जित है, जो सब का प्रभु है तथा सब का ईश, जो सब का रक्षक और बड़ा है।

दूसरी श्रुति निराकार के प्रमाण में यह देते हैं—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥ १९

श्वेताश्वतर० अ० ३

ईश्वर के हाथ और पैर नहीं किन्तु विना पैर के चलता है और विना हाथ के पकड़ता है, ईश्वर के नेत्र नहीं किन्तु वह देखता है, कान नहीं सुनता है, वह समस्त जानने योग्य पदार्थ को जानता है, किन्तु उस ईश्वर का जानने वाला कोई नहीं उसको अग्र सब से प्रथम वर्तमान पुराण पुरुष कहते हैं।

इन श्रुतियों को आगे रख कर ये खूब उछल कूद मचाते हैं कि देखिये ईश्वर निराकार है या नहीं। हम श्रोताओं को फिर इनकी दूसरी चालाकी सुनाते हैं, जिस श्वेताश्वतरोपनिषद् की ये श्रुतियां हैं वही उपनिषद् कहता है कि—

एषो ह देवः प्रदिशोऽनुसर्वाः
पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः।
स एव जातः स जनिष्यमाणः
प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः॥ १६

श्वेताश्वतर० अ० २

यह जो पूर्वोक्त देव परमात्मा सब दिशा विदिशाओं में नानारूप धारण करके ठहरा हुआ है यही प्रथम सृष्टि के आरंभ में हिरण्यगर्भ रूप से उत्पन्न हुआ, वही गर्भ के भीतर आया, वही उत्पन्न हुआ और वही आगे को उत्पन्न होगा जो सबके भीतर अंतःकरणों में ठहरा हुआ है और जो नाना रूप धारण करके सब ओर मुखों वाला हो रहा है।

श्रोता समझ गये होंगे, श्वेताश्वतरोपनिषद् की दो श्रुतियां ईश्वर को निराकार कह रही थीं उनको तो इन्होंने पबलिक के आगे रक्खा और जो साकार कह रही थी उसको दबा दिया। साकार कहने वाली श्रुति यजुर्वेद के अध्याय ३२ में भी आई है इस कारण इनकी दृष्टि में यह वेद है, वेद होने के कारण यह स्वतः प्रमाण कोटि में लेनी चाहिये थी किन्तु

उसको तो छोड़ दिया और जो श्रुतियां ईश्वर को निराकार कहती थीं तथा वे वेद में नहीं आई थीं उनको ले लिया। सच पूछिये तो इनका वेद से कोई मतलब नहीं, इनका मतलब तो केवल इतना है कि जैसे बने वैसे ईश्वर को निराकार सिद्ध कर दें।

चाल खेली और खेल न जानी। इसके ऊपर हम आप को एक दृष्टान्त सुनाते हैं, उस दृष्टान्त से आप इनकी इस चाल को और चाल की व्यर्थता को उत्तम रीति से समझ जावेंगे, दृष्टान्त यह है—

एक निर्धन गृहस्थ भूखा मरने लगा, दो तीन दिन के फाके हो गये। अब उसने सोचा कि हम और बालबच्चे सब भूखे मरे जाते हैं क्या उपाय करें। मन में आया कि जंगल में चलें वहां कोई ऐसा घास मिल जावेगा जिसके बान बट कर बाजार में बेचेंगे उससे जो कुछ पैसे मिलेंगे उसी से पेट की अग्नि को बुझावेंगे। यह संकल्प करके वह अपनी स्त्री और चारो बच्चों को लेकर एक घोर जंगल में पहुंचा। वहां पर बान बटने का घास भी मिल गया, उसको देख कर एक लड़के से कहा कि काटो घास, वह घास काटने लगा। दूसरे से कहा कि बान बटने के लिये हांड़ी में पानी ले आओ, वह फौरन पानी को चला गया। तीसरे और चौथे से कहा कि काटो लकड़ी, आज पांच चार बोझ लकड़ी भी बाज़ार में ले चलेंगे, वे लकड़ी काटने लगे। इतने में पानी वाला पानी लेकर आ गया, घासवाले ने घास काट

लिया। अब सब को हुक्म दिया कि बान बटो, सब बटने लगे। इस बन में एक भूत रहता था वह घबराया और मनुष्य का शरीर धारण कर बूढ़े के पास आया, बूढ़े से पूछा कि यह क्या करते हो? भूखा बूढ़ा क्रोधित होकर बोला कि आंखें फूट गई हैं, दीखता नहीं है, बान बटते हैं। भूत बोला इन बानों का क्या करोगे? बुड्ढा क्षुधित था और क्रोध में भरा हुआ था छूटते ही बोला कि ससुरजी तुझे बांधेंगे। भूत घबरा गया, हाथ जोड़ कर बोला कि भला किसी तरह छोड़ भी दोगे? बुड्ढा बोला कि कहीं गड़ा हुआ माल बतला देगा तो छोड़ देंगे। भूत ने एक वृक्ष के नीचे गड़ा हुआ बहुत सा माल बतला दिया, ये सब खोद कर घर ले आये। अब क्या था, अब तो मालामाल हो गये। एक रोज इसके पड़ोसी ने पूछा कि भैय्या, तुम्हारे घर में इतना माल कहां से आ गया? इस बुड्ढे ने सब कथा सुना दी। प्रातःकाल यह पड़ोसी भी अपनी औरत और अपने बालबच्चों को लेकर उसी बन में पहुंचा। एक लड़के से कहा कि पानी लाओ बान बटेंगे, सुन कर लड़का बोला कि हां हम तो कोस भर से पानी लावेंगे और तुम यहां सरपंच बने कर बैठोगे। दूसरे लड़के से कहा घास काटो, उसने उत्तर दिया कि ठीक है तुम तो यहां बैठ कर हुक्म चलाओ, कहीं घास के साथ हमारा हाथ कट जाय तो हम रोते फिरें। इसने सभी को हुक्म दिया परन्तु किसी ने इसका हुक्म न माना। आप ही पानी और आप ही घास काट कर लाया, आप ही बान बटने लगा।

जब यह बान बटने लगा तब वह भूत आया। भूत ने पूछा बान काहे को बटते हो ? यह छूटते ही बोला कि ससुरजी तुम्हें बांधेंगे। भूत बोला तुम हमें नहीं बांध सकते, तुम हमें क्या बांधोगे, पहिले तुम अपना घर तो बांधो। आखिर बुड्ढा उठ कर घर चला आया। दृष्टान्त चाहे सच्चा हो और चाहे बनावटी हो इससे कोई मतलब नहीं, मतलब भाव से है। निराकार-वादी संसार को जो निराकार की रस्सी में बांधना चाहते हैं यह उनका व्यर्थ साहस है पहिले वे अपने उस घर वेद को निराकार की रस्सी में बांधें जिसके जोर से वे संसार को निराकारवादी बनाना चाहते हैं। वेद तो ईश्वर को साकार कह रहा है और ये वेद के साथ जबरदस्ती करके केवल निरा-कार मनवाना चाहते हैं। आज हम वेद के समस्त मंत्रों का जिकर नहीं करते, आज तो केवल "एषो ह देवः" इसी श्रुति को आगे रखते हैं जो एक ही श्रुति निराकारवादियों के सिद्धान्त का कचूमर निकाल कर ईश्वर को साकार सिद्ध कर देती है। निराकारवादी शिर धुनने पर भी इसका अर्थ नहीं बदल सकते, यह कह नहीं सकते कि यह मंत्र वेद का नहीं है। जब वेद ही इनके बनावटी सिद्धान्त का चकनाचूर कर रहा है तब इनका ईश्वर को निराकार बतलाना किस प्रकार सफलता देगा।

निराकार की पुष्टि में ये लोग एक और श्रुति दिया करते हैं, वह यह है—

यत्तदद्रश्यमग्राह्यमगोत्रमचक्षुः
श्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यं विभुं ।
सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं
तद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥

मुंडकोपनिषद् ।

जो ईश्वर अदृश्य है, अग्राह्य है, अगोत्र है, वर्णरहित है, जिसके चक्षु नहीं, जिसके कान नहीं, हाथ नहीं, पैर नहीं, नित्य है, विभु है, सर्वव्यापक है, जो सूक्ष्म है, जो अव्यय है, समस्त भूतों का योनि है उसको धीर पुरुष देखते हैं।

जिस मुंडकोपनिषद् में ईश्वर को निराकार बतलाने वाली यह श्रुति लिखी है उसी मुंडकोपनिषद् में लिखा है कि—

ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव ।
विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ॥

देवताओं में प्रथम ब्रह्मा उत्पन्न हुआ था वह ब्रह्मा कौन है विश्व का बनाने वाला और समस्त भुवनों को रक्षा करने वाला।

यहां पर भी ईश्वर को साकार कहने वाली श्रुति दबा ली गई और निराकार बतलाने वाली पबलिक के आगे रख दी गई। इन चालों से आजकल के बाबू लोग ईश्वर को निराकार सिद्ध करना चाहते हैं, क्या यह न्याय है या धर्म है ? हमारी समझ में तो न्याय और धर्म इन दोनों का गला घोट कर जबर्दस्ती से ईश्वर को निराकार बनाया जा रहा है।

ईश्वरस्वरूप निर्णय।

आप कहेंगे तो फिर ईश्वर है कैसा, यह तो हमको अभी तक भी मालूम नहीं हुआ। मालूम तो हो ही गया होगा क्योंकि हमने बहुत प्रमाण दिखला दिये यदि अब भी मालूम न हुआ हो तो फिर चलिये तुलसीदासजी की रामायण देखिये। हिन्दी साहित्य के सम्राट् गोस्वामी तुलसीदासजी लिखते हैं कि—

एक दारुगत देखिय एकू।
पावक युग सम ब्रह्म विवेकू॥

अग्नि के दो स्वरूप हैं निराकार रूप से अग्नि संसार में व्यापक रहता है साकार रूप से चूल्हे, भट्टी में दीखता है। इसी भाव को लेकर गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि एक अग्नि निराकार रूप से लकड़ी में है और अग्नि का दूसरा साकार रूप देखने में आता है। अग्नि एक है किन्तु उसके रूप दो हैं। बस यही ब्रह्म का विवेक है। ब्रह्म एक है और ब्रह्म के निराकार साकार ये दो रूप हैं।

कई एक मनुष्य यह कह दिया करते हैं कि इस विषय में वेद में भी कोई प्रमाण है या ब्रह्म के विवेचन का समस्त भार तुलसीकृत रामायण पर ही है? यद्यपि तुलसीकृत रामायण का प्रमाण तोषदायक है तो भी दुर्जनतोषन्याय से हम वेद के प्रमाण को आगे कहते हैं, सुनिये—

साकार होने का रोग न रहे।

आप कहेंगे कि ईश्वर तो एक और उसके रूप दो, यह बात हमारी समझ में नहीं आती। एक ईश्वर के दो रूपों को समझाने का हम उद्योग करते हैं, श्रोता लोग जरा मन लगा करके समझें, बात गहरी है, पेंच डाल कर समझाने से समझ में आवेगी। इसको यों समझिये कि यह ब्रह्माण्ड जिसमें आप की जमीन, चांद, सूर्य और अनेक तारे हैं यह कितना बड़ा है? शास्त्रों के लेख से इसका प्रमाण पंचाशत कोटि योजन विस्तार है। दक्षिण दिशा से उत्तर तक और पूर्व से पश्चिम तक, नीचे से ऊपर तक सब तरफ ५० कोटि योजन प्रमाण रखनेवाला मटर या गेंद की शकल का ब्रह्माण्ड है। अब प्रश्न यह करना है कि इस ब्रह्माण्ड में ईश्वर कहां रहता है? इस प्रश्न पर सभी मनुष्य यह कहेंगे कि ईश्वर तो समस्त ब्रह्माण्ड में व्यापक हो रहा है ब्रह्माण्ड भर में ऐसा स्थान कहीं नहीं मिलेगा जहां ईश्वर की व्यापकता न हो। अच्छा हमने मान लिया कि ब्रह्माण्ड में तो ईश्वर व्यापक है इस ब्रह्माण्ड के बाहर ईश्वर है या नहीं, एक यह प्रश्न उठा। आप को मानना पड़ेगा कि ईश्वर बाहर भी है क्योंकि ब्रह्माण्ड परिछिन्न (महदूद) है और "उभयं वा" इस श्रुति ने ईश्वर को अपरिछिन्न (लामहदूद) बतलाया है इस कारण से ब्रह्माण्ड के बाहर भी ईश्वर का होना सिद्ध होजाता है, तो ईश्वर दुनियां (ब्रह्माण्ड) से बहुत बड़ा है। अब निर्णय यह करना है कि ईश्वर के

कितने भाग में यह दुनियां रची गई है। इसका विवेचन करता हुआ वेद लिखता है कि—

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥

यजु० अ० ३१ मं० ३

इस ब्रह्म के एक पाद में समस्त ब्रह्माण्डों की रचना है और उस ब्रह्म के तीन पाद दिव में अमृत (सृष्टिरहित) हैं।

वेद ने हम को यह समझा दिया कि ईश्वर के एक हिस्से में तो दुनियां बनी है और ईश्वर के तीन हिस्से ऐसे हैं जहां पर दुनियां नहीं बनी, ईश्वर के जिन तीन हिस्सों में संसार नहीं बना या यों कहिये कि तत्वों की रचना नहीं हुई वहां पर ईश्वर निराकार है। वेद में जितने मंत्र ईश्वर को निराकार बतलाते हैं वे सब उसी रूप का वर्णन करते हैं जो ईश्वर के तीन भागों में आकारशून्य है। ईश्वर के इस रूप को श्रुतियां अविज्ञेय, अनिर्वचनीय, अपरिछिन्न कहती हैं।

हमारे श्रोतागण ईश्वर के निराकार रूप को तो समझ गये अब इनको साकार रूप बतलाना है। उसको इस प्रकार समझें कि जितने हिस्से में संसार बना है ईश्वर इसमें कहीं एक स्थान में नहीं रहता किन्तु इसी में समा गया है। वेद की श्रुति कहती है कि—

तदेव सृष्ट्वा तदानुप्राविशत्।

इस संसार को रच कर वह इसी में समा गया। संसार में आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी ये पांच तत्व हैं इन्हीं से

योऽप्सु तिष्ठन् अद्भ्योऽन्तरो
यमापो न विदुर्यस्यापः शरीरं।
योऽपोऽन्तरो यमयति स त ऽ
आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ ८ ॥
योऽग्नौ तिष्ठन् अग्नेरन्तरो
यमग्निर्न वेद यस्याग्निः शरीरं।
योऽग्निमन्तरो यमयति स त ऽ
आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ ९ ॥
य आकाशे तिष्ठन् आकाशादन्तरो
यमकाशो न वेद यस्याकाशः शरीरं।
य आकाशमन्तरो यमयति स त ऽ
आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ १० ॥
यो वायौ तिष्ठन्वायोरन्तरो
यं वायुर्न वेद यस्य वायुः शरीरं।
यो वायुमन्तरो यमयति स त ऽ
आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ ११ ॥

श० कां० १४

जो पृथिवी में ठहरा हुआ पृथिवी के मध्य में जिसको पृथिवी नहीं जानती पृथिवी जिसका शरीर है जो पृथिवी को अपनी अनंत शक्ति से थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है।७। जो जल में ठहरा हुआ जल के मध्य में जिसको

जल नहीं जानता जल जिसका शरीर है जो जलको अपनी अनंत शक्ति से थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है।८। जो अग्नि में ठहरा हुआ अग्नि के मध्य में जिसको अग्नि नहीं जानता अग्नि जिसका शरीर है जो अग्नि को अपनी अनंत शक्ति से थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है।९। जो आकाश में ठहरा हुआ आकाश के मध्य में जिसको आकाश नहीं जानता आकाश जिसका शरीर है जो आकाश को अपनी अनंत शक्ति से थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है।१०। जो वायु में ठहरा हुआ वायु के मध्य में जिसको वायु नहीं जानता वायु जिसका शरीर है जो वायु को अपनी अनंत शक्ति से थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है।११।

श्रुति के प्रमाण से यह सिद्ध हो गया कि सृष्टि में ईश्वर व्यापक है अतएव वह साकार है।

हमने बतलाया था कि संसार में ईश्वर व्यापक है, इस कारण वह शरीरधारी है। वेद ने व्यापक होने से ही आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी ईश्वर के शरीर बतलाये हैं जब उसके शरीर है तो वह निराकार हुआ कैसे इसका भी तो कुछ पता चलना चाहिये। हमने यहां ईश्वर के साकार होने में वेद की पांच श्रुतियां बतलाईं, विचारशील युक्ति और वेद को समझ कर भले ही ईश्वर को शरीरधारी मान लें किन्तु निराकारवादियों के आगे ५० हजार तो वेद के मंत्र ईश्वर को शरीरी कहें और ६० हजार युक्तियां पुष्टि करें ये लोग तो कभी मान ही नहीं

सकते कि ईश्वर साकार है, इनका कथन तो सर्वदा यही रहेगा कि ईश्वर निराकार है।

जब मनुष्य जान बूझ कर अड़ियल टट्टू बन जाता है तब संसार के विद्वानों के पास ऐसा एक भी उपाय नहीं रहता कि वे जबर्दस्ती से मना दें। संसार में बालहठ, स्त्रीहठ, राजहठ, ये तीन आग्रह प्रसिद्ध हैं। एक दिन वीरबल को दरबार पहुंचने में बारह बज गये, बादशाह ने पूछा कि आज देर करके क्यों आये? वीरबल ने उत्तर दिया कि एक बच्चे के चक्कर में पड़ गये। बादशाह बोले कि बच्चा जो मांगता था वह उसको दे देते और तुम दरबार में चले आते। वीरबल ने कहा कि हजूर बच्चा ऐसी ऐसी वस्तुवें मांगता है जिनको न तो मैं दे सकता हूं और न श्रीमान् ही दे सकते हैं। बादशाह बोले कि वाह वाह यह भली कही, कल बच्चे को हमारे पास लेते आना-देखें क्या मांगता है। वीरबल ने कहा कि बहुत अच्छी बात है। दूसरे दिन वीरबल आता हुआ अपने बच्चे को लेता आया, बादशाह को सलाम करवाया, बादशाह ने प्रेम में आके बच्चे को गोद में ले लिया, लगे खिलाने। १०-१५ मिनट के बाद बच्चा रोने लगा। बादशाह ने पूछा क्यों रोते हो? बच्चे ने कहा कि दवात लेंगे। बादशाह ने हुक्म दिया आरदली का एक सिपाही दवात उठा लाया, बच्चा उसको लेकर खेलने लगा। दश मिनट के बाद फिर रोने लगा। बादशाह ने पूछा अब क्यों रोते हो?

बच्चा बोला वह हाथी लेंगे जो किले के दरवाजे-खड़ा है। बादशाह ने हुक्म दिया पीलवान हाथी ले आया, बच्चा हाथी को देखता रहा। सात आठ मिनट में फिर रोने लगा! बादशाह बोले अब क्यों रोते हो? बच्चा बोला इस हाथी को इस दवात में डालो। अब बादशाह चुप। दवात में हाथी का धँस जाना तो असंभव है, असंभव हो चाहे संभव, लड़के को तो दवात में हाथी धँसाना है। बादशाह बार बार समझाते हैं कि हाथी बहुत बड़ा है दवात छोटी है इसमें हाथी नहीं आ सकता, किन्तु बादशाह की बातों को भला बच्चा काहे को सुनता है, लगा जोर से रोने। रोते में कहता जाता है कि जल्दी हाथी को दवात में भरो। बीरबल बोला हजूर और खिलाओ बच्चों को। यह बालहठ का उदाहरण है। ऐसा ही राजहठ और स्त्री हठ होता है। अब तक तो संसार में तीन ही हठ थे किन्तु अब चार हठ हो गए। एक राजहठ, एक स्त्रीहठ, एक बालहठ और एक निराकारवादीहठ। चाहे ईश्वर का निराकार होना असंभव हो और चाहे वेद भगवान् ईश्वर को साकार कहता हो तथा चाहे सैकड़ों युक्तियों से निराकार होना कट जाता हो इन बातों से कोई मतलब नहीं–मतलब सिर्फ इतना है कि ईश्वर को निराकार बनाओ। इस आग्रह को देख कर हम कह सकते हैं कि निराकारवादियों में न बुद्धि है, न ज्ञान है, न विद्या है, न अध्ययन है, केवल निराकार सिद्ध करने का हठ है, जो वेद प्रमाण के आगे कपूर की भांति उड़ जाता है।

सर्व स्वरूपत्व ।

व्यापकत्वेन ईश्वर को साकार कह दिया । अब यह दिखलावेंगे कि सृष्टि में जितने आकार हैं वे सब ब्रह्म के स्वरूप हैं। समस्त रूप ब्रह्म के रूप से बने हैं और अन्त में समस्त ही रूप ईश्वर में लय होंगे। ब्रह्म को छोड़ कर अन्य कोई रूप ही संसार में नहीं है । जितने रूप दृष्टिगोचर होते हैं ये समस्त रूप ईश्वर के निज रूप हैं, इसके विवेचन को आप सुनने की कृपा करें ।

हमको सब से पहिले यह जानना चाहिये कि पृथ्वी किस चीज से बनी है । जब हम पृथ्वी के बनने की खोज को उठाते हैं तो पता चलता है कि पृथ्वी जल से बनी । इसमें प्राचीन और नवीन किसी को भी विरोध नहीं। अब हमको इतना ज्ञान हुआ कि वास्तव में पृथ्वी कोई चीज नहीं है किन्तु जब जल में संचलनशक्ति उत्पन्न होती है संचलनशक्ति के प्रभाव से जल कठोर हो जाता है और वही पृथ्वीरूप धारण कर जाता है। पृथ्वी की सत्ता कोई भिन्न सत्ता नहीं है किन्तु जल-सत्ता का कठिन रूप पृथ्वी कहलाती है ।

अब जल का विवेचन करिये, जल क्या चीज है । अग्नि में संचलन उत्पन्न होने से जल बन जाता है, अग्नि का रूपान्तर ही जल है । पाश्चात्य विद्वानों का सिद्धान्त है कि पृथ्वी प्रथम आग का गोला थी, उस अग्नि से जल बना, जल कठोर होकर पृथ्वी बनी, जल कोई वस्तु नहीं है किन्तु अग्नि का रूपान्तर

ही जल है, जल का कारण अग्नि हुआ। अब अग्नि के निर्णय करने में हम इस फल पर पहुंचते हैं कि दो विरुद्ध धर्म वाले वायु के मिलने से अग्नि उत्पन्न हो जाता है, अग्नि कोई प्रथक् चीज नहीं है वायु का दूसरा रूप ही अग्नि है। अब यह विचार करना है कि वायु क्या चीज है? इस निर्णय में हम यह जानते हैं कि आकाश के जो सूक्ष्म परमाणु हैं उनमें जब संचलनशक्ति (हरकत) उत्पन्न होती है तो आकाश के सूक्ष्म परमाणु कुछ कठोर हो जाते हैं और वे धक्का देने लगते हैं, इसी का नाम वायु है। प्रत्यक्ष में आप हाथ में पंखा ले लीजिये और उसको हिलाइये, पंखे के हिलने से आकाश के परमाणुओं में संचलन शक्ति उत्पन्न हो जावेगी, वे परमाणु धक्का देंगे वही वायु कहलावेगा। सिद्ध हुआ कि वायु कोई भिन्न सत्ता वाला पदार्थ नहीं है किन्तु आकाश का रूपान्तर है। बस फल निकला कि पृथ्वी जल से उत्पन्न हुई, जल अग्नि से बना, अग्नि वायु का कार्य है, वायु आकाश से बन जाता है। अब निर्णय यह करना है कि आकाश किस चीज से बनता है। इसके ऊपर फ़ासफरों की और साइंसवेत्ताओं की बुद्धि विचार छोड़ देती है। यहां पर वेद से काम लेना होगा। कारण इसका यह है कि जहां पर संसार की फ़ासफियां चीं बोल समाप्त हो जाती हैं, वहां से वैदिक विज्ञान का आरंभ होता है। सर्वोपरि विज्ञान वैदिक ज्ञान बतलाता है कि वह जो निराकार ब्रह्म है, जहां पर सृष्टि नहीं है, जिसको अमृत कहा है उससे, और यह जो दृश्य

ब्रह्माण्ड रूप ईश्वर है इससे, आकाश उत्पन्न होता है। अब सिद्ध हो गया कि संसार में जितने रूप (शकलें) हैं वे सब ब्रह्म के रूप से उत्पन्न हुये हैं।

इस विषय में वेद का यह कथन है—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः
संभूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः।
अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी॥

तैत्ति० १ ब्रह्म० वल्ली अनु०१

उस अदृश्य अमृत ब्रह्म से तथा इस दृश्य ब्रह्म से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई।

समस्त संसार ही ब्रह्म स्वरूप है, इस विषय को वर्णन करते हुये पुष्पदन्त लिखते हैं कि—

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि-
पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु
धरणिरात्मा त्वमिति च।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि
परिणता बिभ्रति गिरं
न विद्मस्तत्तत्त्वं वय
मिहतु यत्त्वं न भवसि॥

भगवन् ! आप सूर्य हैं आपही चन्द्रमा हैं, पवन आप हैं, अग्नि भी आपही हैं, जलसमुद्र आप हैं, आकाश भी आप ही हैं, पृथ्वी आप है, आत्मा आप हैं, हम एक भी तत्व ब्रह्माण्ड में ऐसा नहीं पाते जो आप न हों।

जो बात पुष्पदन्त ने कही है इसी को वेद कहता है कि—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमा।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥

यजु० अ० ३२ मं० १

वही अग्नि, वही आदित्य, वही वायु वही चन्द्रमा, वही पराक्रम, वही ब्रह्म, वही जल और वही प्रजापति है।

जब वेद संसार के समस्त रूपों को ब्रह्म के रूप कह रहा है फिर निराकार कहना मूर्खता नहीं तो और क्या है। विचारशील मनुष्य समझ गये होंगे कि यह समस्त संसार ईश्वर से उत्पन्न हुआ है और इस संसार का 'अभिन्न निमित्तोपादान कारण' ईश्वर है अतएव संसार में छोटे बड़े जितने रूप हैं वे सब ईश्वर के रूप हैं (यहां पर हमने ब्रह्म ईश्वर का अभेद मान कर ब्रह्म के स्थान में ईश्वर बतलाया है)।

ज्ञानी विद्वान् हमारे इस व्याख्यान को सुन कर ईश्वर को साकार मानेंगे किन्तु निराकारवादी कभी नहीं मान सकते वे तो हमारे व्याख्यान और वेद दोनों को ही गप्प कहेंगे। कुछ भी कहें किन्तु वेद प्रमाण को लेकर ईश्वर को निराकार सिद्ध कर देना मामूली बात नहीं है, असंभव है।

इस असंभव को हम एक दृष्टान्त से समझावेंगे। एक गृहस्थ के मकान के बाहर के हिस्से में रसोई बनाने का एक छप्पर था और भीतर मकान बड़ा मजबूत था। एक रोज रात्रि को रसोई जीमते समय रसोई के स्थान में एक बड़ा भारी काला बिच्छू निकल आया। गृहस्थ दयालु था इस कारण बिच्छू को मारा नहीं, एक भारी पत्थर की कूड़ी के नीचे दबा दिया। भोजन खा के सब कुटुम्ब घर में चला गया और वह बिच्छू कूड़ी के नीचे वहीं दबा रहा। गृहस्थ किवाड़ लगा कर बालबच्चों समेत ऊपर छत पर जा सोया। दैवयोग से इसके घर में चोर आये और बाहर से दीवार खोदने लगे। गृहस्थ ने चोरों को भी देखा और खुदी हुई दीवार को भी देखा, फिर चारपाई पर बैठ गया। थोड़ी देर में जब इसको कुछ सूझ सूझी तब अपनी स्त्री से बोला कि गंगा की अम्मां वह जो मैं सोने की अंगूठी लाया था जिसमें सैंतालीस हजार का हीरा लगा था वह ठीक रख दी कि नहीं? उसको स्त्री बोली हल्ला मत मचाओ, कोई चोर बदमाश सुनता होगा, अंगूठी तो मैं भूल से छप्पर में कूड़ी के नीचे रख आई हूं। यह बात चोरों ने सुनी। विचार करने लगे कि दीवार खोद २ क्यों मरते हो चलो अंगूठी ले लें। छप्पर में गये। एक चोर ने कूड़ी उठा कर अंगूठी लेनी चाही कि बिच्छू ने डंक मारा, उसके मुख से निकला कि 'हाय'। अंधेरा था ही दूसरे चोर को यह समझ पड़ा कि अंगूठी भारी है अकेले से नहीं उठ सकती, उसने

अपना हाथ फँका, बिच्छू ने उसके भी डंक मार दिया। दोनों रोने लगे। गृहस्थ बोला कि 'तंग होती होगी, छोटी अंगुली में पहिनो'। जब रोने में दो आदमियों की आवाज आई तब गृहस्थ बोला कि उल्लू कहीं के एक ही अंगूठी में दोनों अंगुली घुसेड़ रहे हैं, एक अंगूठी में दो अंगुलियों का आना तो असंभव है। जिस प्रकार एक अंगूठी में दो अंगुलियों का घुसना असंभव है उसी प्रकार वेद को लेकर ईश्वर को केवल निराकार सिद्ध करना भी असंभव है।

ब्रह्म से भिन्न संसार में कोई वस्तु ही नहीं, सारा संसार पंचतत्वों से बना है और पंचतत्व ब्रह्म से बने हैं, इस कारण ये ब्रह्म के शरीर हैं। आकाश, वायु दो तत्व अमूर्त हैं और अग्नि, जल, पृथ्वी ये तीन तत्व मूर्तिमान हैं अतएव आकाशरूप ब्रह्म, वायुरूप ब्रह्म, अग्निरूप ब्रह्म, जलरूप ब्रह्म, पृथ्वीरूप ब्रह्म, वेदों में लिखा गया है, सुनिये—

> द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च।
> तदेतन्मूर्तं यदन्यद्वायोश्चान्तरिक्षात्।
> अथामूर्तं वायुश्चान्तरिक्षम् ॥
>
> बृह० अ० ४ ब्रा० ३ कं० १।२।३

ब्रह्म के दो रूप हैं एक मूर्त (साकार) दूसरा अमूर्त (रूप-रहित)। वायु और अन्तरिक्ष से भिन्न पृथ्वी, जल, तेजात्मक ब्रह्म का मूर्त रूप है, आकाश वायु ये अमूर्त हैं।

कैसा है 'विष्णुम्' 'विश् प्रवेशने धातु से' विष्णु बनता है रुपया संसार में प्रवेश गमन करता है, आज आपके पास है चार दिन में इलाहाबाद चला गया, दश दिन में अयोध्या जा विराजा, महीना भर बाद काशी जा धमका, फिर रुपया कैसा है 'चतुर्भुजम्' चार उसके भुजा है देख लीजिये एक रुपये में चार चवन्नी होती है, फिर रुपया कैसा है 'प्रसन्नवदनं ध्यायेत्' यदि कोई रुपये का ध्यान करले तो उसका चेहरा खिल जाय, 'सर्वविघ्नोपशान्तये' यदि मिल जावे तो संसार के सारे विघ्न दूर हो जायँ। राजा ने इसको बड़ा भारी पंडित समझा। एक ही घंटे में श्लोक और अर्थ दोनो ही कंठ कर लिये। डेढ़ घंटा बैठ कर यह पंडित बोला कि मुझे बड़ा आवश्यकीय कार्य है अब मैं आपके यहां ठहर नहीं सकता. मुझे चलने की आज्ञा दीजिये। प्रथम तो राजा ने बड़ी प्रार्थना की कि इतने भारी पंडित प्रारब्ध से मिलते हैं आप कुछ दिन ठहरिये, जब नहीं माना तो फिर लाचारी से पंडितजी को विदा कर दिया। नित्य की भांति पंडित लोग दूसरे दिन दर्बार में आये। राजा ने पूछा कि 'शुक्लाम्बरधरं विष्णुम्' इस श्लोक का अर्थ बतलाओ ? पंडितों ने बतलाया कि "शुभ्रवस्त्र धारण किये हुये शशिवर्ण चतुर्भुजी प्रसन्नवदन विष्णु का ध्यान करे तो समस्त विघ्न दूर हो जायं"। इस अर्थ को सुन कर राजा बोले कि तुम को कुछ नहीं आता आज से तुम सब बर्खास्त। विद्वानों को जवाब दे दिया। वे अपने घरों को चले गये। राजधानी समझ

कर बड़े २ विद्वान् आवें और राजा 'शुक्लाम्बरधरम्' का अर्थ पूछे, रुपया कोई बतलावे नहीं, सब विष्णु वाला अर्थ करें, राजा तुरंत भगादे। वर्षों यही हाल रहा। एक दिन एक धूर्त पंडित आया, वह पंडित भी था और धूर्त भी था, उसने सब पता लगाया। बात को समझ कर वह भी राजा के यहां पहुंचा। राजा ने फौरन पूछा कि 'शुक्लाम्बरधरं विष्णुम्' का क्या अर्थ है ? यह पंडित बोला कि राजन्! कोई २ मूर्ख मनुष्य इसका अर्थ रुपया करते हैं और रुपया इसका अर्थ हो नहीं सकता। राजा बोले क्यों नहीं हो सकता ? पंडित ने कहा कि 'शुक्लाम्बर-धरम्' इसका अर्थ है सुफेद वस्त्र धारण किये हुये, रुपया सुफेद वस्त्र थोड़े ही धारण किये है, वह तो स्वतः ही सुफेद है, फिर यह अर्थ कैसे घटेगा कि 'सुफेद वस्त्र धारण किये हुये है'। राजा बोले तो फिर इसका अर्थ क्या है ? पंडित बोले इसका अर्थ है दही बड़ा। राजा बोले घटाओ। पंडित ने कहा सुनिये वह दही बड़ा कैसा है कि 'शुक्लाम्बरधरम्' आप तो बादामी है और ऊपर दही रूप सुफेद वस्त्र धारण किया है। राजा बोले 'विष्णुम्' का क्या अर्थ करोगे ? पंडित ने कहा कि विश् प्रवेशने धातु' का है प्रवेश करता है, दही बड़े को मुख में रखिये न जीभ चलानी पड़े, न दांत घिसने पड़ें, मुख में धरते ही खट्ट नीचे, पेट में प्रवेश कर जाता है इसी से इसको 'विष्णु' कहते हैं। राजा ने पूछा कि 'शशिवर्णम्' का क्या अर्थ होगा ? पंडित बोले कि चन्द्रमा कैसा वर्ण दही बड़े का है हो इसमें शंका का

क्या काम। राजा बोल उठे कि श्लोक में 'चतुर्भुजम्' है। पंडित ने समझाया कि यह ठीक ही है 'चतुर्णां मनुष्याणां भुजं भोजनम्' चतुर मनुष्यों का भोजन है गँवार क्या जाने दही बड़ा खाना और 'प्रसन्नवदनं ध्यायेत्' कहीं दही बड़े का ध्यान कर ले तो प्रसन्नमुख हो जाय, मुंह में पानी आ जाय। नहीं मानते हो तो अंदाज लो तुम्हारे ही मुंह में पानी आगया होगा। 'सर्वविघ्नोपशान्तये' यदि खाने को मिल जावे तो खुश्की के रोग दूर हो जायँ, फिर एक भी विघ्न न रहे।

इस विलक्षण अर्थ को सुन कर राजा ने कहा कि पंडितजी आप हमारे दरबार में रहें। पंडितजी ने कहा कि यदि आप हम से पढ़ें तो हम आप के दरबार में अवश्य रहेंगे। राजा ने पढ़ना स्वीकार कर लिया। पं० जी भी रह गये। राजा को पढ़ाने लगे, चार वर्ष में पंडितजी ने राजा को लघुकौमुदी, अमरकोश, रघुवंश पढ़ा दिया। जब राजा पंडित हो गये तो एक रोज रात को अपने आप इस श्लोक का अर्थ करने लगे। न तो इसका अर्थ रुपया हो और न दही बड़ा। राजा ने फौरन पंडितजी को बुलाया। पंडितजी को बुलाकर कहा कि हम तुमको फांसी देंगे तुमने हमारे साथ धोखा किया। 'शुक्लाम्बरधरम्' इस श्लोक का अर्थ दही बड़ा कब होता है? आपने 'विष्णु' विशेष्य को भी विशेषण बना दिया, श्लोक में विशेषण ही विशेषण कर दिये, विशेष्य एक भी न रहा, इसका अर्थ तो 'विष्णु' ही होता है। तुमने हमको धोखे में डाला है अब हम तुमको फांसी जरूर देंगे।

यह सुन कर पंडितजी बोले कि यदि आपको फांसी देनी है तो उसको दीजिये जिसने आपको इस श्लोक का अर्थ रुपया बतलाया था और हमने तो रुपया रूप अर्थ जाल से निकालने के लिये तुमको दही वड़ा अर्थ बतलाया है, हम दही वड़ा अर्थ न करते तो आप उस जाल से नहीं निकल सकते थे, बनावटी अर्थ बना कर जाल से निकाला, फिर पढ़ा कर तुमको विद्वान् बनाया, अब हम समझा सकते हैं कि इस श्लोक का अर्थ विष्णु है। उस दिन तो आप दश हजार पंडितों के समझाने पर भी नहीं मानते। राजा पंडित के चरणों में गिर पड़ा और जो पंडित पहिले बर्खास्त कर दिये थे उनको बुला कर राजनीति और धर्म सीखा। यदि निराकारवादी ईश्वर साकार है या निराकार है या दोनों है इसके ठीक निर्णय को जानना चाहते हैं तो इनको वेदों का अध्ययन करना चाहिये, वेद अपने आप ऐसी उत्तमरीति से समझावेंगे कि जिस उत्तम रीति से अब इनको कोई भी नहीं समझा सकता। वेद ज्ञान इनके अंतःकरण में बिठला देगा कि ईश्वर निराकार भी है और साकार भी है। जहां सृष्टि रचना नहीं हुई वहां निराकार है और संसार में साकार है। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि निराकारवादी पढ़ें और विद्वान् हों तथा इनको सच्चा ज्ञान मिले।

यद्यपि वेद मंत्रों में अवतारों का वर्णन है उस विषय को हम कल सुनावेंगे आज इतना अवश्य कहेंगे कि सैकड़ों मनुष्य ईश्वर निराकार है या साकार, इस चक्कर में पड़ कर अपनी

आयु को खोया करते हैं, और आस्तिक लोग प्रेमरूपी बंधन से खैंच कर ईश्वर का प्रत्यक्ष करते हैं तथा अपने जन्म को सफल करते हुये जन्म मरणरूपी संसारबंधन को तोड़ देते हैं। इस विषय की पुष्टि में मैं एक ऐतिहासिक घटना आपके आगे रक्खूंगा और उसको सुन कर आप का ईश्वर में प्रेम होगा—

भारत का इतिहास बतलाता है कि कामना के वश हुये दुर्योधन ने आदर्श को त्याग दिया और कपट से राजा बनना चाहा। इसके सहवासियों के मन भी धर्म को छोड़ कर इच्छा-पूर्तियों में लीन हो चुके थे। इससे शकुनी दुःशासन प्रभृति अपने सहवासियों से यह सम्मति की कि राजा युधिष्ठिर के साथ जुआ खेला जावे उसमें हम कपट करें और आप चार सज्जन मेरा पक्ष लेकर इस कपट को निष्कपट सिद्ध कर दें। सब बातें ठीक हो गईं, राजा युधिष्ठिर को जुआ खेलने के लिये बुलाया गया। उसने प्रथम तो इन्कार किया किन्तु शकुनी प्रभृति कपटियों ने उसको ऊचा नीचा दिखा कर जुये के लिये तैयार कर लिया। अन्त में राजा युधिष्ठिर जुआ खेलने के लिये आ गये। संसर्ग के प्रभाव से धार्मिक राजा युधिष्ठिर ने भी "अक्षैर्मा दीव्यः—जुआ मत खेलो" वेद की इस आज्ञा को भुला दिया। अब जुआ होने लगा, कपट जाल से राजा युधिष्ठिर को जुये में हराया गया। राजा युधिष्ठिर भी यहां तक हारा कि धन, भवन, वाहन, वस्त्र, राज्य और स्त्री तक को हार गया। जब दुर्योधन सफल मनोरथ हुआ तो उसने नीच

वृत्ति से द्रौपदी को सभा में बुलाना चाहा, इस पर और तो कोई नहीं बोला किन्तु विदुर को बड़ा क्रोध आया और उसने कह उठाया कि शोक है ऐसे धार्मिक वीर क्षत्रियों की सभा में इतना कपट किया जाता है। दुर्योधन ! इस दुष्ट कर्म का फल तुमको और क्षत्रिय जाति तथा इस सभा में बैठे हुये क्षत्रियों को, द्रोणाचार्य और ब्राह्मण जाति को, भोगना पड़ेगा। सृष्टि के आरंभ से आज तक जितने भी क्षत्रिय हुये हैं उनमें से किसी ने भी इतनी बेईमानी नहीं की। इसको सुन कर राजा दुर्योधन की आंखें लाल होगईं और बोल उठा कि—

धिगस्तु क्षत्तारमिति ब्रुवाणो
　　दर्पेण मत्तो धृतराष्ट्रपुत्रः।
अवैक्षत प्रातिकामीं सभाया
　　मुवाच चैनं परमार्य मध्ये ॥ १ ॥
प्रातिकामिन्द्रोपदीमानयस्व
　　न ते भयं विद्यते पाण्डवेभ्यः।
क्षत्ता ह्ययं विवदत्येव भीतो
　　न चास्माकं वृद्धिकामः सदैव ॥ २ ॥

दुर्योधन इस समय घमंड में चूर हो रहा है, उसने विदुर को दो चार खोटी खरी सुना कर धिक्कार दिया। जहां पर श्रेष्ठ लोग बैठे है उस सभा में प्रातिकामी भृत्य से बोला, हे प्राति-कामिन्! तुम द्रोपदी को पकड़ लाओ और खबरदार पाण्डवों से मत घबराना तथा यह विदुर जो अनर्गल बात बकता है

यह भीम से डरता है और हमारी उन्नति इसको कांटे की की तरह खटकती है।

भृत्य होने के कारण द्रौपदी ने प्रातिकामी को फटकार दिया और वह घबरा कर सभा में चला आया। इस घटना से दुर्योधन का क्रोध और भी बढ़ गया। दुर्योधन ने दुःशासन को आज्ञा दी कि तुम फौरन द्रौपदी को पकड़ लाओ। इतना सुन कर क्रूर स्वभाव दुःशासन महल में जाकर कटुवचनों द्वारा द्रौपदी को सभा में चलने के लिये कहने लगा। इसको सुन कर द्रौपदी बोली, कि देवर! मैं रजस्वला हूं, एक वस्त्र से बैठी हूं, शिर खुला है, इस दशा में आर्य घर की कोई भी स्त्री सभा में जा नहीं सकती। किन्तु ये सब प्रार्थनायें उन्हीं मनुष्यों के आगे सफल होती हैं जिनके हृदय में दया है, जिन मनुष्यों ने दया को दियासलाई दिखला दी उनके आगे नम्र प्रार्थनायें कुछ भी प्रभाव न उस समय डाल सकतीं थीं न अब डाल सकती हैं। वर्तमान समय में हम देखते हैं कि डाकुओं से की हुई प्रार्थना सर्वदा निष्फल हो जाती है, अपने स्वार्थ के लिये डाकू लोग दूसरे का शिर फोड़ दें, हाथ काट लें, हाथों में तेल में डूबे हुये कपड़े बांध कर आग लगा दें, किन्तु अपना स्वार्थ सिद्ध कर लें। स्वार्थ से जिसका अन्तःकरण भर गया वहां दया इस प्रकार नहीं ठहर सकती जिस प्रकार खटाई के कटोरे में दूध नहीं ठहर सकता। स्वार्थी दुःशासन बोल उठा कि—

रजस्वला वा भव याज्ञसेनि
एकाम्बरा वाप्यथवा विवस्त्रा ।
द्यूते जिता चासि कृतासि दासी
दासीषु वासश्च यथोपजोषम् ॥

द्रौपदि ! चाहे तू रजस्वला हो और चाहे एक धोती पहने हो, चाहे बिल्कुल नग्न हो, तुमको राजा युधिष्ठिर जुये में हार गया है दुर्योधन की दासी बनाने के लिये मैं अब तुझे ले जाऊंगा और आज से तुझको दुर्योधन की दासी बनकर रहना होगा ।

यह कह अबला द्रौपदी की शिखा पकड़ दुःशासन द्रौपदी को सभा में ले गया और दुर्योधन ने नग्न करने की आज्ञा दे दी । उस समय द्रौपदी ने कहा कि—

द्रोणस्य भीष्मस्य च नास्ति सत्वं
क्षत्तुस्तथैवास्य महात्मनोऽपि ।
राज्ञस्तथाहीममधर्ममुग्रं
न लक्षयन्ते कुरुबालवृद्धाः ॥

द्रोण, भीष्म और महात्मा विदुर में क्या आज शक्ति नहीं रही, राजा के इस उग्र अधर्म को क्या आज इस समय कौरवों के यहां बैठे हुये सभी बाल वृद्ध नहीं देख रहे ।

द्रौपदी ने आंसुओं की धारा बहाते हुये कहा कि—

धिगस्तु नष्टः खलु भारतानां
धर्मस्तथा क्षत्रविदां च वृत्तम् ।

यत्र ह्यतीतां कुरुधर्मवेलां
प्रेक्षन्ति सर्वे कुरवः सभायाम् ॥

आज भारतीयों का धर्म नष्ट हो गया और क्षत्रियों का पवित्र वृत्तान्त भी आज संसार से उठ गया, इस सभा में कुरुओं से नष्ट हुई धर्ममर्यादा को सब कुरु पवित्र क्षत्रिय आंख से देख रहे हैं, धिक्कार है इनकी बुद्धि और नेत्रों को। वैशंपायन बोले—

तथा ब्रुवन्ति करुणं सुमध्यमा
भर्तृन्कटाक्षैः कुपितानपश्यत ।
सा पाण्डवान्कोपपरीतदेहा-
न्संदीपयामास कटाक्षपातैः ॥ १ ॥

हृतेन राज्येन तथा धनेन
रत्नैश्च मुख्यैर्न तथा बभूव ।
यथा त्रपाकोपसमीरितेन
कृष्णाकटाक्षेण बभूव दुःखम् ॥ २ ॥

शोकसागर में डूबी हुई द्रौपदी ने कुपित पतियों को देखा, प्रथम तो अपने नीच कर्तव्य से दुःखित हुये युधिष्ठिर को प्रथम ही लज्जा आ रही थी और अर्जुन प्रभृति पाण्डवों को, दुर्योधन और युधिष्ठिर पर क्रोध था किन्तु जिस समय रक्षा-रहित रक्ष्यमाणा द्रौपदी ने कटाक्ष से पाण्डवों को देखा, उस समय पाण्डवों के अंतःकरण में अग्नि की ज्वालायें उठने लगा

गई। पाण्डवों को राज्य धन और रत्नादि के निकल जाने से जितना दुःख नहीं हुआ था उससे अधिक दुःख उस समय द्रौपदी के देखने से हुआ।

यदि पाण्डव चाहते तो द्रौपदी की लज्जा को बचा लेते किन्तु युधिष्ठिर हार गये हैं, अब बेईमानी नहीं करना, इस विवेक ने पाण्डवों की शक्ति को नष्ट कर दिया। द्रौपदी ने सभी की ओर देखा, सभी से रक्षा की प्रार्थना की, किन्तु जिस प्रकार मरते हुये प्राणी की माता पिता भाई पुत्र कोई भी रक्षा नहीं कर सकता सब मौन हो जाते हैं, इसी प्रकार इस सभा में बैठे हुये समस्त ही सज्जन बहरे शक्तिहीन होकर मौन हो गये।

आज द्रौपदी चाहती है कि इस समय जब कि मेरा कोई रक्षक नही है यदि मैं पृथ्वी में समा जाऊं तो बड़ा अच्छा हो, किन्तु इस संकट में पृथ्वी भी विवर नहीं देती। जैसे मरणासन्न पुरुष सब की आशा छोड़ कर अन्त में ईश्वर की शरण जाता है इसी प्रकार निराधार निरावलंब शोकार्त द्रौपदी दीनप्रति-पालक भगवान् कृष्ण की शरण में पहुंचती हुई अपनी एक प्रार्थना को सच्चे दिल से कृष्ण के कान तक पहुंचाती है—

अग्रे कुरूणामथ पाण्डवानां
दुःशासनेनाहृतवस्त्रकेशा।
संचित्य नामानि तदा गृणाति
गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ १ ॥

दुःखार्णवेऽहं हि हरे निमग्ना
 पद्माम्बधारो भव मे प्रसन्नः।
एवं च सा भक्तिपरा वदन्ती
 गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ २ ॥

काले हि चास्मिन्न पिता न बंधु-
 र्न भ्रातरो नैव सुता न माता।
न सत्सहायाः सुहृदो न मित्रं
 तत्रैव विष्णो भव मे शरण्यः ॥ ३ ॥

हाय ! कौरव और पाण्डवों के सन्मुख जब दुःशासन ने द्रोपदी के वस्त्र और केश खेंचे उस समय निरावलंब निराधार द्रोपदी, विचार कर लंबा स्वास लेती हुई, हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव ! भगवत के इन भव्य नामों को पुकार उठी। द्रोपदी कहती है कि हे हरे ! इस समय मैं घोर दुःखसागर में डूबी हुई हूं, केवल आपके नाम का ही आधार है, आप कृपा करिये, आप का नाम अकिंचन रक्षक है, मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये। भक्ति में निमग्न होकर इस प्रकार प्रार्थना करती हुई द्रोपदी के मुख से गोविन्द, दामोदर, माधव यही अक्षर निकले। इस दारुण समय में पिता, बंधु, भाई, पुत्र, माता, सज्जन, सुहृद, मित्र, कोई रक्षक नहीं। आज इस आपत्ति में कोई भी मुझको करुणा की दृष्टि से नहीं देखता, हे भगवन् ! ऐसे दारुण समय में आप मेरे रक्षक बनें।

दीन पुकार सुनी गजकी तुम कोल किरातन स्वर्ग दई है।
आरत नादकरी सियने तहँ रावण मार बचाय लई है॥
कोटिन पापिन तार दिये जिनकी करनी अपवादमई है।
हे करुणानिधि मोतन हेरहु काहेकरी अबरीतिनई है॥४

जाही हाथ धनुष चढ़ायो है सीतापति,
जाही हाथ रावण संहार लंक जारी है।
जाही हाथ तारयो औ उबारयो हाथ हाथी गह,
जाही हाथ सिंधु मथ लक्ष्मी निकारी है॥
जाही हाथ गिरि उठाय गिरिवर गिरिधारी भये,
जाही हाथ नंदकाज नाथ्यो नाग कारी है।
हूं तो अनाथ कहूं हाथ जोड़ दीनानाथ,
वाही हाथ मेरो हाथ गहिवे की वारी है॥ ५॥

दीनबंधु दीनानाथ व्रजनाथ रमानाथ,
राधानाथ मो अनाथ की सहाय कीजिये।
तात मात भ्रात कुलदेव गुरुदेव स्वामी,
नातो तुमही सों मो विनय सुन लीजिये॥
रीझिये निहाल देर कीजिये न झीनी कहूं,
दीन जान दासी मोहिं अपनाय लीजिये।
कीजिये कृपा कृपाल सांवले बिहारीलाल,
मेट दुःखजाल आज लाज रख लीजिये॥ ६॥

ध्याने मग्ना यदा कृष्णा पतीन्हित्वा सुदुःखिता ।
श्रुत्वा दीनमयं वाचमागतो वस्त्ररूपधृक् ॥ ७ ॥

जिस समय दुःखित कृष्णा पतियों को छोड़ कर भगवान् के ध्यान में निमग्न हुई है, उस समय दीनमय द्रौपदी की वाणी को सुन कर भगवान् वस्त्ररूप धारण करके आ गये ।

दुर्जन दुःशासन दुकूल गह्यो दीनबंधु,
दीन ह्वै कै द्रुपददुलारी यों पुकारी है ।
आपनो सबल छांड़ि ठाढ़े पति पारथ से,
भीष्म महाभीम ग्रीवा नीचे कर डारी है ॥
अंबर लौ अंबर पहाड़ कीन्हें शेष कवि,
भीषम करण द्रोण सभी यों विचारी है ।
नारी मध्य सारी है कि सारी मध्य नारी है,
कि नारी है कि सारी है कि सारी है कि नारी है ॥८॥

दुःशासन ने द्रौपदी की साड़ी को पकड़ कर खींचा, साड़ी उतर आई, किन्तु देखने वालों को यह ज्ञात हुआ कि द्रौपदी दूसरी साड़ी और पहिने है। दुःशासन ने दूसरी साड़ी को खींचा, इसके बाद दिखाई दिया कि तीसरी साड़ी जो द्रौपदी पहिने है वह सुहावनी और बेश कीमती है। जैसे जैसे दुःशासन साड़ियां खेंचता गया वैसे ही वैसे द्रौपदी के शरीर से अन्य साड़ियां निकलती आईं। सभा को यह प्रतीत होने लगा

कि यह द्रोपदी नहीं है किन्तु साड़ीपुंज है, दुःशासन बराबर खैंच रहा है और साड़ियों के ढेर लग रहे हैं। एक कवि विविध साड़ियों को देख कर बोल उठा कि—

सुंदर सफेद श्याम बैंजनी हरेरी पीली,
 ढेर बहुतेरे जौन गिनवे न आये हैं।
खाकी मुल्तानी औ प्याजी जाफरानी बहु,
 धानी आसमानी आसमान लग छाये हैं॥
लाल गुलावासी गुलखैरी औ गुलाबी रंग,
 फालशाही काही औ बदामी दरशाये हैं।
द्रोपदी के काज ब्रजराज ह्वै बजाज मानो,
 लाद के जहाज पट द्वारका से लाये हैं॥ ९॥

इस घटना में अनेक कवियों की अनेक सूझ है। एक कवि लिखता है कि—

कबै आप गये थे बिसाहन बजार बीच,
 कबै बोल जुलहा बिनाये दरपट से।
नन्दजू की कामरी न काहू वसुदेवजू की,
 तीन हाथ पटका लपेटे रहे कट से॥
मोहन मनत यामे रावरी बड़ाई कहा,
 राख लीन्हीं आन बान ऐसे नटखट से।
गोपिन के लीन्हें तब चीर चोर चोर अब,
 जोर जोर देन लागे द्रोपदी के पट से॥१०॥

❁ श्रीगणेशाय नमः ❁

अवतार ।
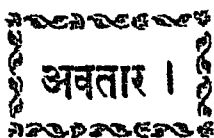
चतुर्भुजं पाशधरं गणेशं
तथाङ्कुशं दन्तयुधं तथैवम् ।
त्रिनेत्रयुक्तं त्वभयं करं तं
महोदरं चैकरदं गजास्यम् ॥१॥
रोगा हरन्ति सततं प्रबलाः शरीरं
कामादयोऽप्यनुदिनं प्रदहन्ति चित्तम् ।
मृत्युश्चनृत्यति सदा कलयन्दिनानि
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥२॥
कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभी के प्रिय दाम ।
ऐसे ह्वै कब लागिहौ, तुलसी के मन राम ॥३॥
वारिमथे घरु होय घृत, सिकता ते बरु तेल ।
बिन हरि भजन न भव तरिय,यह सिद्धान्त अपेल ॥४॥

आज मैं अपने व्याख्यान में प्रथम एक दृष्टान्त रखता हूँ, वह दृष्टान्त ही आज के व्याख्यान की भूमिका होगी, और उसी नीव के ऊपर मैं अपने व्याख्यान का आलीशान भवन खड़ा करूंगा। दृष्टान्त यह है—

गंगा के तट पर काशी जैसे भारी शहर में एक वाबू जी रहते थे। वाबूजी का नाम सुन कर यहां पर बैठे हुये कई एक वाबुओं का मिजाज विगड़ गया होगा और वे अपने मन ही मन कहते होंगे कि पंडित लोग सारी बोछार वावू लोगों पर ही करते हैं। जाने दीजिये, हमें वाबुओं को नाराज नहीं करना है। अव यों समझ लीजिये कि जिसका हम जिक्र करते हैं ये वावूजी नहीं थे, पण्डितजी थे, किन्तु थे करोड़पती। अव तो कई एक वावुओं का दिल चलता होगा कि हमीं हो जाते तो अच्छा था, बहुत करते पण्डितजी दो चार खरी खोटी कह लेते किन्तु करोड़पती तो वन जाते। ये पंडितजी आषाढ़ के महीने में एक बजे दिन के अपने कमरे में बैठे हुये हैं, कमरे में खश की टट्टियां लगी हैं, पंखे चल रहे हैं, किन्तु पंडितजी को अव भी गर्मी सता रही है। कारण इसका यह है कि ये उक्त पण्डितजी अंग्रेजी के बड़े विद्वान् हैं। आजकल जो भारतवासी अंग्रेजी पढ़ जाते हैं वे नौकरी में तो सव काम कर लेते हैं और डियूटी छोड़ते ही उनका मिजाज लखनऊ के नवाबों से साढ़े छै इंच कोमल ही रहता है। आपने अपने जमादार को वुलाया और हुक्म दिया कि जाओ गंगा किनारे जाकर किसी मलाह से कहो कि वह नाव खूब सजावे, नाव के सजाने का सामान यहां से पहुंचा दो, हम आज सायंकाल नाव पर बैठ कर गंगा की हवा खायेंगे। जमादार ने गंगा किनारे जा कर एक मलाह से कहा ऐ मलाह आज तुम्हारी तकदीर खुल गई, फलां पंडित

जी सायंकाल तुम्हारी नाव पर बैठ कर गंगा की सैर करेंगे तुम कोठी से सब सामान मंगवा लो और नाव सजा दो। मलाह ने सब सामान मंगवाया और नाव को सजा दिया। समय पर पंडितजी ने मोटर को याद किया और मोटर के जरिये से गंगा किनारे पहुंचे। ड्राइवर से कहा कि अब सात बजे हैं यह मोटर घर ले जाओ और दश बजे मोटर लेकर फिर आ जाना। इतना कह कर पंडितजी नाव के ऊपर कुर्सी पर जा विराजे और टेबुल को देखा। टेबुल के ऊपर तास, चौपड़, शतरंज, आईना, कंघा, साबुन की टिकिया और तौलिया तथा कुछ किताबें, कलम, दवात, कागज और दो चार अखबार रक्खे थे, एक तरफ थोड़ा सा बर्फ और लैमनेड की एक बोतल, बिसकुट, डबलरोटी. कुछ अभक्ष्य पदार्थ तथा चिमटी वगैरह भोजन खाने के औजार भी विराज रहे थे। आपने मलाह को नाव चढ़ाने का हुक्म दिया और टिफन खाने का लग्गा लगाया। खा पीकर अखबार पढ़ने लगे। पंडितजी में एक आदत थी, यदि वे किसी से बात न करें तो इनका जी नहीं लगता था। यहां पर देखा गया तो बात करने को कोई मनुष्य नजर न आया। बात करने के लिये मलाह की तरफ को दृष्टि उठाई, उसके स्वरूप और कपड़ों को देख कर बोले कि 'नोनसैंस ब्लैकमैन', इतना कह कर फिर एक अखबार पढ़ने लगे। बिना बोलचाल के जब न रह सके तब फिर मलाह ही से बोलना ठान लिया। कहा ऐ मलाह! तू ग्रेजुयेट है? मलाह बोला कि हजूर मैं नहीं समझता,

आप क्या कहते हैं। पंडितजी का मिजाज बिगड़ा, गुस्से में आकर बोले कि 'डेम फूल'। फिर थोड़ी सी देर में मलाह से पूछा कि तुम कुछ दस्तकारी जानते हो? मलाह ने कहा हजूर! "हां" जब मैं पांच वर्ष का था तब मुझे बड़े दस्त लगे थे। इसको सुन कर पंडितजी कहने लगे कि कैसा गवांर है, हम कहते हैं कि तू शिल्प जानता है, यह कहता है कि मुझे जुलाब लगा था। पंडितजी फिर बोले तू घड़ी मिला लेना है? मलाह बोला सरकार! मेरे यहां घड़ी नहीं है, परन्तु बहुत बड़ा घड़ा है, पानी का भरा हुआ नाव के नीचे रक्खा है, हुकुम हो तो उसमें से थोड़ा सा पानी लाऊं। पंडितजी हंस कर बोले क्या तू शतरंज का खेलना जानता है? मलाह ने कहा हजूर! रंज को तो मैं पास नहीं फटकने देता। अच्छा तू चौपड़ खेल लेता है? मलाह ने उत्तर दिया कि सरकार! मैं तो गरीब आदमी हूं मेरे घर में क्या धरा है जो चौपट होगा, मालिक की कृपा से चौपट तो आप जैसे रईसों के यहां हुआ करता है जिनके करोड़ों रुपये का माल है। फिर पंडितजी ने प्रश्न किया कि क्या तुम तास खेल लेते हो? मलाह कह उठा तास तूस हम नहीं जानते। श्रोताओ! आजकल भारतवर्ष में 'तास' का खेल दिनोंदिन बढ़ रहा है। राजा रानी क्या करते हैं? तास खेलते हैं, सेठ और सेठानी भी तास खेलते हैं, पंडित और पण्डितानी भी इस खेल पर लट्टू हैं, यह तास उन्नति की इस पराकाष्ठा पर पहुंचा है कि आजकल मास्टर और लड़के भी तास खेल जाते

हैं। सच ही तास के खेल की बड़ी उन्नति है। अब तो हमारी समझ में भी यही आता है कि व्याख्यान को तो बन्द करदें और हम भी इसी समय एक बाजी तास की खेल लें। अच्छा सुनिये, तास के पत्ते चार जगह बँट गये, अब चाल आरंभ होती है—एक ने डाला हुक्म का सत्ता, दूसरा जोश पर आता है इसने डाल दिया हुक्म का नहला, तीसरे के पेट में वायगोला उठा; इसने फौरन ही जोर से हुक्म का गुलाम पटक दिया, चौथा घबराया और घबरा कर गुलाम पर डाल दी 'अपनी बीबी'। अरे राम राम! बड़ा बुरा खेल है, इस खेल में तो इज्जत बिना ही कौड़ियों नीलाम हो जाती है। इस प्रकार के भद्दे खेल को तो कोई भी विचारशील नहीं खेल सकता। बड़ा दुष्ट खेल है। इस खेल में गुलाम पर बीबियां डाली जाती हैं। याद रखिये जब से यह खेल भारतवर्ष में चला है तभी से भारतवर्ष का पवित्र पातिव्रत धर्म दिनोंदिन रसातल को जा रहा है। अच्छा इस दुष्ट खेल की एक चाल और चलिये। एक ने डाला चिड़ी का छक्का, दूसरे ने इसके ऊपर डाल दिया चिड़ी का दहला, अब तीसरे को वीरता सवार हुई, कुछ उछला फिर हाथ हिलाया और जोर से 'इक्का' पटक दिया, इस इक्के को देख कर चौथे मनुष्य का चेहरा ऐसा हो गया कि मानो इसके घर में कोई मौत हो गई है या यह अभी मुर्दनी में से आया है, इसने सहज में ही दुग्गी डाल दी, पास बैठे हुये एक दूसरे मनुष्य ने कहा कि दुग्गी डाल कर पत्ता क्यों खोते हो,

कोई बड़ा पत्ता डाल कर यह हाथ तुम लो। इसने सहज में जवाब दिया कि इक्के से बड़ा कोई पत्ता नहीं। मित्रो! इक्का सब में बड़ा है, यदि तुम चाहते हो कि कोई दिन के लिये संसार में हिन्दू जाति और हिन्दू धर्म का अस्तित्व रहे तो तुम सब मिल कर इसमें अपना 'एका' डाल दो, आपके 'एका' डालने से यह देश विद्या, वीरता, व्यापार, शिल्प की उन्नति करके फिर भी दूसरे देशों का 'गुरु' बन सकता है। किन्तु यह तब ही हो सकता है जब आप लोग मिल कर इस पर अपना 'एका' डालें। फिर ठिकाने आ जाओ—पंडितजी ने मलाह से पूछा कि क्या तुम 'कुतुबनुमा' से दिशा पहिचान सकते हो? मलाह ने कहा हमारे पड़ोस में एक पंडितजी रहते हैं वह कभी कभी दिशा जाया करते हैं किन्तु न हम उनके साथ गये और न हमने दिशा देखी। पंडितजी ने मलाह से पूछा तुम्हारी उम्र क्या है? मलाह कहने लगा पचास वर्ष की। इसको सुन कर पंडितजी के मुख से निकला कि तुम्हारी आधी उम्र बेकार, चुपचाप अपना काम कीजिये। थोड़ी दूर आगे बढ़कर नाव 'भंवर' में पड़ गई, लगी चक्कर काटने, मलाह भी जल्दी जल्दी पंखे चला रहा है, उसका इरादा है कि मैं इस डूबती हुई नाव को बचा लूं, इधर पंडितजी ने भी मलाह के ऊपर फिर प्रश्नों का ढेर डालना आरंभ किया। अब मलाह प्रश्नों की बेपरवाही करके मौन होकर एकाग्र चित्त करके नाव को बचाना चाहता है, मलाह को परिश्रम करते करते एक घंटा हो गया, मलाह

पसीने में तर हो गया किन्तु नाव की दशा तोषदायक होने के स्थान में और भी दारुण होगई। अब नाव में पानी आने लगा। मल्लाह ने समझ लिया कि अब किसी प्रकार से भी नाव नहीं बच सकती। निराश होकर मल्लाह ने पंडितजी से पूछा कि आपने जितने काम हमसे पूछे क्या आप इन सब कामों को जानते हो? इस को सुन कर पंडितजी बोल उठे कि हम तुम्हारी भांति मूर्ख थोड़े ही है, ये सब काम जानते हैं, और इनसे हजार गुणा और जानते हैं। मल्लाह ने कहा कि आप 'तैरना' जानते हैं या नहीं? पंडितजी ने कहा कि हम तैरना तो नहीं जानते। मल्लाह बोल उठा कि सुनिये सरकार! मेरी आधी उम्र बेकार तो तुम्हारी सारी उम्र बेकार। पंडितजी बोले क्यों? मल्लाह ने कहा गरीब परवर! नाव भँवर में पड़ी है, चक्कर काट रही है, इसमें पानी आने लगा, अब यह किसी प्रकार बच नहीं सकती, आप अपनी घड़ी और छड़ी, चैन और चश्मा, अखबार और किताब, कोट और बूट, मेज और कुर्सी को लेकर डूबिये, हम तो यह चले। इतना कह कर मल्लाह गंगा में कूद पड़ा और तैर कर किनारे पर आ गया और ये योरूप के सुपूत, अंग्रेजों के भक्त पंडितजी सारी तरक्की को लेकर गंगा में डूब गये। किसी कवि ने क्या ही अच्छा कहा है—

युद्ध शिक्षा वीरता और चातुरी संग्राम की।
काम अवसरपर न आई तो हुई किस कामकी॥

श्रोताओ ! आपने दृष्टान्त सुन लिया। धन्य है उस मनुष्य को जो संसार रूपी सागर को तैर कर मोक्ष को जाता है। संसारसागर को पार करने के लिये एक ईश्वरप्रेमरूप तैरना जिसने नहीं सीखा वह जिस समय इस संसार को छोड़ कर ईश्वर के चरणों में जाना चाहता है कभी पहुंच नहीं सकता, इन पंडितजी की भांति समस्त तरक्कियों को लेकर डूब मरता है।

प्यारे मित्रो ! नहीं मालूम हम कब से इस संसार में जन्म मरण को स्वीकार करते हुये कोटि कोटि दुःखों को भोग रहे हैं, आज तक भी हमको इतना होश न हुआ कि हम ईश्वर के प्रेम-सागर में गोता लगा कर कर्मबंधन को तोड़ परम सुख मोक्ष की प्राप्ति करते। धन्य है उन पुरुषों को जो समस्त दुःखों को हटा कर मोक्ष में पहुंच चुके हैं। मोक्ष में जाने का सरल उपाय भगवान् वेदव्यासजी बतलाते हैं कि—

यद्यम्बुजाक्ष त्वयि सत्वधाम्नि
　　समाधिना वेशितचेतसेके।
त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन,
　　कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धिम् ॥

हे अम्बुजाक्ष, कमलनयन भगवान् कृष्ण ! जब कोई कोई मनुष्य समाधि धारण करके अपने चित्त को आपके स्वरूप में लगाते हैं उस समय महात्माओं की बनाई हुई नौका जो आपके चरणारविन्द हैं इनके अवलम्ब से संसार रूपी सागर

को इतना सुगम बना देते हैं कि मानो संसार सागर नहीं है गौ के छोटे बछड़े के खुर की भूमि है। जिस प्रकार साधारण मनुष्य को बछड़े के खुर लांघने में कोई कष्ट नहीं होता इसी प्रकार आपके भक्तों को संसारसागर के पार उतरने में भी परिश्रम नहीं उठाना पड़ता।

संसार रूपी सागर के पार उतरने के लिये भक्ति का अनुष्ठान ही पर्याप्त है, किन्तु शोक है आजकल के हम जैसे दुष्ट पुरुषों पर जो सैकड़ों मन गल्ला तोल डालें, सैकड़ों गज कपड़ा नाप दें, पचास साठ मन मिट्टी खोद दें, लिखने बैठें तो शाम तक कई अखबार लिख दें, तीस चालीस आदमियों का भोजन बना दें, हजारों रुपये का हिसाब कर डालें, देश को उन्नति देने का फर्जी मार्ग बतला दें, दो घंटे व्याख्यान सुना दें, किन्तु जब ईश्वर के भजन का समय आवे तब हम मुर्दों के बड़े भाई बन जांय।

अंग्रेजी की शिक्षा हम भी पाते हैं और मुसलमान भी पाते हैं, फर्क इतना है कि मुसलमान अंग्रेजी शिक्षा पाकर कट्टर मुसलमान बनते और हम उसी शिक्षा से इतने विद्वान् बन जाते हैं कि यदि हमारी चले तो हम हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति को खोद कर बहा दें। हमने कौंसिलों में देखा है जब समय आ जाता है तब मुसलमान मैंबर होम मैंबर से कहते हैं कि माफ कीजिये, दश मिनट की छुट्टी दीजिये, नमाज का वक्त आ गया। मुसलमान तो धर्म के इतने भक्त, किन्तु जो

हिन्दू मेम्बर हैं उनमें से तो एक दो को छोड़ कर शेष में से किसी ने भी भूल कर अपने जन्म के एक दिन भी संध्या और पूजा न की होगी। सिद्ध होगया कि हिन्दू धर्म को मार डालना ही हिन्दू लीडरों ने देश की उन्नति समझा है। सुधारक लोग स्वतः तो ईश्वराराधना करते ही नहीं, किन्तु अन्य लोगों का ईश्वरीय प्रेम छुड़ाने के लिये इन्होंने एक अच्छा उपाय निकाला है, इनका कहना है कि—

(१) वेदों में ईश्वर का अवतार लेना ही नहीं लिखा।

क्या अच्छा उपाय निकाला है, न नौ मन तेल होगा न दुल्हो गौना जावेगी। न कोई वेद पढ़ेगा और न कोई वेद मंत्रों से अवतार सिद्ध करेगा न संसार में पूजा रहेगी। अपने आप मंदिरों की सम्पत्तियां अंग्रेजी शिक्षा में लग जावेंगी और उस रुपये में से लीडरों का भी मुख मीठा होगा।

आज हमको इसकी छानवीन करनी है कि वास्तव में वेदों में अवतार का होना लिखा है या वलात्कार संसार को धोखे में डाला जाता है। इस विषय की खोज करते हुये जब हम शतपथ में पहुंचते है तो वहां की श्रुतियां अवतार का होना सिद्ध कर रही हैं, सुनिये—

मत्स्यावतार।

मनवे ह वै प्रातः अवनेग्यमुदकमाजह्रु-
र्यथेदं पाणिभ्यामवने जनायाहरन्त्येवं
तस्यावने निजानस्य मत्स्यः पाणीऽआपेदे ॥ १ ॥

सहास्मै वाचमुवाद बिभृहि मापारयिष्यामि
त्वेति कस्मान्मा पारयिष्यसीत्यौघ इमाः
सर्वाः प्रजानिर्वोढा ततस्त्वा पारयिता-
स्मीति कथं ते भृतिरिति ॥२॥ सहोवाच
यावद्वै क्षुल्लका भवामो वह्वीवैतावन्नाष्ट्रा
भवत्युत मत्स्य ऽएव मत्स्यं गिलति कुम्भ्या
माग्रे बिभरासि स यदा तामतिवर्द्धा ऽअथ
कर्षूं खात्वा तस्यां मा बिभरासि स यदा
तामतिवर्द्धा ऽअथ मा समुद्रमभ्यवहरासि
तर्हि वा ऽअतिनाष्ट्रो भविताऽस्मीति ॥३॥
शश्वद्ध झष ऽआस । स हि ज्येष्ठं वर्द्धतेऽथेतिथी
ꣳ समां तदौघ ऽआगन्ता तन्मा नावमुपकल्प्यो
पासा सै स ऽऔघ उत्थिते नावमापद्यासै
ततस्त्वा पारयितास्मीति ॥४॥ तमेव भृत्वा
समुद्रमभ्यवजहार । स यतिथीं तत्समां
परिदिदेश त तिथीं समां नावमुपकल्प्यो
पासां चक्रे स औघ ऽउत्थिते नवमापेदे तꣳ
स मत्स्य ऽउपन्यापुप्लुवे तस्य शृंगे नावः
पाशं प्रति मुमोच तेनैतमुत्तरं गिरमति दुद्राव ॥५॥
सहोवाच । अपीपरं वै त्वा वृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व
तं तु त्वा मागिरौ सन्तमुदकमन्तश्छैत्सीद्याव

यावदुदकᳪं समवायात्तावत्तावदन्ववसर्पासीति सह तावत्तावदेवान्ववससर्प तदप्येतदुत्तरस्य गिरेर्मनोरवसर्पणमित्योघो हताः सर्वाः प्रजानिरुवाहाथेहमनुरेवैकः परिशिशिषे ॥६॥

शतपथ ब्रा० १।८।१४—६

स्वायम्भुव राजा मनु के लिये प्रातःकाल हाथ मुखादि के शोधनार्थ सेवक लोग जल लाये जैसे कि सर्वत्र राजा रईसों के सेवक लोग दोनों हाथों से अपने २ स्वामियों के समीप हाथ मुखादि धोने के लिये जल लाया करते हैं यहां 'पाणिभ्याम्' इस लिये कहा है कि मान्यपुरुषों के लिये एक हाथ से जल लाना असभ्यता है। उन हाथ मुख की शुद्धि करते हुये मनुजी के हाथों में लिये जल में मछली प्राप्त हुई वा देख पड़ी॥ १ ॥ वह मत्स्य इस राजा मनुजी से यह बोला कि हे राजन्! तुम मेरा पोषण करो मैं तुम्हारा पालन करूंगा। राजा मनुजी बोले तुम किससे मेरी रक्षा वा पालन करोगे? तब मत्स्य बोला कि बड़ा जल का समूह (बूढ़ा) आवेगा वह इस द्वीप के सब मनुष्यादि प्रजाओं को बहा ले जावेगा वा डुबा देगा, उस जल में वह जाने से तेरी रक्षा करूंगा। तब राजा बोला कि हे मत्स्य! तुम्हारा पोषण कैसे हो सो बतलाओ॥ २ ॥ वह मत्स्य बोला कि जब तक हम छोटे हैं तब तक हमारा नाश करने वाली जल जंतुओं की बहुत जातियां हैं अथवा बड़ी २ मछलियां ही छोटी मछली को खा लेती हैं, इससे पहिले

मुझको घड़े में रख कर पोषण कीजिये, मैं जब घड़े में इतना अधिक बढ़ूं कि घड़े में न समा सकूं तब पृथिवी में कोई बनावटी जलाशय खोद कर उसमे मेरा पोषण कीजिये। मैं उस जलाशय में भी जब इतना अधिक बढ़ूं कि उसमें न समा सकूं तब मुझको समुद्र में पहुंचा दीजिये मैं निश्चय करके अपने नाशक शत्रुओं का अतिक्रमण करके सबको दबा ले जाने वाला हो जाऊंगा ॥ ३ ॥ तदनन्तर वह शीघ्र ही बड़ा मच्छ हो गया जिस कारण वह मत्स्य बहुत अधिक बढ़ता था इससे शीघ्र ही झष हो गया। इसके अनन्तर फिर मत्स्य बोला कि इतने दिन रूप वर्षों में वह डूवा अर्थात् सबको डुबा देने वाला जलसमुदाय आवेगा। अभिप्राय यह है कि मत्स्य भगवान् ने राजा से कहा कि इसी वर्ष में इतने दिन बाद डूवा आवेगा। (श्रीमद्भागवत में सातवें दिन बूड़ा आने का विचार लिखा है)। मत्स्य भगवान् राजा मनुजा से कहते हैं कि डूबा आने के समय पहले से नौका बनवा कर हमारी उपासना करना, अर्थात् हमारा सहारा लेना, सो तुम डूबा आने पर उस नौका में चढ़ जाना। (श्रीमद्भागवत में लिखा है कि भगवान् की प्रेरणा ही से एक बड़ी भारी नौका राजा को प्राप्त हुई)। मत्स्य भगवान् ने कहा कि इस नौका से तुमको पार करूंगा ॥ ४ ॥ उस राजा ने उन मत्स्य भगवान् का घड़ा, तालाब आदि से भली भांति रक्षण भरण पोषण करके पीछे समुद्र में पहुंचा दिया। उन मत्स्य भगवान् ने जितने काल में डूबा आने का

विचार कथा था उतने ही काल में नाव बना कर वा नौका मिलने पर मत्स्य भगवान् की उपासना राजा ने की। वह राजा मनु औघ उठने पर नौका में चढ़ गया। उस राजा मनु को मैं अपने समीप खींच लूंगा ऐसे विचार से मत्स्य भगवान् नौका के समीप आये। उस मत्स्य के सींग में राजा ने नाव को बांध दिया। उस नाव की रस्सी को लेकर वह मत्स्य उत्तर हिमालय पहाड़ की ओर नौका को ले गया॥ ५ ॥ वह मत्स्य रूप भगवान् ऐसे बोला कि मैंने तुम्हारी रक्षा कर दी, तुम डूबने से बच गये, अब वृक्ष में नौका को बांध दो। मत्स्य भगवान् ने और भी कहा कि पहाड़ में विद्यमान रहते हुये तुमको जल पहाड़ से पृथक् न कर देवे अर्थात् जल आगे न बढ़ जावे इस लिये जितना २ जल बढ़ता जावे उतना २ तुम भी ऊंचे पहाड़ की ओर चढ़ते जाना, वे मनु उतने ही आगे बढ़ गये। जिस मार्ग से उत्तरीय पर्वत में मनुजी ने बूड़ा के समय नौका द्वारा गमन किया था वही वही स्थान आगे आगे मनुका अवसर्पण कहाने लगा है। वह जल का बूड़ा सब प्रजा को बहा ले गया अर्थात् सब प्रजा जल में डूब कर नष्ट हो गई, तदनन्तर इस जगत में एक मनु ही शेष रह गये, अन्य सब का प्रलय हो गया।

धर्मवीरो! यह मत्स्यावतार जो आपको सुनाया गया है यह वेद में मौजूद है। इसी आख्यायिका को ईसाइयों की धर्म-पुस्तक बाइबिल में "नूह की नाव" के नाम से लिखा गया है।

जो लोग कहते हैं कि वेदों में अवतार नहीं वे या तो वेद नहीं पढ़े या योरुप की हवा के झोंकों में पड़ कर लोगों को अपने कैसे दुर्जनी नास्तिक बनाना चाहते हैं। कई एक सज्जनों का यह कथन है कि यह आख्यायिका शतपथ की है, शतपथ ब्राह्मण भाग है, हम ब्राह्मण भाग को वेद नहीं मानते। इसका सहल उत्तर यह है कि ब्राह्मणग्रन्थ एक भाग है, भाग कहते हैं हिस्से को, ब्राह्मण किसका हिस्सा हैं? क्या कुरान का हिस्सा हैं? नहीं नहीं। तो फिर क्या बाइबिल का हिस्सा हैं? ऐसा मत कहो। यदि इन दोनों का हिस्सा नहीं तो क्या पार्सियों की धर्म पुस्तक जिन्दावस्था का हिस्सा हैं? उसका भी नहीं। तो क्या ये पुराणों का हिस्सा है यदि ब्राह्मण इनके भी हिस्सा नहीं तो क्या धर्मशास्त्र के हिस्सा हैं? धर्मशास्त्र के भी हिस्सा नहीं तो फिर किस के हिस्सा है? मानना पड़ेगा कि ब्राह्मणग्रन्थ वेदों के हिस्सा हैं। वेदों में दो भाग हैं—एक मंत्र भाग दूसरा ब्राह्मण भाग। हमारे नकली ईसाई सुधारक कहते हैं कि हम ब्राह्मणों को प्रमाण नहीं मानते, तो क्या ये लोग वेद का एक हिस्सा प्रमाण मानते हैं और एक हिस्सा प्रमाण नहीं मानते? आधा तीतर आधा बटेर। मानो तो सब मानो, छोड़ो तो सब को छोड़ो। एक हिस्सा मानने पर भी तुम वेद के मानने वाले हो सकते हो। महर्षि आपस्तम्ब ने अपने सूत्र में स्पष्ट लिख दिया है कि—

मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्।

मंत्र और ब्राह्मण दोनो ही वेद हैं । आज वेद के ब्राह्मण भाग में अवतार निकल आया इससे घवरा कर हिन्दू लीडर कहते हैं कि हम इसको प्रमाण नहीं मानते । इसी प्रकार कहीं मंत्रभाग में अवतार निकलआवेगा तो ये लोग उसका भी मानना छोड़ देंगे । वेद क्या ठहरा कुछ नहीं जिसको चाहा मान लिया जिसको चाहा छोड़ दिया, वेद से अपनी राय जवर्दस्त ठहरी । ऐसे मानने में तो वेद में कुछ भी गौरव नहीं, अपनी इच्छा ही प्रवल हुई । यदि इस प्रकार से ईश्वर की आज्ञा वेद को कुछ भी न समझ कर मनमानी करेंगे तब तो सर्वदा के लिये संसार के विज्ञानरूपी नेत्र विदा हो जावेंगे ।

इसको हम एक दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करेंगे । किसी शहर में एक अच्छा हास्पिटल था उसमें डाक्टर वड़ा प्रवीण था, वह नित्य ही अंधों की आंखें वनाया करता था । एक दिन उसने पैंतीस अंधों की आंखें वनाईं । आंखें वनाकर उनको वार्ड में भेज दिया । चलते समय डाक्टर वार्ड में आया, अंधों को समझाया कि तुम लोग शरीर को हिलाओ मत, हाथ पैर मत चलाओ, किसी से वोलो मत, चौवीस घंटे चुपचाप पड़े रहो, तुम्हारी आंखें वहुत अच्छी वनी हैं, तुम कोई हरकत नहीं करोगे तो तुमको दीखने लगेगा । इतना कह कर डाक्टर चला गया । थोड़ी देर के वाद एक अंधे की लकड़ी जो खटिया से लगी थी किसी प्रकार नीचे गिर गई, उसका शब्द हुआ । वरावर की चारपाई पर पड़ा हुआ एक अंधा इस अंधे को दो चार गाली

देकर बोला कि शिर ही फोड़ दोगे। गालियों को सुन कर इस अंधे को बड़ा क्रोध आया, लकड़ी उठा कर तान कर ऐसी दी कि उस अंधे के घुटने में बड़ी चोट आई। गुस्से के मारे उसने भी एक लकड़ी इसके तान कर मारी, इसकी खोपड़ी खुल गई। इन दोनों ने समझा कि अब हमारी आंख तो बिगड़ ही गई, पास में पड़े हुये अंधों की आंखें क्यों न साफ करदो। इस परोपकार को दृष्टि में रख इन दो अंधों ने चारपाइयों पर पड़े हुये अंधों को ठोकना आरंभ कर दिया। उनको भी क्रोध आया, वार्ड में दो अढ़ाई घंटे डंडेबाजी हुई। एक भी अंधा ऐसा न बचा जो इस वीरता के युद्ध में भाग लेने वाला न हुआ हो। लड़ भिड़ कर अन्त में अपनी अपनी चारपाइयों पर लेट गये। सायंकाल डाक्टर आया और उसको इस महासमर की सूचना मिली। डाक्टर ने अंधों से कहा कि शोक है तुमने मेरी आज्ञा को नहीं माना अब तुम्हारी आंखें बिगड़ गईं, यदि मैं चाहूं कि तुम लोगों की आंखें ठीक हो जावें तो मेरे किये भी ठीक नहीं होंगी, मैं लाचार हूं तुम सब अपने अपने घर को जाओ और अपने कर्म का भोग भोगो।

यह एक दृष्टान्त है, इस दृष्टान्त में जो हास्पिटल है वह पवित्र भारतवर्ष है, इस पवित्र भारतवर्ष में अज्ञानान्धों को ज्ञानचक्षुः दिये जाते हैं। इसका डाक्टर ब्रह्माण्डनायक जगदीश्वर है, उसकी जो आज्ञा है जिसमें बतलाया गया कि तुम चुप पड़े रहो वह वेद है, इसमें शान्ति के साथ निर्वाह करने की

आज्ञा है, और वह जो लकड़ी गिर पड़ी वह "लीडरी" है, भारतवर्ष में उसके गिरने से कुछ जागृति आई, आपस में गाली गलौज और मार पीट करके दो अंधे लीडर बन गये, अब वे सब के विज्ञानरूपी नेत्रों को अपनी लीडरी से बिगाड़ना चाहते हैं। वेद के भक्तो! तुम चुपचाप पड़े रहो, यदि यह लीडरी तुम्हारे शरीर में स्पर्श कर गई तो सर्वदा के लिये तुम्हारे नेत्र मारे जावेंगे। इस लीडरीपन से जब तुम्हारा वेदों के ऊपर से विश्वास उठ जावेगा फिर ईश्वर में भी यह शक्ति नहीं रहेगी कि वह तुमको विज्ञानरूपी नेत्र दे दे। आज लीडरी के घमड में आकर ही वेद की जिस पुस्तक को चाहते हैं अमान्य कर देते है जिसको जी चाहता है कुछ दिन के लिये मान लेते है! श्रोताओ! तुम इस नास्तिकता से बचो यही हमारी नम्र प्रार्थना है।

यक्षावतार।

हमारे प्रेमी श्रोताओं ने यह समझ लिया कि वेद में मत्स्यावतार है। अब हम श्रोताओं को यक्षावतार सुनाते हैं, सुनिये—

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिज्ञे तस्य ह ब्रह्मणो
विजयेदेवा अमहीयन्त त ऐक्षन्तास्माकमेवायं
विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति ॥ १४ ॥
तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव तन्न
व्यजानन्त किमिदं यक्षमिति ॥ १५ ॥

तेऽग्निमब्रुवन् जातवेद एतद्विजानीहि
किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥ १६ ॥
तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीत्यग्निर्वा
अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति ॥१७॥
तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदꣳसर्वं
दहेयम् । यदिदं पृथिव्यामिति ॥१८॥
तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति तदुपप्रेयाय
सर्वजवेन तन्न शशाक दग्धुं स तत एव
निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥१९॥
अथ वायुमब्रुवन्वायवे तद्विजानीहि
किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥ २० ॥
तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीति वायुर्वा
अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति ॥१२॥
तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदꣳ
सर्वमाददीयं यदिद पृथिव्यामिति ॥ २२ ॥
तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति तदुपप्रेयाय
सर्वजवेन तन्न शशाकादातुं स तत एव
निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥ २३ ॥
अथेन्द्रमब्रुवन्मघवन्नेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति
तथेति तदभ्यद्रवत्तस्मात्तिरोदधे ॥ २४ ॥

तलवकारोपनिषत् ।

एक समय ब्रह्म ने देवताओं पर विजय पाया । गाथा यों है कि एक दिन समस्त देवता इकट्ठे हुये और प्रत्येक देवता कहने लगा कि इस युद्ध में हमारा विजय हुआ, देखो हमारे महत्व को। जब प्रत्येक देवता यह कहने लगा कि यह हमारा ही विजय है, हमारा ही महत्व है, उस समय ईश्वर एक यक्ष के रूप में प्रकट हुये। इसको देख कर देवता बोले यह कौन है। अग्नि से देवताओं ने कहा अग्ने ! तू जातवेदा है इसके पास जाकर पता लगा यह कौन है। अग्नि यक्ष के पास पहुंचा, यक्ष ने पूछा तू कौन है ? अग्नि ने कहा कि मैं जातवेदा अग्नि हूं। यक्ष ने कहा तुझ में क्या पराक्रम है ? अग्नि ने कहा कि मेरे बल की कुछ न पूछिये यदि मैं चाहूं तो समस्त ब्रह्माण्ड को फूंक कर खाक बना दूं। यह सुन कर यक्ष ने एक 'तृण' रक्खा कि इसको जलाओ। अग्नि बड़े वेग से उस तृण पर टूटा किन्तु तृण को न जला सका, लौट कर देवताओं के पास आया। देवताओं से कहा कि यह यक्ष कौन है इतना जानना मेरी शक्ति से बाहर है। फिर देवताओं ने वायु से कहा कि तुम जाओ और पता लगाओ कि यह यक्ष कौन है। इतना सुन कर वायु यक्ष के पास गया। यक्ष ने पूछा कि तुम कौन हो ? इसने उत्तर दिया कि मैं मातरिश्वा वायु हूं। यक्ष बोला तुम में क्या बल है ? वायु ने कहा कि यदि मैं चाहूं तो अपने वेग से इस ब्रह्माण्ड को उड़ा इसके टुकड़े बना दूं। यक्ष ने एक 'तृण' रक्खा और वायु से कहा इसको उड़ाओ। वायु ने बड़े वेग से उस तृण पर धावा मारा

किन्तु वायु से वह तृण न उड़ सका, हार कर वायु देवताओं के पास आया और बोला कि मैं नहीं जान सकता यह यक्ष कौन है। फिर देवताओं ने इन्द्र से कहा आप जावें आप पता लगा सकेंगे कि यह यक्ष कौन है। इन्द्र पता लगाने के लिये उस यक्ष के पास गया, इतने ही में यक्ष का तिरोभाव हो गया।

इन श्रुतियों में ब्रह्म का यक्षस्वरूप धारण करना स्पष्ट लिखा है फिर किस ज्ञान से कहा जाता है कि वेदों में ईश्वर का शरीर धारण करना नहीं है। वेदों में ईश्वर का अवतार लेना स्पष्ट लिखा है सुधारक लोग जान बूझ कर, मनुष्यों की आंखों में धूल झोंक कर, उनको अंधा बना कर, धर्म कर्म वेद से छुड़ा कर, नकली ईसाई बना देश का अभ्युत्थान करना चाहते हैं। बस इस कारण से वेदों में अवतार नहीं है, यह कहा जाता है। धार्मिको! यदि तुम इनकी बातों में आकर वेदों को छोड़ बैठोगे तब तो तुम अपने स्वरूप को भूल जाओगे, तुम यह निश्चय नहीं कर सकोगे कि हम हिन्दू हैं या ईसाई हैं। इसको हम एक दृष्टान्त से स्पष्ट करेंगे, दृष्टान्त यह है—

एक दिन एक भंगड़ बाबा अपने स्थान से कहीं अन्यत्र जाने लगे। धोती, लकड़ी, लोटा डोर आदि सामान के साथ उन्होंने कुंडी सोटा भंग भी ले ली, लेकर चल दिये। चलते चलते जब सात आठ मील पहुंचे तो वहां पर उत्तम कुआं और उसके पास सघन वटवृक्ष की छाया थी, इनको देख कर वह बड़ा प्रसन्न हुआ, वट की छाया में बैठ गया। थोड़ी देर में इसका पसीना सूखा

तथा धीरे धीरे ज्येष्ठ मास की तपन जो शरीर में समागई थी दूर हुई। अब इसका जी चाहा कि यहां पर भंग घुटनी चाहिये। कुयें से पानी खींचा और भंग को खूब धोया, कूंड़ी सोंटा खटका, छान कर भंग पी, लोटा उठा कर दिशा गया, दिशा से आकर स्नान किया, जी चाहा कि कुछ देर के लिये यहां पर शयन करें। बिस्तर बिछा कर जब शयन करने लगे तो यह सन्देह हुआ कि कोई कूंड़ी सोंटा न ले जावे। चोरी के भय से इसने कूंड़ी सोंटा अगोछे से अपनी कमर में बांधा और फिर सो गया। जब यह सो गया तब एक दूसरे भंगड़ बाबा आये। दिव्य कुआं और सघन छाया देख कर इनका भी जी चला कि यहां भंग छानो, किन्तु सोचने लगे कि भंग तो हमारे पास जरूर है परन्तु सिल लोढ़ी नहीं है, भंग कैसे घुटै। सिल लोढ़ी के चक्कर में था इतने में क्या देखा कि बड़ के नीचे एक मनुष्य सो रहा है और उसकी कमर में कूंड़ी सोंटा बंधा है। इसने अपने मन में कहा कि बन गया काम, कूंड़ी सोंटा खोल भंग घोटो और भंग पी कर वह कूंड़ी सोंटा इसी की कमर में बांध दो। इसने कूंड़ी सोंटा खोल कर भंग घोटी, छान पी कर यह दिशा गया, आकर स्नान किया, इसको भी नींद ने सताया, यह भी उसी के पास बिस्तर करके सो गया। इसने एक गलती की, वह कूंड़ी सोंटा उसकी कमर में तो बांधा नहीं जिसका खोला था; अपनी कमर में बांध कर सो गया। जब यह सो गया तो अब वह पहिले वाला भंगड़ बाबा जागा, जाग कर कूंड़ी सोंटा

टटोला तो अपनी कमर में बंधा हुआ कूंडी सोंटा पाया नहीं, देखा तो एक दूसरे मनुष्य की कमर में कूंडी सोंटा बंधा है। इसको देख कर यह विचार करने लगा कि हम कौन हैं, हम हम हैं या हम वह हैं जो सो रहा है। यदि हम कूंडी सोंटा वाले हैं तब तो हम वही हैं और जो हम लाल दरी वाले हैं तो हम हम हैं, हम हैं तो कौन हैं। अब यह इस चक्कर में पड़ गया। बहुत बुद्धि लगाई किन्तु यह निश्चय न कर सका कि हम कौन है। धार्मिको! यदि तुम वेद को छोड़ दोगे तो तुम अपने स्वरूप को भूल जाओगे और तुमको भी इसी चक्कर में पड़ जाना होगा। हजार बार खोज करने पर भी तुम यह पता न लगा सकोगे कि हम हिन्दू हैं या ईसाई। अतः हमारी नम्र प्रार्थना है कि तुम इन लीडरों की बातों में आकर और वेद को तिलांजलि देकर अपने स्वरूप को मत भूलो। हिन्दू स्वरूप को बनाये रखनेवाली यदि भूतल पर कोई वस्तु है तो वह वेद भगवान् है, तुम वेद भगवान् के कहे हुये उपदेश का अनुष्ठान करो इसी से तुम्हारी स्वरूपरक्षा होगी और इसी से तुम्हारा अभ्युदय होगा।

ब्रह्मावतार।

दो अवतार हमने ब्राह्मण ग्रंथों से दिखलाये उसके ऊपर सुधारकों ने बहाना बनाया कि हम ब्राह्मण ग्रंथों को वेद नहीं मानते। अब कुछ अवतार हम मंत्रभाग से दिखलाते

हैं उनमें से प्रथम ब्रह्मावतार आपके आगे रक्खा जाता है, इसके सुनने की कृपा करें।

ब्रह्म ज्येष्ठा सम्भृता वीर्याणि
　　ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमाततान।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे,
　　तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः॥

अथर्व० १९।२३।३०

ब्रह्म ने बड़े बल धारण किये हैं, ब्रह्म ने ही सृष्टि के आरम्भ में बड़े द्युलोक का विस्तार किया है, सब प्राणियों में पहिले वही ब्रह्मारूप से प्रकट हुआ, उस ब्रह्म से स्पर्धा करने को कौन समर्थ है।

यह श्रुति मंत्रभाग की है और इसमें स्पष्ट ब्रह्मा का अवतार बतलाया गया है, इसकी पुष्टि में मनुजी लिखते हैं कि—

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥

मनु० अ० १।९

वह जो सुवर्ण की कान्तिवाला सूर्य के समान तेजधारी अण्ड था उस अण्ड में सर्वलोक का पिता ब्रह्मा स्वयं प्रकट हुआ।

मनु ने ब्रह्माण्ड के सूक्ष्मरूप विराट से ब्रह्मा की उत्पत्ति लिख कर वेद मंत्र की पुष्टि कर दी। जो कुछ वेद मंत्र ने लिखा था उसकी पुष्टि करता हुआ मुंडकोपनिषद् लिखता है कि—

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव
विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ॥

ब्रह्माजी सब देवताओं से प्रथम उत्पन्न हुए जो संसार के रक्षक और विश्व के बनाने वाले हैं।

मुंडकोपनिषद् के मंत्र में यह स्पष्ट कह दिया गया कि संसार के बनानेवाले और संसार की रक्षा करनेवाले ब्रह्मा समस्त देवताओं से पहिले प्रकट हुए। संसार का बनाना और संसार की रक्षा करना ईश्वर के सिवाय अन्य में घट नहीं सकता अतएव मानना पड़ेगा कि ब्रह्मा ईश्वरावतार था परन्तु यह वही मान सकता है जो आस्तिक हो, जो वेदों को ईश्वरीय ज्ञान समझता हो और जिसकी दृष्टि में मनुजी कुछ गौरव रखते हों। सुधारकों की दृष्टि में तो मनु बेवकूफ, वेद जाहिलों का ज्ञान, तथा ईश्वर कोई चीज ही नहीं। इनकी दृष्टि में तो बोतल का पानी और होटल का अभक्ष्य भोजन तथा व्यभिचार ये तीन ही पदार्थ भुक्ति मुक्ति दायक हैं। इनका कथन था हम अवतार इस कारण से नहीं मानते कि वेदों में अवतारों का होना नहीं लिखा। जब हमने मत्स्य और यज्ञ दो अवतार दिखलाये तब इन्होंने कहा कि ये दो अवतार ब्राह्मणभाग में लिखे हैं, ब्राह्मणभाग को हम वेद नहीं मानते, हम तो मंत्र-भाग को वेद मानते हैं। अब हमने मंत्रभाग से ब्रह्मा का अवतार दिखलाया। इसको देखकर सुधारक लोग यह तो समझ गये कि वेदों में अवतार है, और यह भी समझ गये कि हम

अपने स्वार्थ के लिये अवतारों को उड़ाते थे किन्तु अब हमारा बनावटी जाल खुल गया। इतने पर भी अपने मुख से थे अवतार को स्वीकार नहीं करते, यह इनकी जिद्द नहीं तो और क्या है। जो हिन्दू इनकी बातों में आकर देश की उन्नतिरूप जाल में फंस जाय तो फिर वह कहां का रहे

दोनों दीन से गये पांड़े, हलुआ रहे न मांड़े।

इनके रास्ते पर चल कर न तो उन्नति ही होगी और न संसार में वेद ही रहेगा। धन्य है उन सनातनधर्मियों की बुद्धियों को, जो वेद के शत्रुओं को अपना लीडर मानते है।

वराहावतार।

ब्रह्मावतार को हम दिखला आए, अब वेद से वराहावतार दिखलाते हैं, श्रोता ध्यान से सुनें—

वराहेण पृथिवी संविदाना
सूकराय विजिहीते मृगाय ॥ ४८ ॥

अथर्व० कां० १२ अनु० १

वराह सूकररूपधारी प्रजापति ने यह पृथिवी उद्धार की है। इसकी पुष्टि में तैत्तिरीयारण्यक लिखता है कि—

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।

तैत्ति० अ० प्र० १-अनु० १ मं० ३०

हे भूमि! तुमको असंख्य भुजावाले कृष्णवराह ने उद्धार किया है।

जिस वराहावतार का अथर्व वेद ने वर्णन किया और तैत्तिरीयारण्यक ने जिसकी पुष्टि की, उसी के ऊपर शतपथ लिखता है कि—

इयतीह वा इयमग्रे पृथिव्या स
प्रादेशमात्री तामेमूष इति वराह।
उज्जघान सोस्या पतिः प्रजापतिरिति ॥
शतपथ १४। १। २। ११

पहिले भूमि प्रादेशमात्र प्रकट हुई, उसको वराह ने उद्धार किया, सो इसका पति प्रजापति है।

वराहावतार को आगे रख कर नास्तिक लोग बड़ी उछल कूद मचाया करते हैं, वे कहते हैं कि जिन पुराणों में ईश्वर को ही वराह मान लिया हो वे पुराण वेदनिन्दक नहीं हैं तो क्या हैं। वराहावतार की मसखरी करने के लिये संपादकाचार्य रुद्रदत्त वरुआ ने स्वर्ग में "सवजेक्ट कुमेटी" नामक एक पुस्तक लिखी। इस कुमेटी में समस्त अवतार और देवता बिठलाये, सब के आगे भोजन परोसा गया। वराह का भोजन विष्टा बना कर वराहावतार की और पुराणों की खूब मिट्टी कूटी, किन्तु अब यह वराह अवतार वेद में से निकला। क्या वराहावतार की मसखरी करके आर्यसमाज ने वेदों को पैरों के नीचे नहीं कुचला? धन्य है इस सोसाइटी को जो वेदों को प्रमाण माने और फिर उसी के लेखों की मसखरी करे, ऐसे ऐसे निन्दित कार्य करते हुए आर्यसमाज को लज्जा तो नहीं आती होगी। वेदों में ईश्वर का अवतार नहीं है इसको कौन कहता है, जो लोग-

कह रहे हैं उनको हम एक अपनी बीती हुई घटना से स्पष्ट करके पबलिक के आगे रक्खेंगे. घटना सुनिये—

कानपुर से कुछ पूर्व एक फतेहपुर शहर है। यह जिला भी है। एक साल इस शहर में आर्यसमाज और सनातनधर्म से शास्त्रार्थ ठहरा। सनातनधर्म की तरफ विद्यारत्न पं० कन्हैयालाल शाहजहांपुर और हनुमानदत्त ब्रह्मचारी काशी तथा मैं ये तीन पंडित उपस्थित हुये। आर्यसमाज की तरफ से एक पंडित दुलीचंदजी शर्मा और दूसरे भिक्षु ये दो पण्डित आये। शास्त्रार्थ के नियम बनने लगे। सनातनधर्मियों ने कहा कि शास्त्रार्थ लेखबद्ध होगा और भाषा उसकी संस्कृत होगी। अपने अपने पत्र की संस्कृत भाषा का अनुवाद करके शास्त्रार्थ करने वाले पबलिक को सुना देंगे। भला आर्यसमाज संस्कृत में लेखबद्ध शास्त्रार्थ क्यों करेगा, ऐसे शास्त्रार्थ के लिये आर्य समाज आज भी अनेक बहाने बनाया करता है। उस समय भी एक बहाना उठाया कि संस्कृत के शास्त्रार्थ को पबलिक नहीं समझ सकेगी, इस कारण शास्त्रार्थ हिन्दी भाषा में लिखा जावे। सनातनधर्म ने स्वीकार कर लिया। प्रातःकाल के सात बजे आर्यसमाजी लोग अपने पण्डितों को लेकर सनातनधर्म के पिण्डाल में आ गये। नियम तै हो गये, नियमों पर दोनों मंत्रियों के हस्ताक्षर हो गये। करार पाया कि आर्यसमाज की तरफ से भिक्षु शास्त्रार्थ का आरंभ करते हुये प्रथम पत्र दश मिनट में लिख कर पांच मिनट में पबलिक को सुनावेंगे, इसके

उत्तर में पं० कालूराम शास्त्री इसी भांति से दश मिनट में पत्र लिख कर पांच मिनट में पबलिक को सुना देंगे। पारापारी इसी प्रकार दोनों पंडित लिखते और सुनाते जायंगे, तीन घंटे में शास्त्रार्थ पूरा कर दिया जावेगा। ठीक नौ बजे दिन के शास्त्रार्थ का आरंभ हुआ। आर्यसमाज की तरफ से भिक्षु उठे और शास्त्रार्थ मुख से बोलने लगे। सभापति ने कहा कि पहिले पर्चा लिखो तब बोलो। भिक्षु ने उत्तर दिया कि हमतो बोलेंगे जो चाहे सो लिख ले। सभापतिजी ने समझाया कि ऐसा नियम नहीं है, नियम यह है कि दश मिनट तक पर्चा हिन्दी में लिखो और पांच मिनट में सुनाओ। इसके ऊपर भिक्षुजी बोले हम ऐसा नहीं कर सकते, अगर हमको मजबूर किया जावेगा तो हम पर्चा उर्दू में लिखेंगे। सभापति ने कहा नहीं देवनागरी अक्षरों में लिखो। इस पर भिक्षुजी बोले कि मैं बोलता रहूंगा आप लिखते रहें। सभापति ने कहा यह नियम नहीं है, आप ही को लिखना पड़ेगा। इसके ऊपर भिक्षुजी कुछ सुस्त होकर बोले कि हम हिन्दी नहीं पढ़े। इन शब्दों को सुन कर तमाम पबलिक हंस पड़ी। अवतार का खंडन वे ही करते हैं जिनको संस्कृत के अक्षर शत्रु दिखलाई देते हैं। संसार में कोई भी विद्वान् धर्म को आगे रख कर अवतारवाद का खंडन नहीं कर सकता। अब श्रोता समझ गये होंगे कि वेद में वराह अवतार का वर्णन अवश्य है और खण्डन करने वाले या तो अपनी अज्ञता से या संसार से वेद को मिटाने के लिये अवतारवाद का खण्डन करते हैं।

वामनावतार।

ब्रह्मावतार के पश्चात् अब श्रोताओं के आगे हम मंत्र भाग से भगवान् वामन का अवतार रखते हैं। हमें आशा है कि आप लोग ध्यान से सुनेंगे—

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूढमस्य पांसुरे स्वाहा॥

यजु० अ० ५ मं० १५

विष्णु ने इस दृश्यमान् ब्रह्माण्ड को नापा और तीन प्रकार से पद रक्खा इसके पद में समस्त संसार स्थित है।

इसकी पुष्टि में कठोपनिषद् लिखता है कि—

मध्ये वामनमासीनं विश्वेदेवा उपासते।

कठ० वल्ली ५ श्रु० ३

मध्य में बैठे हुये वामन की विश्वेदेव उपासना करते है।

इसी को पुष्टि में शतपथ लिखता है कि—

'वामनो ह विष्णुरास। श० १।२।२।५

विष्णु ही वामन थे।

इस मंत्र के दो अर्थ है। निरुक्त ने इस मंत्र को सूर्यपरक लगाया है तथा कठोपनिषद् और शतपथ ब्राह्मण वामनावतार के होने को पुष्ट कर रहे है। आस्तिकों को दोनों ही अर्थ प्रमाण हैं। जब इस मंत्र पर ऋग्वेदभाष्य करते हुये सायण ने वामनावतार माना और उसकी पुष्टि में कठ तथा शतपथ प्रमाण मिलते हैं तब कोई किस न्याय से कह सकता है कि वामना-

वतार ... है। चाहे अवतारसिद्धि पुराण करे या धर्मशास्त्र अवतार के होने में प्रमाण दें और चाहे खास वेद कहे किन्तु सुधारक लोग न किसी की बात सुनेंगे, न अवतार को मानेंगे, वेद में अवतार नहीं है यही कहते रहेंगे।

एक मूर्ख मनुष्य तीर्थयात्रा करके घर आया और अपनी माता से बोला अम्मा हो मैं काशी के बड़े बड़े पंडितों को जीत आया। उसको माता बोली क्यों झूठ बकता है, काशी में बड़े बड़े विद्वान् रहते हैं और तू एक अक्षर नहीं पढ़ा फिर तू काशी के पंडितों को कैसे जीत आया? इसको सुन कर लड़का बोला तुमने भली कही, हमको एक मन्त्र ऐसा मिल गया कि जिससे सब पंडित हार गये और मैं जीत गया। माता बोली वह कौन मंत्र है? इसको सुन कर लड़के ने कहा मंत्र यह है कि 'किसी की न सुनना' काशी के पंडितों ने बहुत समझाया किन्तु हमने एक की भी न सुनी। इसी भांति से आज सुधारक किसी की भी बात न सुन कर वेद में अवतार नहीं, ऐसा कहते फिरते हैं। श्रोता यह अच्छी तरह समझ गये होंगे कि वामनावतार वेद में अवश्य है।

रुद्रावतार।

श्रोतावृन्द! आप वामनावतार सुन चुके अब रुद्रावतार को सुनिये, इसका वर्णन वेद में इस प्रकार है—

नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते
नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः॥१५

उसके आगे दो फुट, और फिर तीन फुट, बाद में चार फुट, फिर पांच फुट, इसके बाद छः फुट, छः फुट के आगे पांच फुट, पांच फुट से बढ़कर चार फुट, उसके आगे तीन फुट, फिर दो फुट, किनारे के पास एक फुट। अब इस मास्टर ने गंगा के जल का औसत निकाला, औसत आया तीन फुट ३$\frac{3}{15}$ इंच। इस औसत को देख कर मास्टर सोचने लगा कि तीन फुट सवा तीन इंच जल में लड़के डूब नहीं सकते, सब लड़कों को लेकर गंगा में धँस गया। बीच धार में जाकर सब लड़के डूब गये। मास्टर जैसे कैसे किनारे पर पहुंचा। मास्टर ने सोचा आज हम औसत निकालने में भूल गये इसी से धोखा हुआ, लड़के डूब गये। सही औसत में लड़के कभी डूब नहीं सकते थे, यह विचार कर फिर औसत निकाला, फिर भी औसत उतना ही निकला। अब मास्टर को बड़ा आश्चर्य हुआ और कहने लगा कि-

औसत निकला ज्यों का त्यों। लड़केवाले डूबे क्यों॥

वेदों में अवतार का निषेध करने वाले सज्जन इस मास्टर से अक्ल में कुछ कम नहीं हैं। नहीं मालूम इन्होंने अक्ल को बेच कर यह कैसा औसत निकाला कि वेद में अवतार नहीं, वेद के मंत्र तो अवतारवाद की दिल खोल कर पुष्टि कर रहे हैं। अब श्रोता जान गये होंगे कि इन्होंने कैसा वेद पढ़ा है और कैसे ये वेद के मानने वाले हैं।

कैवल्योपनिषद् लिखता है कि ब्रह्मा विष्णु रुद्र ये कोई पृथक् २ नहीं हैं किन्तु ये सब निराकार ब्रह्म के स्वरूप हैं, सुनिये-

स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रः स शिवस्सोऽक्षरस्स :
परमः स्वराट् । स इन्द्रस्स कालाग्निस्स चन्द्रमाः ॥

वही ब्रह्मा है वही विष्णु तथा वही रुद्र, वही शिव, वही अक्षर, वही परम स्वराट्, वही इन्द्र, वही काल, वही अग्नि और वही चन्द्रमा ब्रह्म है।

कैवल्योपनिषद् की इस श्रुति से ब्रह्मा विष्णु रुद्र सब ब्रह्म के शरीर ईश्वर सिद्ध हैं फिर कोई किस साहस से कह सकता है कि ईश्वर अवतार ही नहीं लेता।

दुर्गावतार ।

अब हम ईश्वर का दुर्गा शरीर धारण करना वेद से दिखलाते हैं, सुनिये—

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यह
माऽदित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा विभर्म्य
हमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥ १
अहं सोममाहनसं विभर्म्य
हं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते
सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥ २
अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां
चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।

तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा
भूरि स्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥ ३
अहमेव स्वयमिदं वदामि
जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि।
तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥ ४
मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति
यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मान्त उपक्षियन्ति
श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥ ५
अहं रुद्राय तनुरातनोमि
ब्रह्मद्विषे शरवे हन्त वा उं।
अहं जनाय समदं कृणोम्य
हं द्यावी पृथिवी आविवेश ॥ ६

ऋ० अष्ट० ८ मं० १० अ० १० सू० १२५

मैं रुद्रदेव और आठ वसुओं के साथ विचरती हूं। मैं बारह आदित्यों तथा विश्वेदेवताओं के साथ भी विचरती हूं, मैं मित्र, वरुण, इन्द्र, अग्नि और अश्विनीकुमारों को धारण करती हूं ॥ १ ॥ मैं सब तरफ से मारने वाले सोम देवता का पोषण और त्वष्टा, पूषा, भग इनको धारण करती हूं, धनको हविष वाले सुन्दर प्राप्त करते हुए यजमान सोम निकाले हुए को ॥२॥ मैं ईश्वरी मिलने वाली ज्ञानवाली पहिली अर्थात् मुख्य यज-

भीय देवताओं में अनेक तरह से स्थित होने वाली अनेक तरह से सब ओर से प्रवेश कराती हुई हूं तिस मुझको देव लोग अनेक जगह विधान करते हैं ॥ ३ ॥ मैं ही आप यह कहती हूं कि सेवित हैं देवताओं और मनुष्यों से जो उनको उत्तम बढ़िया ब्रह्मा, ऋषि और मेधावी बनाती हूं ॥ ४ ॥ जो देखता, जो स्वास लेता, जो सुनता है वह मेरी सहायता से अन्न को खाता है और जो मुझको या मेरे कथन को नही मानते वे नष्ट हो जाते या मेरी दी हुई शक्तियों से रहित हो जाते हैं, सखे ! सुन, श्रद्धा और यत्न से प्राप्त होने वाले बचन मैं तुझसे कहती हूं ॥ ५ ॥ मैं रुद्र के धनुप को विस्तृत करती हूं, ब्राह्मणबैरी और हिंसक तथा मारने वाले को मद्युक्त करती हूं और मैं ही आकाश पाताल में व्याप्त हो रही हूं ॥ ६ ॥

इन मंत्रों से हमने ईश्वर का दुर्गा स्वरूप धारण करना दिखला दिया, विद्वानों का काम प्रमाण देकर समझाना मात्र है, कोई भी विद्वान् इससे अधिक और कुछ नही कर सकता। इन प्रमाणों को देख कर सुधारक और लीडर मौन हो जाते हैं, किन्तु आर्यसमाजी अपनी अक्रिया दलीलों से वेदों के मंत्रों को भी उड़ाने के लिये तैयार हो जाते है। भाव यह है कि इतने प्रमाण देकर समझाने पर भी ये नहीं मानते, योरूप की हवा से इनके दिमाग में ईश्वर का निराकार होना भर गया है, हम इसको एक दृष्टान्त से समझावेंगे।

एक दिन एक शेरनी प्रसूता हुई, उसको भूख लगी, शेर भोजन की खोज में चला। उसको और तो कुछ मिला नहीं

एक छोटा सा गीदड़ का बच्चा मिला, शेर उसको मुंह में दबा कर जीवित को ही ले आया। सिंहिनी को दिया और कहा कि आज तुम इसी से पारणा करो, अब दिन निकल आया है रात होने पर भोजन तलाशूंगा। सिंहिनी को दया आई उसने इस बच्चे को नहीं खाया और अपना दूध पिला कर पालने लगी। कुछ दिन के बाद दोनों बच्चे सिंहिनी के और साथ में यह तीसरे हज़रत अपने घर के बाहर जंगल में टहल रहे थे इतने में एक हाथी आया। हाथी को देख कर ये हजरत भागे, घर में आघुसे, और शेर के बच्चे हाथी के मस्तक पर चढ़ गये। बच्चे छोटे थे, हाथी मरा नहीं भाग गया। बच्चे हाथी से उछल कर कूदते हुये घर को आये। तीन चार घंटे के बाद सिंहिनी आगई। इस हज़रत ने कथा सुनाई कि मां! हम बड़े वीर हैं और बड़े प्रवीण हैं किन्तु आज नहीं मालूम हमको क्या होगया हमारे दोनों छोटे भाई तो हाथी के मस्तक पर चढ़ गये और हमको इतना डर लगा कि घर में आकर भी कांपते रहे, यह क्या बात है? इसको सुन कर सिंहिनी बोली कि—

> शूरोऽसि कृतविद्योऽसि दर्शनीयोऽसि पुत्रक।
> यस्मिन्कुले भवाञ्जातो गजस्तत्र न हन्यते॥

बेटा तू वीर है और विद्वान् है तथा तेरा रूप भी दर्शनीय है कसर यह है कि जिस कुल में तुम उत्पन्न हुये हो उस कुल में हाथी नहीं मारे जाते।

बस घटा लीजिये हमारे लीडर वीर भी हैं, विद्वान् भी हैं, नकटाई कालर पहन कर खूबसूरत भी बन रहे हैं, कसर यह है

वीर वृत्रासुर इन्द्र के सामने खड़ा है और इसके साथ में असुर दैत्य दानवों का समूह है। वृत्रासुर ने युद्ध में बड़ी २ वीरता दिखलाई है किन्तु अब इसका मृत्यु समय आगया यह इस बात को जानता है कि मैं अब थोड़ी देर में मर जाऊंगा। मृत्यु को सन्निकट देख यह अपने मन को युद्ध से खींच ईश्वर के चरणारविन्द में लगाकर ईश्वर से प्रार्थना करता है, वह प्रार्थना यह है-

अहं हरे तव पादैकमूल
दासानुदासो भविताऽस्मि भूयः।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते
गृणीत वाक्कर्म करोतु कायः॥ २४

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे॥ २५

अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥ २६

ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं
संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः।
त्वन्माययात्मात्मजदारगेहे
ष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात्॥ २७

श्रीमद्भा० स्कं० ६ अ० ११

हे हरे! आपके चरणारविन्द का आश्रय है जिनको ऐसे जो आपके दास हैं मैं दूसरे जन्म में भी उनका सेवक बनूं, हे भगवन्! प्राणनाथ जो आप हैं आपके गुणों को मेरा मन ग्रहण करे और मेरी वाणी सर्वदा आप ही के गुणों का कीर्तन करे तथा मेरा जो शरीर है वह सर्वदा आपके प्रसन्नता के ही कर्म करे ॥ २४ ॥ हे भगवन्! जहां पर आपके दर्शन न हों मैं ऐसे ध्रुवलोक तथा ब्रह्मलोक और सार्वभोम राज्य यद्वा पाताल का राज्य, योग को सिद्धि और कहां तक कहूँ मोक्ष भी नहीं चाहता ॥ २५ ॥ भगवन्! मेरा प्रेम आप में उतना ही है कि जितना अजात पक्ष पक्षियों का प्रेम माता में होता है। इसको यों समझिये कि प्रातःकाल छोटे छोटे बच्चों को घोसले में छोड़ कर जब उनकी माता चोगा लेने को जाती है और उसको भोजन टटोलते टटोलते जब दिन का एक बज जाता है तब ये बच्चे भूख के मारे घबरा जाते है, इनका ध्यान सब ओर से खिंच कर माता के आगमन में लग जाता है, भूख के दुःख से पीड़ित भी होते है किन्तु इनका ध्यान माता से नहीं हटता, ये इसी आशा में लगे रहते है कि कब हमारी माता आवे और कब हमको चोगा दे इस प्रकार से दुःखित बच्चों को माता जब आती है उस माता को देख कर इन बच्चों को जो आनन्द होता है प्रभो! वह आनन्द मुझको आप के दर्शन से होता है। यद्वा ज्येष्ठ मास के महीने में गौ को चार बजे प्रातःकाल दुह कर जंगल को भेज दिया, गौ का छोटा सा बीस दिन का बच्चा यहां पर ही खूँटे में बँधा रह गया, यह बच्चा अति लघु होने के कारण

का कथन आप के आगे रखदूं तो कैसा। प्रत्येक कुंजड़ी अपने बेरों को तो मीठे बतलाया ही करती है किन्तु यदि किसी कुंजड़ी के बेरों के बाबत दूसरी कुंजड़ी कहदे कि बेर तो हमारे भी मीठे हैं परन्तु वह जो कुंजड़ी सामने बैठी है उसके बेर तो बहुत ही मीठे हैं। इतना कहने पर संसार में विश्वास हो जाता है कि वास्तव में उस कुंजड़ी के बेर मीठे हैं। तारीफ तो मीठापन की तब ही है जब दूसरा कहे। आज तुम ईश्वर का स्वरूप धारण करना नहीं मानते, इसका हमको घोर दुःख है। तुम हिन्दू हो, इतने पर भी अपने ग्रंथों को झूठा लिख कर तुम यही कहते हो कि ईश्वर अवतार नहीं लेता, किन्तु तुम्हारे शास्त्र से शिक्षित होकर एक मुसलमान कवि कहता है कि—

शंकर से सुर जाहि जपैं,
चतुरानन ध्यानन धर्म बढ़ावैं।
नेक हिये में जो आवत ही,
रसखान महा जड़ मूढ़ कहावैं॥
जापर सुन्दर देववधू,
नहिं वारत प्राण अवार लगावैं।
ताहि अहीर की छोहरियां,
छछिया भर छाछ पै नाच नचावैं॥

सैदोका के नवाब रसखान के मुख से निकली हुई कविता स्मरण करते हुये एक वार बोलिये प्रभु रामचन्द्र की जय।

कालूराम शास्त्री।

पूर्वार्द्धस्य प्रथमांश समाप्तः।